Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

S
१४.४
प्रि ६३ स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

naj Foundation Ch

in. Gurukul Kangr

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

S
९४.४
प्रि६३ख

84273

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

S
94.8
प्रि ई ड्रव
84273

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

Stock Verification-2024

वर्ग संख्या......... ..   आगत संख्या............

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित हैं। इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्व-दण्ड लगेगा।

19 MAR 2002
1826/1

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

84273

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

84273

समाज का कायकल्प

वैदिक प्रमाणों से सम्पुष्ट मानव समाज का नया आयाम [साँचा]

COMPILED

पुस्तकालय

लेखक
विद्यामार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
भूमपूर्व आचार्य एवं कुलपति गुरुकुल
विश्व विद्यालय कांगड़ी
हरिद्वार

S14.4,PIR93S
84273

प्रकाशक
समर्पण शोध संस्थान, आर्यसमाज करौल बाग नई दिल्ली-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्दयानन्द-निर्वाण शताब्दी-संस्करण ग्रन्थ संख्या-७

प्रकाशक—
समर्पण शोध संस्थान
आर्यसमाज करौल बाग नई दिल्ली-५

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

S
28.8
प्रि 63 स

विक्रय केन्द्र —
कार्यालय— समर्पण शोध संस्थान
आर्यसमाज करौल बाग, नई दिल्ली-५

मूल्य—१५

प्रथम संस्करण—११००

मुद्रक—सैनी प्रिण्टर्स,
पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६
फोन : ५१२१६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज का कायाकल्प

विषय-सूची

विषय	पृ० सं०
अध्याय [१]	
	१ से १००
वेद और वर्णाश्रम-व्यवस्था	१
मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है	१
शरीरांगों की भाँति सम्वेदन शीलता	१
मनुष्य-शरीर से उपमित्त समाज-पुरुष	२
प्रश्न और उसका समाधान	२
मन्त्रार्थ-निष्कर्ष	३
अनिवार्य विभाजन	३
समाजशरीर और अंगचतुष्टय	४
मुखवत् ज्ञानी तपस्वी और त्यागी	४
भुजाओं की भाँति क्षत-त्राण	५
ऊरू उदर की भाँति सबका आधार	५
चरणों की भाँति गति-स्थिति का आधार	६
वर्ण-विभाग का आधार	७
वर्ण का आधार व्रत-निश्चय	८
वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादक मन्त्र	६
मनुष्यों की चार मुख्य प्रवृत्तियाँ	६
चतुर्धा वृत्तियाँ	६
रक्षा-वृत्ति के लोग	६
सत्त्व-वृत्ति के लोग	१०
वैश्य-वृत्ति के लोग	१०
सेवा-वृत्ति के लोग	११
अपने वर्ण का चुनाव व्यक्ति स्वयं करता है	११
वर्ण वरण पर आधृत	११
क्या वेद में वर्ण-व्यवस्था नहीं है ?	१३
मनुष्य-समाज के दो विभाग	१३
आर्य के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग	१४
दस्यु कोई वर्ण नहीं है	१४
दास शब्द के दो अर्थ	१६
दास वर्ण का अर्थ शूद्र वर्ण	१६
ब्राह्मणादि अति विशिष्ट आर्य	१७
दयानन्द और आर्य दस्यु शब्द	१७
शूद्र करुणा का पात्र, घृणा का नहीं	१८
ब्राह्मण	२०
वेदों की अन्तःसाक्षी	२०
ब्राह्मणों को वेदज्ञ होना चाहिये	२०
बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति एक ही हैं	२४
ब्राह्मण को भाँति-भाँति की विद्याओं का पण्डित होना चाहिए	२७
ब्राह्मणों को यज्ञ-यागादि करना-कराना चाहिए	४०
यज्ञों में हिंसा वेद-विहित नहीं	४१
ब्राह्मणों को संयमी होना चाहिए	४२
ब्राह्मण को युक्त होना चाहिये	४२
ब्राह्मणों को सत्यपरायण होना चाहिए	४३
ब्राह्मण की विजययात्रा	४४
ब्राह्मणों को मधुरभाषी होना चाहिए	४६

(क

S14.4,PIR93S
84273

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृ० सं०
ब्राह्मणों को तपस्वी होना चाहिये	४८
ब्राह्मणों को मेधावी होना चाहिए	४८
ब्राह्मणों को तेजस्वी होना चाहिये	४९
ब्राह्मणों का शरीर बलिष्ठ होना चाहिए	५०
ब्राह्मणों को सरलस्वभावी होना चाहिए	५०
ब्राह्मणों को अहिंसापरायण होना चाहिए	५०
ब्राह्मण की रचना का उपादान सोम तत्त्व	५२
ब्राह्मण सब प्रकार से पवित्र है	५५
ब्राह्मण सत्य पथ का नेता	५५
ब्राह्मण सब का मंगल चाहे	५६
ब्राह्मण सब प्रकार का मंगलदाता	५८
ब्राह्मण के गुणों का भी स्तवन करें	६०
ब्राह्मण योद्धा भी हो	६१
ब्राह्मण की अहिंसा और हिंसा का समन्वय	६३
जन-जन को शस्त्राभ्यास	६४
शरीरांगों द्वारा आक्रमण का निराकरण	६४
ब्राह्मणों को ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए	६७
ब्राह्मण पिता, पितामहवाला हो	६९
वर्णव्यवस्था जन्म पर नहीं, कर्म पर	६९
प्रजा के लागों को ब्राह्मणों की पालना करनी चाहिए	७०
सब कुछ ब्राह्मण का है	७०
ब्राह्मण संग्रही न हो	७१
ब्राह्मण राजनीतिज्ञ भी हो	७१
राजाओं को ब्राह्मणों का सत्कार और पालन करना चाहिए	७२
ब्राह्मण सब का अग्रणी है	७३
ब्राह्मण के जीवन का महान् और कठोर आदर्श	७३
ब्राह्मण के गुणों पर ऋषि दयानन्द	७४
क्षत्रिय	७६
वेदों की अन्तः साक्षी पर क्षत्रियवर्ण	७६
राष्ट्र-रक्षा क्षत्रिय का कर्त्तव्य	७६
क्षत्रियों को धृतव्रत होना चाहिए	७७
क्षत्रियों को सत्य का रक्षक होना चाहिए	७७
क्षत्रिय को राष्ट्र से हिंसा मिटा देनी चाहिए	७७
क्षत्रिय पाप-नाशक हो	७८
क्षत्रियों को ज्ञानी होना चाहिए	७८
क्षत्रियों को बलशाली होना चाहिए	७९
क्षत्रियों को तेजस्वी होना चाहिए	७९
क्षत्रियों को निर्भय होना चाहिए	८०
क्षत्रिय को योद्धा होना चाहिए	८०
क्षत्रियों को सदा प्रजाओं को प्रसन्न रखना चाहिए	८०
क्षत्रियों को राष्ट्र में उत्तम नीति चलानी चाहिए	८१
क्षत्रियों को यज्ञ-यागादि करने चाहियें	८१
क्षत्रियों के गुणों पर ऋषि दयानन्द	८२
वैश्य	८४
वेदों की अन्तःसाक्षी पर वैश्यवर्ण	८४
वैश्यों के गुणों पर ऋषि दयानन्द	८९
शूद्र	९०
शूद्र के गुणों पर ऋषि दयानन्द	९१
आश्रम-व्यवस्था	९२
ब्रह्मचर्याश्रम	९२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृ० सं०
गृहस्थाश्रम	९३
वानप्रस्थ आश्रम	९३
संन्यासाश्रम	९३
क्रमिक आश्रम प्रवेश	९४
वर्णाश्रम-मर्यादा और राज्य	**९५**
निम्नतम योग्यता का निर्धारण	९६
राज्य द्वारा आश्रम-व्यवस्था का परिपालन	९६
गृहस्थाश्रम का महान् प्रयोजन	९६

अध्याय [२] १०१ से १४९

विषय	पृ० सं०
वैदिक समाज एवं अर्थव्यवस्था	**१०१**
समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता	१०१
दोनों वर्गों की संख्या में महदन्तर	१०२
पतनकारी समाजव्यवस्था	१०३
धनपतियों के लिये भी पतनकारी	१०३
धन की असीम पूजा	१०४
आज के प्रजातन्त्र में धनका ही बोलबाला है	१०४
धनलोलुप शासक	१०५
धनलिप्सु राष्ट्र और अत्याचार	१०५
भीषण युद्धों का मूलकारण धन-लिप्सा	१०६
धन-लिप्सा के दुष्परिणाम	१०८
पूंजीवादी व्यवस्था का व्यापक प्रभाव	१०९
पूंजीवादी व्यवस्था को बदलना होगा।	१०९
कम्जूनिज़्म	१०९
कोई भूखा न मरे	१०९
पाँच आलम्बन पदार्थ	११०
अनुबन्ध पदार्थ	११०
पूंजीवाद के आधार	१११
वर्णव्यवस्था में धन का महत्त्व सर्वोपरि नहीं है	१११
वर्णाश्रमव्यवस्था और त्यागमय जीवन	१११
वर्णाश्रमव्यवस्था दान पर बल देती है	११२
वर्णाश्रमव्यवस्था में सम्पत्ति का विनिमय	११४
पाँच यम और पाँच नियम	११५
यम-नियमों की अनिवार्यता	११६
अपरिग्रह	११६
चार वर्ण और आश्रम	११८
आश्रम व्यवस्था द्वारा अंकुश	११८
वर्णों का चुनाव	१२०
व्रतग्रहणपूर्वक विद्याध्ययन	१२०
मनुष्य-समाज के तीन महान् शत्रु	१२२
अभाव-दुःख	१२२
अज्ञान-दुःख	१२२
अन्याय दुःख	१२३
ब्राह्मणों का व्रत	१२३
क्षत्रियों का व्रत	१२४
वैश्यों का व्रत	१२४
चारों वर्ण राष्ट्र के ट्रस्टी	१२६
शिक्षा-विषय अनूठा सिद्धान्त	१२६
वर्णों का शक्ति-सन्तुलन	१२६
ब्राह्मण की दक्षिणा गौरव	१२७
ब्राह्मण के लिए सम्मान विषतुल्य	१२७
क्षत्रिय को शासन-प्रभुता	१२७
वैश्यों को ऐश्वर्य	१२८
सम्पत्तिहरण	१२८
व्यक्ति का नैतिक कर्तव्य	१२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृ० सं०
एक विभाजक रेखा (सुदुपयोगवाद)	१२९
पुत्र-परिवर्तन का सिद्धान्त	१२९
श्रमाधिकार और स्वामित्व	१३१
सम्पत्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व	१३२
व्यक्तिगत स्वामित्व पर प्रतिवन्ध	१३२
वर्णाश्रम व्यवस्था के आध्यात्मिक प्रतिवन्ध	१३३
साम्यवाद के भौतिक प्रतिबन्ध	१३३
सम्यवाद में व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं	१३४
व्यक्तिगत स्वामित्व पर मनोवैज्ञानिक तथ्य	१३५
वर्णाश्रमव्यवस्था और व्यक्तिगत स्वामित्व	१३६
साम्यवाद के आदर्श में ढील	१३६
कम्युनिज्म व्यक्ति के ममत्व लाभ से वंचित	१३६
आदर्शवाद व्यावहारिक न रहा	१३६
प्रतिस्पर्धा का तत्त्व	१३८
व्यक्ति की योग्यतारुचि में भेद	१३९
पूर्ण साम्य मनुष्य स्वभाव के विपरीत	१४०
शिक्षा में अवसर की पूर्ण समानता	१४०
शिक्षा की अनिवार्यता	१४१
शिक्षा में वानप्रस्थाश्रम का योगदान	१४२
गृहस्थ ब्राह्मणशिक्षक उनकी आजीविका	१४२
मंहगी शिक्षा के दुष्परिणाम	१४२
निःशुल्क शिक्षा के व्यापक परिणाम	१४२

विषय	पृ० सं०
साम्यवाद का भौतिक आधार और उसका परिणाम	१४३
साम्यवाद और नैतिकता	१४५
वर्णाश्रमव्यवस्था का आध्यात्मिक आधार	१४६
जीवन का अन्तिम लक्ष्य	१४७
ब्रह्मानन्द की प्राप्ति	
समाजव्यवस्था के तीन पहलू	१४९
अध्याय [३] १५० से १५७	
वैदिक राज्यव्यवस्था	१५०
राज्य वर्णाश्रम धर्मों का व्यवस्थापक	१५१
वर्णाश्रम व्यवस्था की प्रजातन्त्रीय शासनपद्धति	१५२
साम्यवाद प्रजातन्त्र का विरोधी	१५२
वर्णाश्रमव्यवस्था की श्रेष्ठता	१५२
वर्णाश्रमव्यवस्था का वैज्ञानिक आधार	१५३
वर्णव्यवस्था और विदेशी विद्वान	१५४
भारत का अनूठा उपहार	१५६
वर्णव्यवस्था के लिए हिन्दू होना आवश्यक नहीं	१५६
अध्याय [४] १५८ से १७१	
वर्णाश्रम-धर्म की विशेषताएं	१५८
चार वर्ण	१५८
चार आश्रम	१६०
वर्णाश्रम धर्म की विशेषताएं	१६१
वर्णाश्रमधर्म और वानप्रस्थाश्रम	१६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि समर्पण शोधसंस्थान अपने जन्मकाल से ही उद्देश्य-सिद्धि की ओर अग्रसर है। चाहे वह शोध का क्षेत्र हो और चाहे प्रकाशन का संस्थान ने दो वर्ष पूर्व यह निश्चय किया था, कि महर्षि निर्वाण शताब्दी पर कुछ उत्तम वैदिक साहित्य जनता-जनार्दन की सेवा में अर्पित किया जाय। उसी के परिणामस्वरूप यह ग्रन्थ आपके हाथों में अर्पित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ विद्वद्वर्य श्री आचार्य प्रियव्रतजी वेदवाचस्पति भूतपूर्व कुलपति एवं आचार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के समाजविषयक शोधपूर्ण लेखों का संग्रह है, जो उन्होंने समय-समय पर आर्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराये थे। व्यक्तिगत रूप से मुझे १९३८ से १९४२ तक चार वर्ष उनका अन्तेवासी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। तब से लेकर अब तक उनके भाषणों को सुनने एवं अनेक लेखों तथा ग्रन्थों को पढ़ने का अवसर प्राप्त होता रहा है। विशेषकर उनके समाज-विषयक लेखों के प्रति मेरी अभिरुचि रही। मैंने मन ही मन सोच लिया कि इन लेखों को ग्रन्थ का रूप मिलना चाहिये। यह इच्छा जब मैंने आचार्यश्री के सम्मुख रखी तो उन्होंने बड़ी आत्मीयता से अपना लेखसंग्रह मुझे सौंपते हुए उसके प्रकाशन की अनुमति दे दी। वही लेख-संग्रह अब 'समाज का काया-कल्प' नाम से प्रसिद्ध हो रहा है।

ग्रन्थ का नामकरण—

ग्रन्थ के नाम से ही उसका विषय स्पष्ट है। पचास वर्ष पूर्व १९३२ में गुरुवर्य श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने 'काया-कल्प' नामक ग्रन्थ लिखा था, जिसमें उन्होंने वर्णाश्रम धर्म को नया आयाम, नया उपयाम, नया सांचा दिया था। श्री आचार्य जी का **'समाज का काया-कल्प'** नामक ग्रन्थ भी वर्णाश्रम धर्म का विस्तृत विवेचन है। काया को सामर्थ्यवान् बनाना उसे अनुप्राणित करना और उनमें नव-जीवन का संचार करना काया-कल्प कहलाता है।

काया शब्द का अर्थ प्राणी-देह, शरीर अथवा पिण्ड माना जाता है। वेदों की शैली में न केवल प्राणी ही की काया होती है अपितु समाज की भी काया मानी गयी है। जिस प्रकार आत्मा देहधारण करके ही अपने समस्त प्रयोजन सिद्ध करता है, तद्वत् समाज भी देह रूप में संगठित होकर सामाजिक और राष्ट्रीय प्रयोजनों को सिद्ध करता है। व्यक्ति को गति, स्थिति, कृति, मति चार आधारों की अपेक्षा है, इसलिए परमात्मा ने मनुष्यशरीर में इनकी पूर्त्यर्थ चार अवयव लगा दिये हैं। गति के लिए चरण, स्थिति के लिए कमर-उदर, कृति के लिए भुजा-कर और मति के लिए मस्तिष्क मुख। समाज अथवा राष्ट्र को भी गति, स्थिति, कृति और मति चाहिए। उसे भी चरण, उदर, भुजा और मस्तिष्क रूप चार अवयवों की आवश्यकता होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं चार घटकों के स्थानापन्न शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण चार वर्ण हैं। चरण स्थानीय शूद्र, उदर और कमर स्थानीय वैश्य, भुजा और कर-स्थानीय क्षत्रिय एवं मुख और मष्तिष्क-स्थानीय ब्राह्मण कल्पित किये गये हैं। चरणभूत शूद्र राष्ट्र को गति प्रदान करता है, कमर और उदरभूत वैश्य राष्ट्र को स्थिति, प्रदान करता है, भुजा और करभूत क्षत्रिय राष्ट्र को कृति प्रदान करता है एवं मष्तिष्क और मुखभूत ब्राह्मण राष्ट्र को मति प्रदान करता है। इन्हीं चार घटकों से निर्मित समाज-पुरुष के काया की अभिव्यक्त होती है। व्यक्ति की भांति वह भी गति करता है स्थिति बनाता है, नई-नई कृतियां करता है, सोचता-विचारता है, बोलता है। मनुष्य-काया की भांति समाज-काया के जर्जरित होने पर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करना ही 'समाज का कायाकल्प' समझा गया है।

मनुष्य हर क्षेत्र में प्रगति कर रहा है चाहे वह वैयक्तिक जीवन हो, सामाजिक अथवा राष्ट्रीय, नये नये आयाम बन रहे हैं। नये नये सांचे बनाये जा रहे हैं जिसमें व्यक्ति और समाज को ढालने का प्रयत्न हो रहा है। यही कारण है कि आये दिन नए नए वाद जन्म ले रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने व्यक्ति और समाज का एक आयाम, एक सांचा उपस्थित किया है। वैयक्तिक आयाम को आश्रमधर्म की संज्ञाएं प्रदान की हैं। ये आयाम नये नहीं पुराने हैं, नित्य हैं उतने पुराने कि जितने वेद पुराने हैं, उतने पुराने कि जब से मनुष्य ने इस धरती पर पैर रखे हैं। इन आयामो में जहां-कहीं घुन लग गये थे, जंग लग गई थी, काई के रूप में मैल आ गई थी उसको साफ करके निखार प्रदान कर दिया गया है। अब इन सांचों में जिस व्यक्ति और समाज को ढाला जायेगा, वही विश्वहित और विश्वशांति का आधार होगा।

पाठक कहेंगे बीसवीं सदी में इस पाठ के पढ़ाने की क्या आवश्यकता है। पुरानी लीक को पीटना कौनसी बुद्धिमत्ता है। पुराने मुर्दों को उखाड़ना असामयिक है। हम पाठकों से कहेंगे कि हमारा कोई ऐसा आग्रह नहीं कि पुरानी हर चीज अच्छी ही होती है और नई हर चीज बुरी ही होती है। महाकवि के शब्दों में **पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि सर्वं, नवमित्यवद्यम्।** पाठक इस बात से सहमत होंगे कि कितने ही नये आयाम बनें, नये सांचे घड़े जाएं, मनुष्य का ढांचा वही रहेगा, उसे नहीं बदला जा सकता। उसके घटक निश्चित हैं, घटकों के स्थान और आकृति निश्चित हैं। नवीनता के प्रलोभन में आकर यदि कोई व्यक्ति देह का नया सांचा बनाने लगे और मुखाकृति को गोल न बनाकर सपाट और चतुष्कोण बनाना चाहा तो क्या कोई वैज्ञानिक इसमें सफल होगा ? सर्वथा असम्भव है। यह रचना सार्वभौम, स्वाभाविक है, पुरानी होते हुए सदा नवीन है। इसी की आकृति समाज-देह का ढांचा भी अपरिवर्तित है। वर्णों का स्थान निश्चित है, उनके कर्तव्य, गुण-कर्म-स्वभाव निश्चित हैं। अत्यन्त प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हुए भी सदा नवीन है। विद्वान् लेखक ने अपने ग्रन्थ में इन समस्त आयामों को सप्रमाण पुष्ट किया है। इसकी साक्षी ग्रन्थ का पृष्ठ-पृष्ठ और पंक्ति-पंक्ति देती है।

एक बात की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना आवश्यक है। सम्भव है कि उन्हें लगे कि ग्रन्थ में पुनरुक्ति-दोष अथवा पिष्टपेषण बहुत अधिक है। इस सारी बात को थोड़े में भी कहा जा सकता था। मेरा उनसे नम्र निवेदन है कि इस ग्रन्थ को पाठक गहराई से देखें, यदि ऊपरी दृष्टि से देखेंगे तो उन्हें कुछ भी हाथ न लगेगा और यदि उनकी गहरी पैठ होगी तो अवश्य ज्ञान-मोती उनके हाथ लगेंगे। ये लेख समय-समय पर लिखे गये हैं, उस समय कि जब किसी पत्र-पत्रिका के सम्पादक ने श्री आचार्य जी से कि आप **वैदिक धर्म और अर्थ-व्यवस्था** अथवा **वैदिक धर्म और समाज-व्यवस्था** फिर कभी **वैदिक धर्म और शिक्षापद्धति** आदि अन्य अनेक विषयों पर लिखने को कहा तो विद्वान् लेखक ने तत्तद्, विषय को वैदिक धर्म की सीमाओं में रहकर समाधान किया। वर्णाश्रम धर्म के आयाम में ढालकर ही तत्तद् प्रश्नों का समाधान भिन्न-भिन्न लेखों में किया गया है। अतः स्वाभाविक था कि वर्णाश्रम धर्म का उल्लेख बार-बार होता। आप उसे उसी रूप में देखें अन्यथा न लें।

आचार्य प्रियव्रत जी गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के प्रतिष्ठित स्नातक और उसकी सर्वोच्च उपाधि 'वेदवाचस्पति' से अलंकृत हैं। साथ ही विश्वविद्यालय की विशेष सम्मानित उपाधि **विद्या-मार्तण्ड'** से सुशोभित हैं। देश के विभाजन से पूर्व लाहौर के श्रीमद् दयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्य पद पर आसीन रहे, तत्पश्चात् गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी के आचार्य एवं कुलपति पद को भी सुशोभित किया। वेद और वैदिक संस्कृति के तलस्पर्शी विद्वान् होने के कारण जहाँ एक ओर आर्य समाज के मंच की शोभा रहे वहां लेखन के क्षेत्र में भी अपूर्व कार्य किया, जिससे वैदिक साहित्य की श्रीवृद्धि हुई। लेखक के प्रकाशित प्रसिद्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं **१—वेदों के राजनीतिक सिद्धांत** (तीन भाग), **२—वेद का राष्ट्रीय गीत**, **३—वेदोद्यान के चुनेहुए फूल**, **४—वरुण की नौका** (भाग दो), **५—मेरा धर्म**, **६—समाज का कायाकल्प** (आपके हाथों में)। अप्रकाशित ग्रन्थों की संख्या तीन है। **१—सृष्टि उत्पत्ति का वैदिक सिद्धान्त**, **२—अथर्ववेद के चुने हुए फूल** और **३—मेरा धर्म** (द्वितीय भाग)। जिन्हें समर्पण शोधसंस्थान शीघ्र ही प्रकाशित करवाकर आर्यजनता को भेंट करेगा।

अन्त में मैं श्री आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति का अत्यन्त आभारी हूं कि जिन्होंने समर्पण शोधसंस्थान को इस ग्रन्थ के प्रकाशन का अधिकार दिया। हमें आशा है कि शेष अप्रकाशित ग्रन्थ भी संस्थान को प्रदान कर अनुगृहीत करेंगे।

दीक्षानन्द सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय

[१]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१] वेद और वर्णाश्रम-व्यवस्था

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है—

यह अति प्रसिद्ध उक्ति है कि—"मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" वह एकाकी नहीं रह सकता। उसका सर्वथा अकेले रहकर निर्वाह हो सकना असंभव है। उसे अन्य साथियों, सहयोगियों की आवश्यकता है। यही कारण है कि वे ग्राम, कस्बा या नगर बसाकर रहते हैं। वे सभी परस्पर सहयोग और सहानुभूति से रहना पसन्द करते हैं, न केवल रहना ही अपितु मिलकर विचार करना, मिलकर (वाद-विवाद) बोलना और एक होकर चलना पसन्द करते हैं। इस प्रकार एक होकर सोचने, बोलने और चलने वाले सदस्यों की संस्था को ही समाज कहते हैं। **'सममजन्ति जनाः यस्मिन् स समाजः'** स्वयं भगवती श्रुति ने भी कहा कि जब पहले पहल मनुष्यों ने स्वराज्य-स्थापना के लिए प्रयत्न किया तो उन सभी मनुष्यों की गति अथवा चाल [अजः] मिलकर एक हो गई थी [संबभूव] तब कहीं धरती पर मनुष्य-प्राणी का स्वराज्य स्थापित हो सका था **'यद् अजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय'**।

शरीरांगों की भांति संवेदनशीलता—

मनुष्य-समाज के घटकों में परस्पर वैसी और उस प्रकार के सहयोग, सहानुभूति की अपेक्षा है, कि जैसी और जिस प्रकार की शरीर के अंगों में है। कैसी और कितनी परस्पर संवेदना होनी चाहिए, जैसी और जितनी मनुष्य-शरीर के अंगों में है। शरीर के किसी भी अंग में पीड़ा होने पर मुंह से आह और आंसू स्वतः निकलने लगते हैं। हाथ सहलाने, थपथपाने एवं दबाने के लिए स्वतः पहुंच जाते हैं और पांव उसकी निवृत्त्यर्थ योग्य चिकित्सक की तलाश में स्वतः दौड़ पड़ते हैं। यह सब इतना सहज और स्वाभाविक तौर पर होता है कि मानो मनुष्य कोई स्वचालित मशीन हो। यही कारण है कि स्वयं वेद भगवान् ने भी समाज के प्रत्येक व्यक्ति को परस्पर सहयोग सहानुभूति का सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए पुरुष-शरीर से ही उपमा दी और समाज को भी पुरुष रूप में चित्रित किया। उसके मुख, बाहु, ऊरु और चरण बताकर उनका स्पष्ट वर्णन भी कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य-शरीर से उपमित समाज-पुरुष—

यह आवश्यक था कि मनुष्य के सामने कोई ऐसी मिसाल रखी जाती कि जिसकी अनुकृति में समाज-संरचना में अपूर्व योगदान होने के साथ-साथ उसकी जानी पहचानी होती। यही कारण है कि वेदों ने समाज को पुरुष रूप में चित्रित किया। मनुष्य के लिए अपने शरीर से अधिक परिचित कोई अन्य उपमा हो ही न सकती थी। मनुष्य-प्राणी के आंखें खोलते ही जो वस्तु उसके सामने थी उसकी अपनी अथवा अपने माता-पिता की देह ही तो थी। सर्वप्रथम उसे इसी का इसके एक-एक अंग का परिचय कराया गया था फिर बड़ा होने पर उसके सामने ब्रह्माण्ड देह विद्यमान था, विराट् पुरुष था। उसका परिचय कराते हुए भी अथर्ववेद के शब्दों में यही कहा गया था कि "भूमि ही जिसके पांव हैं, अन्तरिक्ष ही जिसका उदर है, दिव् ही जिसकी मूर्धा है" इत्यादि। योग्य गुरु की यही पहचान है कि वह शिष्य को ज्ञात से अज्ञात का बोध कराये, अतः परमगुरु ईश्वर ने भी ज्ञात पिण्ड-पुरुष के आश्रित अज्ञात समाज-पुरुष का परिचय कराया। अथर्ववेद में जहां एक ओर विराट् पुरुष का वर्णन है, केन-सूक्त में जहाँ पिण्ड-पुरुष के एड़ी से लेकर चोटी तक का वर्णन है वहां सभी संहिताओं में पुरुष-सूक्त के माध्यम से समाज-पुरुष का भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन है।

प्रश्न और उसका समाधान—

स्वयं भगवान् के सामने भी यह प्रश्न था कि—मनुष्य को कैसे समझाया जाये कि जिस प्रकार व्यक्ति-पुरुष को गन्तव्य के लिए गति-साधन चरणों की, स्थातव्य क लिए स्थिति-साधन ऊरु उदर की, कर्तव्य के लिए कृति-साधन करों की, वक्तव्य के लिए उक्ति-साधन मुख की, मन्तव्य के लिए मति-साधन मन, मस्तिष्क की आवश्यकता है, उसी प्रकार समाज-पुरुष को भी गति के लिए चरणों की, स्थिति के लिए ऊरु उदर की, कृति के लिए बाहू-कर की, मति के लिए मुख-मस्तिष्क की आवश्यकता है, क्योंकि समाज-पुरुष भी चलता है, ठहरता है, (रक्षा) करता है, बोलता है। अतः इन चारों अंगों के स्थानापन्न किन्हीं व्यक्तियों की आवश्यकता है। इन्हीं व्यक्तियों का नाम है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मनुष्य-समाज के इन चार विभागों का वर्णन करने वाला पुरुष-सूक्त का प्रसिद्ध मंत्र निम्न प्रकार है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्, बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

ऋग् १०।९०।१२, यजुर् ३१।११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ अथर्व १९।३।६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—"(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अस्य) इस मनुष्य-समाज का (मुखं) मुख है, (राजन्यः) क्षत्रिय (बाहू) भुजाएं (कृतः) बनाया गया है; (यद्) जो (वैश्यः) वैश्य है (तत्) वह (ऊरु) जंघाएं हैं, और (पद्भ्यां) पैरों के लिए (शूद्रः) शूद्र (अजायत) बना है।"

अथर्ववेद का मन्त्र थोड़े से पाठभेद के साथ वही है जो ऋग्वेद और यजुर्वेद का है। अथर्ववेद में ऋग् और यजुर् के "बाहू राजन्यः कृतः" के स्थान में "बाहू राजन्यः अभवत्" और "ऊरु तदस्य यद्वैश्यः" के स्थान में "मध्यं तदस्य यद् वैश्यः" ऐसा पाठ है। अथर्ववेद के "बाहू राजन्यः अभवत्" का तो वही अर्थ है जो "बाहू राजन्यः कृतः" का है। "मध्यं तदस्य यद्वैश्यः" में ऋग् और यजुः के "ऊरु" के स्थान में अथर्व में "मध्य" पद प्रयुक्त हुआ है। "ऊरु" का अर्थ जंघाएं होता है और "मध्य" का अर्थ बीच का हिस्सा होता है। अथर्ववेद में प्रयुक्त हुए "मध्यं" शब्द ने ऋग्वेद और यजुर्वेद के "ऊरु" शब्द की व्याख्या कर दी है। अथर्ववेद के "मध्यं" शब्द के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि शेष दोनों वेदों में प्रयुक्त "ऊरु" शब्द को शरीर के मध्य-हिस्से का उपलक्षण समझना चाहिये। अर्थात् "ऊरु" का अर्थ जंघाएं और जंघाओं से उपलक्षित पेट, करना चाहिये। पेट और जंघायें ही शरीर के मध्य-भाग का निर्माण करते हैं। फलतः मनुष्य-समाज के शरीर का मध्य भाग वैश्य को समझना चाहिये।

मंत्रार्थ-निष्कर्ष—

यह मंत्र वैदिकधर्म के समाज-संगठन सम्बन्धी वर्णव्यवस्था सिद्धांत का प्रधान और आधारभूत मंत्र है। वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में अन्यत्र वेद में तथा वैदिक-साहित्य के अन्य ग्रन्थों में जो कुछ लिखा गया है वह इसी मंत्र की विस्तृत व्याख्या और भाष्यमात्र है। इस मंत्र से जो निष्कर्ष निकलते हैं उन्हीं को प्रकारान्तर से वेद में अन्यत्र तथा वैदिक साहित्य के ऋषिकृत दूसरे ग्रन्थों में विस्तार के साथ कहा गया है। इस लिये समाज-संगठन के सम्बन्ध में इस महत्त्वपूर्ण मंत्र से जो निष्कर्ष निकलते हैं, उन्हें ज़रा ध्यान से देख लेने की आवश्यकता है।

अनिवार्य विभाजन—

१—पहली बात तो जो मंत्र को पढ़ते ही सबसे प्रथम ध्यान में आती है, वह यह है कि मनुष्य-समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार विभागों में विभक्त होना चाहिये। किसी भी राष्ट्र में रहने वाले लोगों को अपने जन-समाज को इन चार विभागों में विभक्त करके रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज-शरीर और अंगचतुष्टय—

२—दूसरी बात जो मंत्र को गम्भीरता से पढ़ने पर स्पष्ट ध्यान में आती है वह यह है कि मंत्र में मनुष्य-समाज को मनुष्य-शरीर से उपमा दी गई है। जैसे मनुष्य-शरीर में मुख, हाथ, पेट और पैर होते हैं, वैसे ही मनुष्य-समाज में भी मुख, हाथ, पेट और पैर होते हैं। जैसे शरीर के मुख, हाथ आदि अंग मिलकर शरीर का निर्माण करते हैं वैसे ही समाज के मुख, हाथ आदि अंग मिलकर समाज-शरीर का निर्माण करते हैं। मनुष्य-शरीर की भांति समाज भी एक प्रकार का शरीर (Organism) है। जैसे शरीर की पुष्टि और उन्नति के लिये उस प्रत्येक अंग का पुष्ट और उन्नत होना आवश्यक है, वैसे ही किसी जन-समाज की पुष्टि और उन्नति के लिये भी इसके प्रत्येक अंग का पुष्ट और उन्नत होना आवश्यक है। जैसे शरीर के किसी अंग की अपुष्टि और उसके किसी अंग का रोग समग्र शरीर के लिये घातक हो जाते हैं, उसी प्रकार जन-समाज के किसी अंग की अपुष्टि, उसके किसी अंग की अवनति, समग्र समाज की अवनति और हीनता का कारण बन जाती है। इसलिये समाज की उन्नति के लिये उसके सब अंगों का उन्नत होना अत्यावश्यक है।

३—तीसरी बात जो मंत्रों के शब्दों से निकलती है वह यह है कि मंत्र में ब्राह्मण आदि को मुख आदि कहा गया है। ब्राह्मण आदि का यह मुख आदि के साथ रूपक ब्राह्मण आदि के गुणों पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डालता है। ब्राह्मणादि के मुखादि के साथ इस रूपक से ब्राह्मणादि के गुणों पर किस प्रकार प्रकाश डालता है, यह शरीर में मुखादि के कार्यों को देखने से स्पष्ट हो जाता है।

मुखवत् ज्ञानी, तपस्वी और त्यागी—

ब्राह्मण समाज का मुख है। अब ज़रा मुखके कार्य और गुणों पर दृष्टि डालिये। मुख में आंख, नाक, कान, रसना और त्वचा ये पांच ज्ञानेन्द्रियां एकत्र हैं। शेष शरीर में केवल त्वचा ही एक ज्ञानेन्द्रिय है। इस प्रकार मुख में शरीर के और अंगों की अपेक्षा पांच गुणा ज्ञान रहता है। ब्राह्मण जन-समाज का मुख है। यहां मुख से तात्पर्य सारे शरीर से है। (संस्कृत साहित्य में मुख शब्द सारे शरीर या चेहरे के लिये बहुधा प्रयुक्त होता है। 'चन्द्र इव मुखम्-'—यह मुख चन्द्रमा जैसा मनोहर है—इत्यादि वाक्यों में मुख से तात्पर्य—मुख छिद्र से नहीं होता, प्रत्युत सारे शरीर या चेहरे से होता है। समाज के अन्य क्षत्रियादि अंगों की अपेक्षा ब्राह्मण में पांच गुणा [अर्थात् बहुत अधिक] ज्ञान रहना चाहिये।) मुख बोलकर अपने ज्ञान को दूसरों तक पहुंचाता है। ब्राह्मण समाज का मुख है, अतः उसे भी अपना ज्ञान उपदेश द्वारा दूसरे लोगों तक पहुंचाना चाहिये। इस प्रकार, जो लोग ज्ञान के अर्जन और अर्जित ज्ञान के प्रचार में लगे रहते हैं वे ब्राह्मण हैं। मुख तपस्वी है, कठोर से कठोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीत के दिनों में भी जबकि हम सारे शरीर को वस्त्रों से ढक लेते हैं, हमारा मुख नग्न ही रहता है। ब्राह्मण समाज का मुख है। उसे मुख की भाँति तपस्वी होना चाहिये। उसे शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहने का अभ्यास होना चाहिये। इसी के उपलक्षण से उसे मानसिक क्षेत्र में मान-अपमान आदि द्वन्द्वों के सहने का भी अभ्यास होना चाहिये। मुख स्वार्थरहित और परोपकारी है, वह संचित ज्ञान को अपने पास नहीं रखता, उसे औरों को सुना देता है, प्राप्त हुए भोजन को वह अपने पास नहीं रखता, उसे पचने योग्य बनाकर, पेट के अर्पण कर देता है, जहां से वह सब अंगों को पहुंचता है। ब्राह्मण समाज का मुख है, उसे मुख की तरह स्वार्थहीन और परोपकारी होना चाहिये। उसे अपना सब ज्ञान और अपनी सब शक्तियां समाज के उपकार में लगा देनी चाहियें। यदि मुख स्वार्थी हो जाये, प्राप्त हुए भोजन को अपने में ही रखे और कण्ठ से नीचे नहीं उतरने दे, तो सड़ांद होकर मुख स्वयं भी नष्ट हो जायेगा और सारे शरीर को भी नष्ट करेगा। इसी प्रकार स्वार्थी ब्राह्मण स्वयं भी नष्ट हो जायेगा और समाज को भी नष्ट करेगा। जो मुख की भांति ज्ञानवान्, ज्ञान का उपदेष्टा, तपस्वी, सहनशील, स्वार्थहीन और परोपकारी है, वह ब्राह्मण है।

भुजाओं की भांति क्षत-त्राण—

क्षत्रिय समाज की भुजायें हैं। भुजाओं में बल है। जब शरीर पर कहीं से भी किसी प्रकार का प्रहार होता है तो भुजायें आगे बढ़कर उस प्रहार को अपने ऊपर ओटती हैं, और शत्रु पर प्रहार करती हैं। प्रहार से स्वयं घायल होना स्वीकार करती हैं परन्तु शरीर के अन्य अंगों को घायल नहीं होने देतीं। शरीर के शत्रुओं पर प्रहार करके उनके नाश का प्रयत्न करती हैं। इसी प्रकार, जो लोग अपने भीतर बल की विशेष वृद्धि करते हैं और उस बल से समाज की रक्षा करते हैं, वे क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय समाज के किसी भी अंग पर कहीं से कोई प्रहार, कोई अत्याचार नहीं होने देगा। वह आगे बढ़कर प्रहार को, अत्याचार को रोकेगा। स्वयं कष्ट में पड़ना स्वीकार करेगा—यहां तक कि मृत्यु तक का आलिंगन करने को भी उद्यत रहेगा—पर समाज के किसी अंग को अन्याय-अत्याचार से पीड़ित नहीं होने देगा। वह समाज की रक्षा और उसके शत्रुओं के विनाश के लिये सदा अपना रुधिर बहाने के लिये उद्यत रहेगा। जो शरीर में भुजाओं की भांति समाज की अन्याय और अत्याचार से रक्षा करने के लिए सदा तत्पर रहता है, और इस कार्य के लिए सदा अपनी जान हथेली पर लिये फिरता है, वह क्षत्रिय है। क्षत्रिय समाज की भुजा है।

ऊरु उदर की भांति सबका आधार—

वैश्य समाज का मध्य-भाग है। शरीर के मध्य-भाग में पेट का प्रधान स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पेट के कार्य से वैश्य के कार्य पर प्रकाश पड़ता है। खाया हुआ अन्न पेट में जाकर एकत्र होता है। पेट उस अन्न को पचाकर रस बना देता है और फिर उस रस को रुधिर में मिला देता है। रुधिर में मिला हुआ यह रस शरीर के प्रत्येक अंग में पहुंचकर उसे भोजन देता है, उसे पुष्टि और बल देता है। वैश्य समाज का मध्य है, पेट है। पेट जैसे शरीर के सब अंगों के लिए रस तैयार करके, भोजन तैयार करके देता है, वैसे ही वैश्य को समाज के ब्राह्मण आदि सब अंगों को भोजन तैयार करके देना होगा। समाज का जो अंग समाज-शरीर के सब अंगों के भरण-पोषण का भार अपने ऊपर लेता है वह वैश्य कहा जायेगा। मध्य-भाग में जंघायें भी सम्मिलित की गई हैं। जंघाओं का काम चलना फिरना है। जो जंघाओं की तरह चले-फिरेगा देश-देशान्तर में आ-जाकर व्यापार-व्यवसाय करेगा, वह वैश्य कहलायेगा। देश-देशांतर में आ-जाकर व्यापार-व्यवसाय करना, और उसके द्वारा अपने राष्ट्र के जन-समाज के भरण-पोषण का उपाय करना, वैश्य का कर्तव्य है। ये वैश्य राष्ट्र-शरीर के मध्यभाग होते हैं जिसके ऊपर उनके सब अंगों का जीवन निर्भर होता है।

चरणों की भांति गति-स्थिति का आधार—

पैरों के काम के लिये 'शूद्र' है। शूद्र समाज-शरीर का पैर है। पैरों का शरीर में क्या काम है? पैर सारे शरीर को अपने ऊपर उठाये रहते हैं। सारे शरीर को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाते हैं। स्वयं धूल, मिट्टी, कीचड़ आदि में रहते हैं परन्तु बाकी शरीर को साफ़ बचाये रहते हैं। पैरों में शेष शरीर की सेवा का ही यह एक विशेष गुण है। और कोई विशेष गुण पैरों में नहीं होता। जो लोग ज्ञान आदि विशेष गुण अपने अन्दर नहीं रखते, और इसीलिये वे समाज के ब्राह्मण आदि अन्य अंगों की सेवा का ही कार्य कर सकते हैं, उन्हें शूद्र कहते हैं। ये शूद्र लोग ब्राह्मणादि की सेवा करके उन्हें उनके ज्ञानार्जन और ज्ञान-प्रचार आदि के कार्यों के लिये अधिक समय प्राप्त कर सकने में सहायता देकर राष्ट्र-शरीर की सेवा करते हैं। यदि ब्राह्मण आदि को अपनी सेवा के वस्त्र धोना, भोजन बनाना, बरतन मांजना, झाड़ू देना, और हजामत करना आदि सारे काम स्वयं ही करने पड़ें, तो उन्हें उनके ज्ञानार्जन और ज्ञान-प्रचार आदि के कार्यों के लिये समय कम मिलेगा और फलतः वे राष्ट्र के लिये अधिक उपयोगी कार्य कम कर सकेंगे। शूद्र लोग उनकी इस प्रकार की सेवाएं करके उन्हें राष्ट्र के लिये अधिक उपयोगी काम करने का अधिक अवसर प्रदान करते हैं। और इस भांति वे भी एक प्रकार से राष्ट्र के हित-साधन का काम करते हैं। ज्ञान आदि विशेष गुण न होने के कारण जो लोग केवल समाज-शरीर की सेवा का ही कार्य कर सकते हैं, उन्हें शूद्र कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण-विभाग के आधार—

४— चौथी बात जो मन्त्र को ध्यान पूर्वक देखने से प्रकट होती है वह यह है कि ब्राह्मण आदि का विभाग घृणा पर ऊँच-नीच के भेद पर अवलम्बित नहीं है। यह विभाग अपनी शक्तियों द्वारा समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सकने के भाव पर अवलम्बित है। शरीर के मुख, भुजा आदि अंग एक दूसरे से घृणा नहीं करते। वे एक दूसरे के साथ मिलकर रहते हैं। वे एक दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझते हैं। मुख का दुःख जिस प्रकार सारे शरीर का दुःख होता है उसी प्रकार पैर का दुःख भी सारे शरीर का दुःख होता है। एक की पीड़ा सब की पीड़ा होती है और एक का सुख सब का सुख होता है। जब पैर में कांटा चुभ जाता है तो पैर के उस दुःख को अपना दुःख समझकर, क्षत्रिय-भुजा उसे निकालने के लिए अपनी अंगुलियें और नाखुन वहाँ भेजती है और ब्राह्मण-मुख अपने दांत वहां भेजता है। शूद्र-पैर का वह दुःख दूर हो जाने पर ही इनको चैन पड़ती है। यही अवस्था समाज-शरीर में उसके मुख, भुजा, पेट और पैर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की होनी चाहिये। उनमें परस्पर किसी प्रकार की घृणा नहीं होनी चाहिये। उन्हें परस्पर प्रेम से मिलकर रहना चाहिये। एक दूसरे का सुख-दुःख उन्हें अपना सुख-दुःख समझना चाहिये। एक दूसरे की उन्नति-अवनति उन्हें अपनी उन्नति-अवनति समझनी चाहिये। शूद्र के कष्ट और विपत्ति ब्राह्मण को अपना कष्ट और विपत्ति समझना चाहिये और ब्राह्मण के कष्ट और विपत्ति शूद्र को अपने कष्ट और विपत्ति समझने चाहियें, और ऐसा समझकर सब को सब के कष्ट और विपत्ति दूर करने में तथा सुख और सम्पत्ति बढ़ाने में निरन्तर भरपूर प्रयत्न करना चाहिये। उन्हें समझना चाहिये कि सब का जीवन सब के सहयोग पर अवलम्बित है। इसलिये कोई किसी से ऐसा ऊंचा नहीं है कि वह घमण्ड में चूर होकर दूसरे से घृणा करने लगे। यदि कुछ ऊँच-नीच है तो वह योग्यता और सेवा पर अवलम्बित है। जो जितना अधिक गुणवान् है और जितना अधिक दूसरों की सेवा करता है, वह उतना ही अधिक ऊँचा है। योग्यता और तज्जन्य सेवा के कारण ही वह ऊँचा एवं दूसरों के मान और सत्कार का पात्र बनता है, अपने से अधिक योग्य और राष्ट्र की अपने से अधिक सेवा करने वाले व्यक्ति को अपने से ऊँचा मानना, और ऊँचा मानकर उसका मान और सत्कार करना, सत्कार करने वाले व्यक्ति की आत्मा को उन्नत करता है और सत्कृत व्यक्ति को राष्ट्र-सेवा के लिए और अधिक उत्साहित करता है। इस प्रकार की सात्त्विक ऊँच-नीच के अतिरिक्त और किसी प्रकार की ऊँच-नीच की भावना वेद के ब्राह्मणादि वर्ण-विभाग में नहीं है। वैदिक उपदेश के वास्तविक रहस्य को न समझने के कारण आधुनिक हिन्दू-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में प्रचलित जन्म पर आश्रित वर्णव्यवस्था में जो ऊँच-नीच के भाव पाये जाते हैं वे घृणा पर अवलम्बित भेद-भाव, इस वर्ण-विभाग में कहीं नहीं हैं। ब्राह्मण सबसे ऊँचा इसलिये है क्योंकि वह सबसे योग्य और राष्ट्र का सबसे अधिक सेवक है। शरीर में सिर का सब अंगों से अधिक महत्त्व है, क्योंकि सिर पर शरीर का जीवन सबसे अधिक अवलम्बित है, इसी प्रकार राष्ट्र में ब्राह्मण का महत्त्व सबसे अधिक इसलिये है कि उस पर राष्ट्र के जीवन की उन्नति सबसे अधिक अवलम्बित है।

वर्ण का आधार व्रत-निश्चय—

वेद का यह ब्राह्मणादि वर्ण-विभाग योग्यता, सेवा, सहयोग और प्रेम पर आश्रित है। इसमें घृणा और मानसिक तुच्छता को स्थान नहीं है।

इस प्रकार इस मन्त्र में जो उपदेश दिया गया है उसका निष्कृष्टार्थ यह है कि प्रत्येक राष्ट्र का जन-समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (इन चार विभागों) में विभक्त होना चाहिये। जो लोग भांति-भांति के विद्या-विज्ञानों के क्षेत्र में जीवन लगाकर ज्ञान के संग्रह और संगृहीत ज्ञान के प्रचार में लगे रहेंगे, तपस्या का जीवन व्यतीत करेंगे, सहनशील, स्वार्थहीन और परोपकारी होंगे वे ब्राह्मण कहलायेंगे। जो लोग अपने अन्दर बलवीर्य का विशेष सम्पादन करेंगे और इस संचित शक्ति को राष्ट्र के लोगों की अन्याय, अत्याचार से रक्षा करने में ख़र्च करेंगे—उन्हें क्षत्रिय कहा जायेगा। जो लोग अपना जीवन भाँति-भांति के व्यापार-व्यवसाय करके भोजन, वस्त्र आदि प्राकृतिक सम्पत्ति उत्पन्न करने और इस सम्पत्ति द्वारा राष्ट्र के लोगों का भरण-पोषण करने में लगायेंगे—उन्हें वैश्य कहा गया है। जो लोग न तो ज्ञान-संचय और ज्ञान-प्रचार का काम कर सकेंगे और न ही अन्याय-अत्याचार से राष्ट्र के लोगों की रक्षा और न प्राकृतिक सम्पत्ति की उत्पत्ति करके उनके भरण-पोषण का काम कर सकेंगे, केवल ब्राह्मणादि की सेवा कर सकेंगे—उन्हें शूद्र कहा जायेगा। दूसरे शब्दों में जो लोग राष्ट्र के अज्ञान से पैदा होने वाले कष्टों को दूर करने का व्रत लेंगे, वे ब्राह्मण कहलायेंगे, जो लोग अन्याय से होने वाले राष्ट्र के कष्टों को दूर करने का व्रत लेंगे, वे क्षत्रिय कहलायेंगे, जो लोग सम्पत्ति के अभाव से होने वाले राष्ट्र के कष्टों को दूर करने का व्रत लेंगे, वे वैश्य कहलायेंगे। और जो लोग इन तीनों कामों में से कोई भी विशिष्ट कर्म न कर सकेंगे, केवल इन कामों को करने वाले लोगों की सेवा ही कर सकेंगे—उन्हें शूद्र कहा जायेगा। इन चारों प्रकार के लोगों को परस्पर प्रेम से मिलकर रहना चाहिये और सब को अपने आपको राष्ट्र के समाज-शरीर का अंग समझना चाहिये। ऐसा समझकर उन्हें सामूहिक-जीवन की उन्नति के लिये निरन्तर उद्योगशील रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादक एक और मन्त्र—

इस प्रसंग में ऋग्वेद का निम्न मन्त्र भी देखने योग्य है—

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभि प्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ।। ऋग् १-११३-६।।

मन्त्र का शब्दार्थ इस प्रकार है—

[त्वं] एक को [क्षत्राय[1]] बल और राष्ट्र सम्बन्धी [श्रवसे[2]] यश के लिये [त्वं] एक को [महीयै] बड़े-बड़े [इष्टये] यज्ञों के लिये [त्वं] एक को [अर्थम्] धन के [इव[3]] लिये, [त्वं] एक को [इत्यै] चलने फिरने के लिये इस प्रकार [विसदृशा] असमान स्वभाव वाले [जीविता] प्राणियों को [अभिप्रचक्षे] अपने-अपने काम करने के लिये प्रकाशित करने के लिये [उषाः] उषा ने [विश्वा] सब [भुवनानि] लोगों को [अजीगः] उगलकर अन्धकार से बाहर कर दिया है।

सब जगत् अन्धकार से निगला हुआ पड़ा था। प्रातःकाल उषा आई और उसने जगत् को उगलकर अन्धकार से बाहर कर दिया। उषा ने जगत् को अन्धकार से बाहर क्यों कर दिया ? इसलिये कि विभिन्न स्वभाव वाले लोगों को प्रकाश मिल सके, जिससे वे अपने-अपने कामों को भली भांति कर सकें। कोई क्षत्र कर्म करसके, कोई यज्ञ के कर्म कर सके, कोई धन-सम्पादन के कर्म कर सके, और कोई चल-फिर कर साधारण सेवा आदि के कर्म करसके।

मनुष्यों की चार मुख्य प्रवृत्तियाँ

चतुर्धा वृत्तियाँ—

मन्त्र कहता है कि प्राणी विसदृश होते हैं। वे एकसमान नहीं होते। उनके स्वभाव भिन्न-भिन्न होते हैं। और स्वभावों की भिन्नता के कारण वे कर्म भी भिन्न-भिन्न प्रकार के करते हैं। मनुष्य-स्वभाव की भिन्नता के कारण किस प्रकार के भिन्न-भिन्न काम किया करते हैं इसका एक सामान्य वर्गीकरण मन्त्र के पूर्वार्द्ध में कर दिया गया है।

रक्षावृत्ति के लोग—

कुछ लोगों को यश से प्रेम होता है। क्षत्र शब्द वैदिक साहित्य में बल और राष्ट्र अर्थों में प्रयुक्त होता है। क्षत्रिय अर्थ में भी यह शब्द वेद और दूसरे संस्कृत-साहित्य में खूब प्रयुक्त होता है। यहां यह शब्द 'श्रवः' का विशेषण होकर आया है। श्रवः

१. ओजः क्षत्रम्। ऐ० ८-२,३,४।। क्षत्रं हि राष्ट्रम्। ऐ० ७-२२।।
२. श्रवो यशः-श्रूयते इति श्रवः। ऋग् १.१२६-२ भाष्य में श्रवः कीर्तिमिति सायणः।
३. अर्थमिव अर्थं प्रति इति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यश को कहते हैं। इसलिये क्षत्रं श्रवः का अर्थ होगा बल-सम्बन्धी, राष्ट्र-सम्बन्धी और क्षत्रियों-सम्बन्धी यश। कुछ लोगों को बल के, राष्ट्ररक्षा के, क्षत्रियोचित कार्य करके यशस्वी बनने की इच्छा होती है। क्षत्रिय शब्द का अर्थ ही यह होता है—जो क्षत्र अर्थात् राष्ट्र-रक्षा और बल-वीरता के कार्यों में निपुण हो।

सत्त्व-वृत्ति के लोग—

कुछ लोगों को इष्टियों से प्रेम होता है, भांति-भांति के यज्ञ-यागादि कर्मों में अभिरुचि होती है। यज्ञ शब्द बहुत विस्तृत भाव को अपने भीतर लिये हुए है। एक तो यज्ञ शब्द, धार्मिक क्रियाकलाप का सूचक है। दूसरे यह शब्द अपने धात्वर्थ के बल से जितने भी देवपूजा, संगतिकरण और दान के कार्य हैं, उन सबका बोधक है। देवपूजा से परमात्मा की आराधना और उपासना, तथा अग्नि, जल, विद्युत् आदि देवों के गुणों का परिज्ञान और उससे समुचित उपयोग लेना अभिप्रेत होता है। ज्ञानी विद्वान्-पुरुषों की सेवा में उपस्थित होकर उनका मान-सत्कार करना तथा उनसे विविध विद्या-विज्ञानों को सीखना भी देवपूजा से अभिप्रेत होता है। संगतिकरण से विद्युत्, जल आदि पदार्थों के मेल से तरह-तरह के पदार्थों का निर्माण करने के लिये शिल्पकलाएं स्थापित करना, राष्ट्र के लाभ के लिये मिलकर चलाये जाने वाले भांति-भांति के विद्यालय और दूसरे संगठनों की स्थापना करना, विविध बातों के विचार और प्रचार के लिये भांति-भांति की सभा-समितियों की रचना करना आदि लोकोपकारी कामों का ग्रहण होता है। दान से अपनी विद्या आदि शक्तियों को कल्याण की भावना से अन्यों को अर्पण करना अभिप्रेत होता है। मन्त्र का इष्टि शब्द इन सब भावों का द्योतक है। कुछ लोगों की प्रवृत्ति स्वभाव से इष्टिमय, यज्ञमय होती है। उनकी प्रवृत्ति स्वभाव से धर्मप्रवण होती है। उनका चित्त अग्निहोत्रादि यज्ञ-कर्मों में लगता है। परमात्मा की आराधना और उपासना में उनकी अभिरुचि होती है। वे विद्वानों की संगति में जाकर भांति-भांति के विद्या-विज्ञानों को सीखते हैं। अग्नि, वायु, जल, विद्युत् आदि जड़-देवों के गुणों का परिज्ञान करके उनसे अनेक प्रकार के उपयोग लेने के उपाय सोचने में उनका चित्त लगता है। लोगों के भले के लिये वे विविध विद्याओं और विचारों का प्रचार करने के लिये गुरुकुलों और दूसरी संस्थाओं का निर्माण करते हैं। जो कुछ भी धर्मभावना और विद्या आदि शक्तियाँ उनके पास होती हैं उनका वे दूसरों को दान करने के लिये सदा तत्पर रहते हैं।

वैश्यवृत्ति के लोग—

कुछ लोग इनसे भिन्न एक तीसरी प्रवृत्ति के होते हैं। उनका चित्त अर्थ की ओर जाता है। वे भांति-भांति की धन-सम्पत्ति कमाना चाहते हैं। इसके लिए वे तरह-तरह के व्यापार-व्यवसायों का अवलम्वन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवावृत्ति के लोग—

एक चौथे प्रकार के लोग होते हैं। उनमें ऊपर कही गई तीनों प्रवृत्तियों में से कोई भी नहीं होती। वे विशेष योग्यता से सम्बन्ध रखने वाला कोई भी कार्य नहीं कर सकते। उनके जीवन में साधारण 'इति' (चलना फिरना) होती है। विशेष कौशल उनमें किसी काम के लिये नहीं होता। सेवा आदि के साधारण काम ही जिनमें सामान्य चलना फिरना ही (शरीर और मन की सामान्य गति ही) अपेक्षित होते हैं...वे लोग कर सकते हैं। जिन कामों में शरीर और मन की विशेष कौशलयुक्त गति की आवश्यकता होती है, उन कामों को वे नहीं कर सकते।

मनुष्यों की प्रवृत्तियों का सामान्य वर्गीकरण इन चार विभागों में ही हो जाता है। जो पहली प्रवृत्ति के लोग हैं उन्हें क्षत्रिय कहा जाता है, जो दूसरी प्रवृत्ति के लोग हैं, उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है, जो तीसरी प्रवृत्ति के लोग हैं, उन्हें वैश्य कहा जाता है; और जो चौथी प्रवृत्ति के लोग हैं, उन्हें शूद्र कहा जाता है। पुरुष-सूक्त के ऊपर उद्धृत मन्त्र में ब्राह्मणादि नामों और उनके मुखादि के साथ रूपक से पुरुष-समाज के जिस विभाग की ओर निर्देश किया गया था, उसी को मनुष्यों की स्वाभाविक चार प्रवृत्तियों के वर्णन द्वारा प्रस्तुत मन्त्र में प्रकारान्तर से बताया गया है। इन दोनों मन्त्रों के समन्वयात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेद में समाज के जिस ब्राह्मणादि विभाग की कल्पना की गई है वह मनुष्यों की प्रवृत्तियों के स्वाभाविक भेद पर आश्रित है; और इसी लिये वह पूर्ण वैज्ञानिक है। यदि मनुष्यों को उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जायेगी, और उन्हें राष्ट्र की सेवा के लिये तैयार किया जायेगा तो राष्ट्र और व्यक्ति दोनों का ही बहुत अधिक कल्याण होगा।

अपने वर्ण का चुनाव व्यक्ति स्वयं करता है

वर्ण वरण पर आधृत, जन्म पर नहीं—

वैदिकधर्म में, समाज की इस ब्राह्मणादि विभाग में की जाने वाली व्यवस्था को वर्णव्यवस्था कहते हैं। वर्ण[२] का अर्थ होता है जो चुने अथवा चुना जाये। ब्राह्मण ज्ञानार्जन और ज्ञान-प्रचार को अपने जीवन के लक्ष्य के रूप में चुन लेता है, इसलिये वह ब्राह्मण वर्ण कहलाता है। अथवा ब्राह्मण के ज्ञानार्जन और ज्ञान-प्रचार रूप ब्राह्मणत्व धर्म ब्राह्मण द्वारा अपने जीवन के लक्ष्य के रूप में चुने जाते हैं इसलिये ब्राह्मण के धर्मों को वर्ण कहा जाता है, और इन चुने हुए धर्मों=वर्णवाला होने

१. क्षत्रे राष्ट्रे साधुः, तस्यापत्यं जातौ वा घः। वाचस्पत्यम् ॥
२. वर्णो वृणोतेः। निरु० २-१-३॥ उणादि० ३-१०।

वृञ्- वरणे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उस को ब्राह्मण कहा जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी वर्ण कहे जाते हैं। ब्राह्मणादि के साथ 'वर्ण' शब्द के प्रयोग का यह भाव होता है कि उन्हें सदा स्मरण रहे कि उन्होंने अपने जीवन का एक विशेष लक्ष्य चुना है और इसलिये सदा उन्हें उस लक्ष्य की पूर्ति में यत्नशील रहना चाहिये। इस शब्द के प्रयोग से यह भी स्पष्ट ध्वनित होता है कि वर्ण-व्यवस्था जन्म पर नहीं प्रत्युत गुण-कर्म पर आश्रित है। जो व्यक्ति जिस वर्ण के गुण-कर्मों का चुनाव अपने जीवन के लक्ष्य के रूप में कर लेगा, उसका वही वर्ण हो जायेगा। इस प्रकार वर्णव्यवस्था का आधार समाज की सेवा की योग्यता है, किसी विशेष वंश में उत्पन्न होना नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२] क्या वेद में वर्णव्यवस्था नहीं है ?

कई लोग वर्णव्यवस्था पर यह आक्षेप करते हैं कि यह मनु आदि लोगों की अपनी कल्पित वस्तु है—इसका वेद में विधान नहीं है। वेद में ब्राह्मणादि के साथ कहीं भी 'वर्ण' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। इनके अनुसार वेद में दो ही वर्ण हैं। एक आर्य और दूसरा दस्यु। क्योंकि वेद में 'वर्ण' शब्द का प्रयोग आर्य और दस्यु के साथ ही हुआ है। जितने अच्छे लोग हैं वे आर्यवर्ण हैं; और जितने दुष्ट, अत्याचारी लोग हैं वे दस्यु-वर्ण हैं। मनुष्य-समाज के बस यही दो विभाग होने चाहियें; इससे अधिक विभागों में मनुष्य-समाज को बांटना उसका अहित करना है, ऐसा इन लोगों का कहना है।

यह ठीक है कि वेद में कहीं भी ब्राह्मणादि के साथ 'वर्ण' शब्द का सीधा प्रयोग नहीं हुआ है। परन्तु, इतने से वेद में वर्णव्यवस्था का विधान नहीं है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्रकारान्तर से वेद में ब्राह्मणादि के साथ वर्ण शब्द के प्रयोग की सिद्धि हो जाती है।

मनुष्य-समाज के दो विभाग—

वेद का निम्न मन्त्र—

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥ ऋग् १-५१-८॥

में मनुष्य-समाज के दो विभाग किये गये हैं—'आर्य' और 'दस्यु'। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

"हे इन्द्र! [सम्राट् और परमात्मन्] आप आर्यों को और जो दस्यु हैं उनको जानें। नियमों का भंग करने वाले [अव्रतान्] दस्युओं का, उन पर शासन करते हुए आप राष्ट्रयज्ञ में लगे हुए [बर्हिष्मते] हम प्रजाजनों के लिए, नाश कर दो। और इस प्रकार हे शक्तिशाली [शाकी] इन्द्र, आप राष्ट्रयज्ञ में लगे हुए [यजमानस्य] हम प्रजाजन को उत्तम कर्मों में प्रेरणा करने वाले हो। आपके समग्र रक्षा-कर्मों को हे इन्द्र हम मिलकर आनन्द देने वाले अपने व्यवहार यज्ञों में [सधमादेषु] प्राप्त करना चाहते हैं [चाकन]।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र में प्रजाजन स्पष्टरूप से इन्द्र से कह रहे हैं—कि हे महाराज ! प्रजा में दो प्रकार के लोग हैं—एक आर्य और एक दस्यु। जो दस्यु हैं उन्हें आप दण्डित कीजिये, और हमारी रक्षा कीजिये। हम आर्य हैं इसलिये हमारी रक्षा कीजिये। दस्यु किस प्रकार के लोगों को कहते हैं यह भी मन्त्र में, उन्हें 'अव्रत' कहकर, स्पष्ट कर दिया गया है। जो समाज के व्रतों का, नियमों और कर्मों का, विघात करते हैं-वे दस्यु हैं। इसके विपरीत—जो लोग राष्ट्र के व्रतों का पालन करते हैं वे आर्य हैं। अतः इस मन्त्र से मनुष्य-समाज के दो भेद—एक 'आर्य'=अच्छे लोग और दूसरे 'दस्यु'=बुरे लोग स्पष्ट सिद्ध हो गये।

आर्य के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग—

अब इस प्रसंग में वेद का निम्न मन्त्र देखिये—

हत्वी दस्यून् आर्यं वर्णमावत्। ऋग् ३-३४-९, अथर्व० २०-११-९॥

अर्थात्—"इन्द्र (सम्राट्, परमात्मा) दस्युओं को मारकर आर्य वर्ण की रक्षा करता है।"

इस मन्त्र में भी दस्यु लोगों को दण्ड के योग्य बताया गया है, और आर्य-लोगों को रक्षा के योग्य कहा गया है। साथ ही इस मन्त्र में आर्य के साथ 'वर्ण' शब्द का प्रयोग किया गया है। समग्र वेद में यहीं आर्य के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है।

इस मन्त्र को ध्यान में रखकर पुरुष-सूक्त के ऊपर वर्णित 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्' मन्त्र पर एक दृष्टि फिर डालिये। पाठक देख चुके हैं कि पुरुष-सूक्त में पुरुष अर्थात् प्रभु द्वारा समग्र सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। उसी प्रसंग में मनुष्य-समाज की उत्पत्ति का भी वर्णन हुआ है। और इस **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्'** मन्त्र द्वारा वहाँ पर मनुष्यसमाज के [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र] ये चार विभाग किये गये हैं। इससे स्पष्ट है कि वेद को मनुष्य-समाज के ये चार विभाग अभीष्ट हैं। इधर ऊपर के दोनों मन्त्रों में, हमने अभी देखा कि वेद की सम्मति में, मनुष्यों में दस्यु लोग मारे जाने योग्य हैं और आर्यलोग रक्षा किये जाने योग्य हैं। पुरुष-सूक्त में कहा गया ब्राह्मणादि का विभाग वेद का अपना बताया हुआ विभाग है। इसलिये स्पष्ट है कि ब्राह्मणादि लोग दस्यु से भिन्न हैं—क्योंकि दस्यु दण्डनीय हैं, और ब्राह्मणादि रक्षणीय हैं। इसलिये रक्षणीय होने से आर्यलोग तथा ब्राह्मणादि लोग एक ही हो जाते हैं। अर्थात् ब्राह्मणादि लोग आर्य लोग हैं। परिणामतः ब्राह्मणादि की वर्ण-संज्ञा स्वतः सिद्ध है।

दस्यु कोई वर्ण नहीं—

यह तो हुआ आर्यवर्ण के सम्बन्ध में। अब लीजिये दस्युवर्ण को। जो लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहते हैं कि वेद में आर्य वर्ण के विपरीत दस्यु वर्ण का विधान भी है, वे सर्वथा भ्रान्त हैं। वेद में कहीं भी दस्यु शब्द के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग नहीं हुआ।

वेद के निम्न मन्त्र **'यो दासं वर्णमधरं गुहाऽकः।'** ऋग् २।१२।४, अथर्व २०।३४।४ में दास के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है। ये लोग दास और दस्यु को पर्यायवाची समझकर कह देते हैं कि वेद में दस्यु के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है, और कि आर्यवर्ण के मुकाबले में दस्यु वर्ण की सत्ता वेद में मानी गई है। दस्यु और दास को पर्यायवाची समझना भारी भूल है। इस भूल का आधार सायणाचार्य का भाष्य है। सायणाचार्य ने दो-एक स्थलों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र दास का अर्थ दस्यु किया है, परन्तु वेद में दास का अर्थ सर्वत्र दस्यु नहीं होता। वेद में कितने ही स्थलों पर दास का अर्थ सेवक या शूद्र होता है। वेद में दास शब्द के सेवक अथवा शूद्र अर्थ को देखकर ही मनु आदि ने शूद्रों को अपने नाम के साथ दास शब्द जोड़ने का विधान किया प्रतीत होता है। ऋषि दयानन्द ने भी अपने वेदभाष्य में अनेक स्थानों पर दास का अर्थ 'सेवक' 'शूद्र' किया है। स्वयं वेद में ही कई स्थल ऐसे हैं जहाँ दास का अर्थ सेवक ही करना पड़ेगा, वहां दस्यु अर्थ नहीं किया जा सकता तद्यथा— **अरं न दासो मीढुषे कराणि।** ऋग्० ७-८६-७ अर्थात्—'हे वरणीय भगवन्! जैसे दास स्वामी की भक्ति करता है, वैसे ही-मैं भी आपकी खूब भक्ति करूं। इस मन्त्र में स्पष्ट ही दास का अर्थ सेवक है। दस्यु अर्थ यहाँ संगत नहीं हो सकता। सायण को भी यहाँ दास का अर्थ भृत्य अर्थात् सेवक करना पड़ा है। इसी प्रकार ऋग्वेद के चतुर्थमण्डल के १६वें सूक्त से लेकर २४वें सूक्त तक के अन्तिम मन्त्र के अन्तिम चरण में **"स्याम रथ्यः सदासनः"** शब्द आते हैं। इससे पूर्व कहा गया है कि हे प्रभो! हमने आपकी वेदोक्त स्तुति कर ली है। हे भगवन्! आपकी स्तुति के कारण हम रथों वाले और [सदासाः] अर्थात् दासों से युक्त हो जायें। यहां दास का अर्थ, दस्यु नहीं, सेवक ही करना होगा। कोई भी भगवान् से अपने घर में दस्यु भेजने की प्रार्थना नहीं कर सकता। इसी भांति ऋग् ८।५१।६ में ये शब्द आते हैं —

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपाः। यह वाक्य इन्द्र का विशेषण है। इसका अर्थ है – "जिस इन्द्र के आर्य और दास (सब जन-समुदाय) शेवधिपा हैं खजाने की रक्षा करने वाले हैं।" आर्य और दास दोनों मिलकर इन्द्र के···परमेश्वर के··· शेवधि की, खजाने की रक्षा करते हैं। यहां भी दास का अर्थ दस्यु नहीं हो सकता। दस्यु रक्षा नहीं करता, विनाश करता है। दास का अर्थ यहाँ सेवक, शूद्र ही करना होगा। आर्य का अर्थ यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के लोग करना होगा। यों आर्य में ऊपर प्रदर्शित रीति से चारों वर्ण आ जाते हैं। परन्तु यहां शूद्र का वाचक दास शब्द अलग आ जाने से, आर्य का अर्थ शेष तीन वर्णों के लोग ही करना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास शब्द के दो अर्थ—

इन और इन जसे कितने ही अन्य स्थलों में 'दास' का अर्थ 'दस्यु' किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। इन स्थलों में यह शब्द सेवक का, शूद्र का ही वाचक है। वस्तुतः वेद में दास शब्द का दो प्रकार का प्रवोध है। एक दास शब्द में कर्तरि प्रत्यय है। 'यः दस्यति स दासः'—जो दूसरों का क्षय करता है वह दास है। इस अर्थ में यह शब्द द्रस्यु का वाचक होता है। और दूसरे दास शब्द में कर्मणि प्रत्यय है। 'यः दस्यते स दासः'—जो क्षीण होता है वह दास है। इस अर्थ में यह शब्द सेवका का, शूद्र का वाचक होता है। वास्तव में 'दस्यु' और 'शूद्र' के वाचक दास शब्द दो सर्वथा-भिन्न शब्द हैं। लिखने में इनकी आकृति, और सुनने में इनकी ध्वनि, एक-जैसी है; परन्तु प्रत्यय-भेद के कारण ये सर्वथा-भिन्न दो शब्द हैं। कहां दास का अर्थ दस्यु करना, और कहां सेवक करना—इसका निर्णय प्रकरण को देखकर होगा। इस मर्म को न समझने के कारण कुछ लोग वेद के 'दास' और 'दस्यु' को एक ही समझने की भूल कर बैठे हैं।

दास-वर्ण का अर्थ शूद्र-वर्ण—

वेद के **"यो दासं वर्णमधरं गुहाऽकः"** (इस मंत्र-खण्ड) में दस्यु वर्ण की सिद्धि नहीं हो सकती। इस मंत्र-खण्ड का शब्दार्थ इस प्रकार है—

"[यः] जो इन्द्र [सम्राट्, परमेश्वर] [गुहा[१]] बुद्धि के कारण [अधर] नीचे पुरुष को (दासं वर्णं) दास वर्ण (कः) कर देता है।" इस प्रकार इस मंत्र में यह बताया गया है कि शूद्र किस प्रकार के व्यक्ति को कहते हैं। जो बुदि में नीचा है, जिसमें ज्ञान-शक्ति कम है—ऐसे पुरुष को दास या शूद्र वर्ण का व्यक्ति कहा जाता है। किसी विशेष वंश में उत्पन्न होने से कोई व्यक्ति शूद्र वर्ण का नहीं होता। शूद्रत्व की निश्चायक ज्ञानशक्ति की हीनता है, अतः किसी भी वंश का व्यक्ति ज्ञान-हीनता की अवस्था में शूद्र कहलायेगा।

इस मंत्र में दास का अर्थ दस्यु भी नहीं हो सकता क्यों कि यहां इसके साथ वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है। वर्ण शब्द में चुनने का भाव है–यह हम अभी ऊपर देख चुके हैं। कोई समाज अपने में से किसी व्यक्ति को दस्युत्व के चुनाव की स्वीकृति नहीं दे सकता; और न दस्युत्व कोई चुनाव करने योग्य वस्तु ही है। इसलिये जीवन के

---

१. गुहा त्रीणि निहिता नङ्गयन्ति (ऋग् १-१६४-४५)। त्रीणि पदानि निहिता गुहाऽस्य (यजुः ३२-६)। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् [महा०]। एवंविधेषु स्थलेषु सर्वत्र गुहाशब्दो बुद्धेर्वाचको भवति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजोपयोगी लक्ष्य के चुनाव का बोधक कार्य लोगों के साथ प्रयुक्त होनेवाला वर्ण-शब्द वेद में दस्यु के लिये नहीं प्रयुक्त हो सकता था। इस प्रकार दास के साथ वर्ण शब्द के प्रयोग की ध्वनि भी यही है कि यहाँ दास शब्द, दस्यु के लिये नहीं, प्रत्युत शूद्र के लिये [जो कि आर्य लोगों का ही एक अंग है] आया है।

इस भांति वेद का गम्भीर अध्ययन करने पर यह स्पष्ट परिणाम निकलता है कि, वेद के अनुसार, मनुष्य-जाति के दो भेद हैं—'आर्य' और 'दस्यु'। आर्यों के चार भेद हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आर्य लोग वर्ण के लोग हैं। ये लोग, स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार समाज की यथोचित सेवा करने की दृष्टि से, ब्राह्मण आदि की वृत्ति का वरण (चुनाव) करके वर्णव्यवस्था की रीति से चार विभागों में बंटकर रहते हैं। फिर इन आर्यों में दो भेद हो जाते हैं—आर्यवर्ण और दास या शूद्रवर्ण। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन को आर्यवर्ण कहते हैं और शूद्र को दास या शूद्र-वर्ण कहते हैं।

ब्राह्मणादि अतिविशिष्ट आर्य—

शूद्र की तुलना में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को आर्य क्यों कहते हैं, इसका समाधान वेद के निम्न मंत्र में दिया गया है—**तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः।** ऋग्० ७-३३-७ अर्थात् 'तीन प्रकार की प्रजाएं आर्य कहलाती हैं, क्योंकि वे ज्योति में अर्थात् ज्ञान के प्रकाश में अग्रगामी होती हैं।'

पुरुषसूक्त में, जैसा कि हम ऊपर देख आये हैं, अच्छे लोगों के ब्राह्मण आदि चार भेद किये गये हैं। उनमें से पहले तीन ज्ञान में अधिक होने के कारण आर्य कहलाते हैं, और शूद्र के सम्बन्ध में, अभी ऊपर हम देख ही आये हैं, "**यो दासं वर्णमधरं गुहा कः**" [ऋग् २-१२-४]—जो बुद्धि में, ज्ञानशक्ति में, हीन है उसका दास या शूद्र वर्ण है।

दयानन्द और आर्य, दस्यु शब्द—

वेद के इसी आशय को ध्यान में रखकर ऋषि दयानन्द ने अपने महान् ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि—

"**श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान्, देव और दुष्टों का दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य और दस्यु दो नाम हुए।...आर्यों में (पूर्वोक्त प्रकार से) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। [द्विज] विद्वानों का नाम आर्य, और [अ-ज] मूर्खों का नाम 'शूद्र' और 'अनार्य' अर्थात् 'अनाड़ी' नाम हुआ।**" एक दूसरे स्थान पर उसी ग्रन्थ में लिखा है—"**आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्तपुरुषों**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का और इनसे विपरीत जनों का नाम 'दस्यु' अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य [द्विजों] का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है।" (स० प्र० अष्टम समुल्लास)

शूद्र करुणा का पात्र है, घृणा का नहीं—

वेद में जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, किसी घृणित वंशविशेष में उत्पन्न होने के कारण किसी व्यक्ति को शूद्र नहीं कहा जाता। जिसमें ज्ञानशक्ति की कमी है वह शूद्र है, भले ही वह किसी उच्च वंश में क्यों न उत्पन्न हुआ हो। शूद्र किसी प्रकार की घृणा का पात्र नहीं, प्रत्युत वह तो अनुकम्पा, दया और प्रेम का पात्र है। दास और शूद्र नामों से यही बात प्रकट होती है। दास का शब्दार्थ हम अभी देख ही चुके। जो क्षीण है, ज्ञानादि गुणों से हीन है वह दास है। दास होने के कारण, क्षीण होने के कारण ही वह 'शूद्र' है। शूद्र का शब्दार्थ है—"शुचं द्रावयति" जिसे देखकर दूसरों के मन में दया उत्पन्न हो कि, देखो बेचारा कुछ भी ज्ञान की, योग्यता की बात नहीं सीख सका। अतः करुणा का पात्र है, घृणा का नहीं। इसी लिये वेद में अन्यत्र कहा गया है—

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।। यजुर् १८-४८

"हे परमात्मन्! आप ब्राह्मणों में हमारा प्रेम कीजिये; क्षत्रियों में हमारा प्रेम कीजिये; वैश्यों में हमारा प्रेम कीजिये और शूद्रों में हमारा प्रेम कीजिये; आप प्रेम से मेरे अन्दर प्रेम उत्पन्न कीजिये।"

वर्तमान काल में जन्म पर आश्रित जो वर्णव्यवस्था भारतीय हिन्दुसमाज में प्रचलित हो गई है, और उसमें भी शूद्रों के साथ जो घृणा के भाव पाये जाते हैं, वह सब वेद के रहस्य को न समझने के कारण है।

इस प्रकरण को समाप्त करते हुए हम वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में एक बात और कह देना आवश्यक समझते हैं। यदि थोड़ी देर के लिये यह मान भी लिया जाय कि वेद से ब्राह्मण आदि के साथ वर्णशब्द के प्रयोग की सिद्धि नहीं होती तो तब भी, इससे यह तो नहीं सिद्ध होता कि वेद में ब्राह्मणादि वर्गों में समाज को विभक्त करने का विधान नहीं है। पुरुषसूक्त में, और अन्यत्र ब्राह्मण आदि वर्गों में, समाज को विभक्त करने का वेद में स्पष्ट उल्लेख है। ब्राह्मण आदि वर्णों में समाज को विभक्त करके, व्यक्ति और राष्ट्र की उन्नति की दृष्टि से, समाज की व्यवस्था करना ही 'वर्णव्यवस्था का वास्तविक उद्देश्य' है, इस तत्वज्ञान का वेद में स्पष्ट उल्लेख किया गया है। दुर्जनतोष न्याय से यदि यह मान भी लिया जाये कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वेद में न तो ब्राह्मणादि के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग ही उपलब्ध है और न ही ब्राह्मण, क्षत्रियादि विभाजन विद्यमान है। ब्राह्मणादि के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग पीछे से ऋषियों ने जोड़कर समाज की इस ब्राह्मणादि की व्यवस्था को वर्ण-व्यवस्था का नाम दे दिया" तो भी वर्णव्यवस्था के तत्त्वज्ञान की कोई हानि नहीं होती। वर्ण एक सुन्दर भाव का द्योतक शब्द है। यदि वर्ण शब्द का प्रयोग पीछे से ऋषियों और आचार्यों ने प्रचलित किया हो तो भी हमें उसको ग्रहण कर लेना चाहिये, और ब्राह्मणादि की वेद-विहित व्यवस्था को वर्णव्यवस्था के नाम से स्वीकार कर लेना चाहिये। क्योंकि वर्णव्यवस्था का सिद्धांत तो वेद में विद्यमान है ही। वैसे हम ऊपर ब्राह्मणादि के साथ वर्णशब्द के प्रयोग की सिद्धि वेद के प्रमाणों द्वारा कर आये हैं अतः वेद के आधार पर ही इस व्यवस्था को वर्णव्यवस्था कहा जाना उपयुक्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३] ब्राह्मण

वेदों की अन्तःसाक्षी—

पुरुष-सूक्त के 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्' मन्त्र में ब्राह्मणादि वर्णों को जो पुरुष-समाज का मुखादि कहा गया है, उससे इन वर्णों के गुणों और कर्तव्यों पर जो प्रकाश पड़ता है, उसे हम ऊपर प्रथमखण्ड में देख चुके हैं। उस मन्त्र के रूपक से ब्राह्मणादि चारों वर्णों के गुणों और कर्तव्यों का एक अति संक्षिप्त और सामान्य बोध होता है। वहां जो संक्षिप्त और सामान्य गुण और कर्तव्य निर्दिष्ट हुए हैं, उनका वेद में और दूसरे आर्ष साहित्य में वहुत विस्तृत और विशद रूप से वर्णन किया गया है। वेदेतर साहित्य में जो वर्णन हुआ है, उसे यहाँ दिखाने का प्रसंग नहीं है। वह पाठकों को उन-उन ग्रन्थों में स्वयं देखना चाहिये। उसमें पाठकों को वेद के भावों की बड़ी विस्तृत और सुन्दर व्याख्या मिलेगी। यहां हम स्वयं वेद में इन वर्णों के गुणों और कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर जो कुछ कहा गया है उसे ही अति संक्षेप में देखेंगे। सबसे पहले ब्राह्मण वर्ण को लीजिये। ब्राह्मण के सम्बन्ध में हमें वेद में जगह-जगह पर वहुत कुछ कहा हुआ मिलता है। उसके गुणों और कर्त्तव्यों को बताने वाले इन मन्त्रों, मन्त्रखण्डों पर विचार कीजिये।

ब्राह्मणों को वेदज्ञ होना चाहिये—

अनेक स्थलों पर वेद में ऐसे निर्देश मिलते हैं, जिन से यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों को 'वेदज्ञ' होना चाहिये। इस सम्बन्ध में निम्न कुछ मन्त्र देखिये—

१—ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्। ऋग् ७-१०३-८

२—हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः।
अत्राह त्वं वि जहुर् वेद्याभिरोह ब्रह्माणो विचरन्त्यु त्वे। ऋग् १०-७१-८

३—आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्॥ यजुर् २२-२२

४—ब्रह्मणे ब्राह्मणम्॥ यजुर् ३०-५

५—ये वृहत्सामानमांगिसरमार्पयन्ब्राह्मणं जनाः॥ अथर्व ५-१९-२

६—ब्रह्मणस्पते...त्वं यदीशानो ब्रह्मणा। ऋग् २-२४-१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४.४
वि ५३स

७—बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ अथर्व २०-८८-४

८—अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ऋग् ६-७३-३
अथर्व २०-९०-३

84273

९—करद्ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ऋग् ७-९७-८

१०—बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ॥ ऋग् १०-३६-५

११—इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ॥ अथर्व २०-९१-१
ऋग् १०-६७-१

१२—शचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत ॥ ऋग् ३-६२-५

१३—प्रसप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिम् । ऋग् १०-४७-६

१४—बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् ॥ अथर्व ५-२६-१२

पुस्तकालय

इन मन्त्रों का शब्दार्थ क्रम से इस प्रकार है—

१—"ब्राह्मण लोग वर्ष भर वेद का अध्ययन करते हैं।"

मन्त्र में वेद के लिए 'ब्रह्म' शब्द प्रयुक्त हुआ है। सारे वैदिक साहित्य में ब्रह्म शब्द का एक अति प्रसिद्ध अर्थ वेद होता है, यह उस साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी भली भांति जानता है। मन्त्र में ब्रह्म का विशेषण 'परिवत्सरीणम्'[1] दिया गया है। परिवत्सरीण का अर्थ होता है—जो साल भर का समय लगने से तैयार हो, अर्थात् जिसके सिद्ध होने में सारा साल लगता हो। अध्ययन करने के लिये मन्त्र में 'कृ' धातु का प्रयोग हुआ है। 'कृ' धातु का अर्थ वास्तव में 'करना' है।' यह एक क्रिया-सामान्य को बताने वाली धातु है। वेद की उत्पत्ति परमात्मा से हुई है यह वेद के पुरुष-सूक्त और दूसरे स्थलों में स्पष्ट कह दिया गया है। इसलिये यहाँ ब्राह्मणों द्वारा वेद के करने का अर्थ उनके द्वारा वेद की रचना नहीं हो सकता; इसका अर्थ ब्राह्मणों द्वारा वेद का अध्ययन ही हो सकता है। ब्राह्मण ऐसे वेद का अध्ययन करते हैं जो परिवत्सरीण है, जो साल भर [अर्थात् सदा] वेद का अध्ययन करते हैं।

२—[सखायः] समान ज्ञान वाले [ब्राह्मणाः] ब्राह्मण लोग [हृदा] हृदय अर्थात् बुद्धि द्वारा [तष्टेषु[2]] निश्चय किये हुए [मनसा] मन के [जवेषु[3]] वेद के विषयभूत ज्ञान का वेदार्थों के निरूपण के लिये [यद्] जब [संयजन्ते[4]] एकत्र होते हैं,

---

१. संपरिपूर्वात् ख च[अष्टा०५।१।९२] इति खः परिवत्सरेण निर्वृत्तं परिवत्सरीणम्।

२. निश्चितेषु इति सायणः।

३. गन्तव्येषु वेदार्थेषु गुणदोषनिरूपणायेति सायणः।

४. संगच्छन्ते यजिरत्र संगतिकरणवाचीति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब [अत्र] इस ब्राह्मण-संघ में [त्वं] किसी को [वेद्याभि:] विद्याओं के कारण [अह] निश्चय ही [विजुहः] पीछे छोड़ देते हैं, [उ] और [त्वे] कोई-कोई [ओह ब्राह्मणः[१]] 'की है ब्रह्म अर्थात् वेद की ऊहापोह जिन्होंने ऐसे' विद्यावान् ब्राह्मण [विचरन्ति] वेद-ज्ञान में विचरण करते हैं।

जिस सूक्त का यह मन्त्र है उसमें बृहस्पति परमात्मा की प्रेरणा से ऋषियों के अन्तःकरण में वेद के प्रकाशित होने का वर्णन है और साथ ही यह भी वर्णन है कि जो बुद्धिमान् और परिश्रमी लोग होते हैं वे इस वेदज्ञान में पारंगत हो जाते हैं, और जो ऐसे नहीं होते वे वेद को पढ़-सुनकर भी उसे वस्तुतः नहीं जानते। उसी प्रसंग में प्रस्तुत मन्त्र आया है। ज्ञानी ब्राह्मण-लोग वेद के विषयों का विचार करने के लिये सभाओं में एकत्र होते हैं। जो अधिक विद्यावान् और वेद में ऊहापोह करने वाले विद्वान् होते हैं वे विचार के प्रत्येक क्षेत्र में यथेष्ट विचरण करते हैं। जो ऐसे नहीं होते, वे पिछड़ जाते हैं।

३—"हे परमात्मन् हमारे राष्ट्र में ऐसे ब्राह्मण हों जिनमें ब्रह्मवर्चस् हो"

ब्रह्मवर्चस् का अर्थ होता है ब्रह्म अर्थात् वेद-विद्या के अध्ययन से प्राप्त होने वाला ज्ञानरूप तेज। यह तेज जिसमें होगा उसे ब्रह्मवर्चसी कहा जायेगा। मन्त्र में ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण [अर्थात् वेद का अध्ययन करने वाले ब्राह्मण] उत्पन्न करने की प्रार्थना भगवान् से की गई है।

४—"सब के उत्पादक सविता परमात्मा ने ब्राह्मण को ब्रह्म के लिये अर्थात् वेदाध्ययन और अध्यापन के लिये बनाया।" जिस अध्याय का यह मन्त्र है वहां इस मन्त्र से ऊपर के चारों मन्त्रों में सविता का वर्णन चल रहा है। ऊपर के मन्त्र से ही इस मन्त्र में भी सविता पद की अनुवृत्ति आती है।

५—"जो लोग सामवेद का ख़ूब अध्ययन करने वाले [बृहत्सामानं] और अथर्ववेद का अध्ययन करने वाले [आंगिरसं] ब्राह्मण को पीड़ा देते हैं।"

जिस प्रकरण का यह मन्त्र है वहां ब्राह्मण की गौ अर्थात् वाणी पर प्रतिबन्ध लगाने वाले राजा को क्या कष्ट सहने पड़ते हैं, इसका वर्णन है। मन्त्र में प्रयुक्त हुए साम और अथर्व को शेष वेदों का भी उपलक्षण समझना चाहिये। यहां ऋग्वेद आदि का नाम न लेकर सामवेद और अथर्ववेद का नाम लेना और अथर्व का भी आंगिरस नाम से ग्रहण करना, इस प्रकरण के लिये जहां उपयुक्त ठहरता है, वहां एक अन्य अभिप्राय को भी प्रकट करता है। साम का अर्थ शान्ति भी होता है। जो

१. ऊस्यमानं ब्रह्म येषां ते इति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिशय शान्ति के जीवन में लगा हुआ है, उसे बृहत्सामा कहेंगे। अंगिरा:[1] का अर्थ अंगारा भी होता है। जिसका जीवन ज्ञानाग्नि के अंगारों सा प्रदीप्त हो, जिसमें ज्ञानाग्नि धधकती हो, उसे आंगिरस कहेंगे। ब्राह्मण में शान्ति भी होती है और ज्ञान के, सत्य के, अंगारे भी उसमें धधकते हैं। शान्तिप्रिय और ज्ञानी ब्राह्मणों को जो राजा पीड़ा देता है, उसकी वाणी पर प्रतिबन्ध लगाता है, उस राजा का भारी अहित होता है। साम और आंगिरस शब्दों ने यह भी बता दिया कि ब्राह्मण को जीवन में शान्ति और सच्चा ज्ञान कहां से प्राप्त होता है।

६—"हे ब्राह्मण, [ब्रह्मणस्पते] तुम कि ब्रह्म अर्थात् वेद का अध्ययन करने के कारण सबके स्वामी [ईशानः] हो"।

७—"[बृहस्पतिः] ब्राह्मण [महः] महान् [ज्योतिषः] ज्योति के [परमे] सर्वोत्कृष्ट [व्योमन्] रचनात्मक स्थान में [प्रथम] सब वर्णों में प्रथम [जायमानः] उत्पन्न होने वाला है, वह [सप्तास्यः] वेद के सात छन्दोरूप मुख वाला है, [सप्त-रश्मिः] इन सात छन्दों के कारण ही सात किरणों वाला है [तुविजातः] ज्ञान के कारण बहुत प्रकार से प्रकट होने वाला वह [रवेण] अपने शब्द-घोष से [तमांसि] अन्धकारों को [वि-अधमत्] नष्ट कर देता है"।

ब्राह्मण इसलिये ब्राह्मण होता है कि वह रक्षा करने वाली ज्ञान की ज्योति में सबसे प्रथम होता है। सात छन्दों में बना हुआ वेद पढ़ने के कारण वह सप्तास्य या सात मुखों वाला होता है, और इन्हीं सात छन्दों में बने ज्ञान के सूर्य वेद को पढ़ने के कारण वह सप्तरश्मि या सात किरणों वाला हो जाता है। इस प्रकार ज्ञानी होकर वह वेद-ज्ञान की किरणों से संसार के ज्ञानान्धकार को दूर करता फिरता है।

८—"[अपः] प्रजाओं को [स्वः] सुख [सिषासन्] बांटने की इच्छा वाला [अप्रतीतः] अप्रतिद्वन्द्वी [बृहस्पतिः] ब्राह्मण [अमित्रम्] अपने विरोधी शत्रु को [अर्कैः[2]] वेदमन्त्रों से [हन्ति] मारता है"।

ब्राह्मण किसी का विरोधी नहीं होता। वह किसी का शत्रु नहीं होता। वह सब प्रजाजनों को सुख देना चाहता है। ज्ञान में उसकी कोई तुलना नहीं कर सकता। अतः वह सबको सुख देना चाहता है। यदि उसका कोई शत्रु हो जाये, तो वह उसे वेद-मन्त्रों से मारता है, उसके पास जाकर प्रेम से उसे वेद का ज्ञान देकर उसके मन को शुद्ध कर देता है; और इस प्रकार उसके मन में से शत्रुता के भाव

---

१. ये अङ्गारा आसंस्तेऽ अङ्गिरसोऽभवन्। [ऐ० ३.३४]
अङ्गारेभ्योऽङ्गिरस. (समभवन्)। [श० ४.५.१.८]
अङ्गिरा उ ह्यग्निः। [श०१.४.१.२५]
२. अर्को मन्त्रो भवति यदेनेनार्चन्ति। [निरु० ५.४]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर करके, उसे शत्रुरूप में मार देता है। उसे अपना शत्रु नहीं रहने देता; उसे अपना मित्र बना लेता है।

६—"ब्राह्मण [बृहस्पतिः] वेद के लिये [ब्रह्मणे] बाधाओं को सुगमता से तैरने योग्य और कम गहरी बना देवे।"—वेद के प्रचार में जो विघ्न और बाधाएं आकर खड़ी हों, ब्राह्मण का कर्तव्य है कि, वह इस प्रकार के उपायों का अवलम्बन करे जिससे वे मार्ग में न रहें।

१०—"ऋग्वेद का ज्ञाता [ऋक्वः] ब्राह्मण [बृहस्पतिः] सामवेद से [सामभिः] अर्चना करे [अर्चतु]"।

११—"[नः] हमारे [पिता] पालन करने वाले पिता [बृहस्पतिः] ब्राह्मण ने [इमां] इस [ऋतप्रजाताम्] सत्य का प्रकाश करने वाली अथवा सत्यस्वरूप वेदवाणी से उत्पन्न होने वाली [सप्तशीर्ष्णी] गायत्री आदि सात छन्दरूप सिर वाली [बृहती] बड़ी भारी [धियं] बुद्धि अर्थात् ज्ञान को [अविन्दत्] प्राप्त किया है"।

१२—"जो वेद-मन्त्रों द्वारा [अकः] शुचि है ऐसे ब्राह्मण को [बृहस्पतिम्] नमस्कार करो।"

१३—"ब्राह्मण [बृहस्पतिम्] जो कि सात छन्दों वाले वेद को पढ़ने के कारण सप्तगु [अर्थात् सात वाणियों वाला] है।"

१४—"हे ब्राह्मण [बृहस्पते] वेद के साथ [ब्रह्मणा] हमारी ओर आओ।"

इन मन्त्रों और मन्त्र-खण्डों में पाठक स्पष्ट देखेंगे कि वेदाध्ययन से ब्राह्मण का गहरा सम्बन्ध है। वेद का स्वाध्याय करना, वेद का ज्ञाता होना—ब्राह्मण का एक विशेष कर्तव्य है।

बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति एक ही हैं—

इस प्रकरण में उद्धृत किये गये मन्त्रों में हमने बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति का अर्थ ब्राह्मण किया है। ब्रह्मणस्पति/बृहस्पति परक विस्तृत विचार हम आगे करेंगे। ब्रह्मणस्पति और बृहस्पति एक ही हैं—यह इन दोनों देवताओं के सूक्तों को पढ़ने से किसी भी पाठक को अनायास ही ज्ञात हो जाता है, और ये दोनों नाम ब्राह्मण के हैं यह भी इनके सूक्तों और मन्त्रों को ध्यान से पढ़ने से अनायास ही परिज्ञात हो जाता है। इस सम्बन्ध में संक्षेप से कुछ पंक्तियां यहाँ भी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में निम्न मन्त्र देखिये—

१—ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते। ऋग् २-२३-१

२—स सन्नयः स विनयः पुरोहितः। ऋग् २-२४-९

३—सभेयो विप्रो भरते मती धना। ऋग् २-२४-१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—ब्रह्म राजनि पूर्व एति । ऋग् ४-५०-८
५—यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा । ऋग् ४-५०-९
६—ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । यजुर् १८-७६/२१-१६
७—बृहस्पतिना ब्रह्मणा । यजुर् १०-३०
८—बृहस्पति-पुरोहिता देवाः । यजुर् २०-११

इन प्रमाणों में दूसरे और आठवें मंत्रों में ब्रह्मणस्पति और बृहस्पति को पुरोहित कहा गया है । संस्कृत-साहित्य में पुरोहित शब्द ब्राह्मण के लिये बहुत अधिक प्रयुक्त होता है । यद्यपि वेद में यह शब्द अपने यौगिक अर्थ में भी बहुत बार प्रयुक्त होता है और तब इसका अर्थ ब्राह्मण-परक होना आवश्यक नहीं होता । तीसरे मंत्र में ब्रह्मणस्पति को सभाओं में जाने योग्य विप्र कहा है । विप्र शब्द भी संस्कृत-साहित्य में अधिकांश में; ब्राह्मण के लिये ही प्रयुक्त होता है, यद्यपि वेद में यह शब्द सामान्यतः बुद्धिमान् अर्थ में भी बहुत बार प्रयुक्त होता है । प्रस्तुत मंत्र में विप्र का 'सभाओं में जाने योग्य' विशेषण—उसके बुद्धिमान् ब्राह्मण अर्थ लेने की ओर ही अधिक भार डालता है । चौथे, पांचवें, छठे, और सातवें मंत्र में बृहस्पति को ब्रह्मा और ब्रह्म कहा गया है । 'ब्रह्मन्' शब्द का पुल्लिग में प्रथमा विभक्ति का एकवचन 'ब्रह्मा' होता है, और इसी शब्द का नपुंसकलिंग में प्रथमा विभक्ति का एकवचन 'ब्रह्म' होता है । 'ब्रह्मन्' शब्द का सारे संस्कृत-साहित्य में एक अति प्रसिद्ध अर्थ ब्राह्मण होता है । पुल्लिग-प्रयोग में तो यह शब्द लौकिक संस्कृत साहित्य में भी ब्राह्मण के लिये प्रयुक्त होता है; वैदिक-साहित्य में यह शब्द नपुंसक प्रयोग में भी ब्राह्मण के लिये प्रयुक्त होता है । वैदिक-साहित्य का प्रत्येक अध्येता इस बात को भली भांति जानता है । इसीलिये वेद के 'ब्रह्मन्'[1] शब्द का अनेक स्थानों पर ब्राह्मण ग्रन्थों में स्पष्ट 'ब्राह्मण' अर्थ ही कर दिया गया है । वेद के 'यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च' (यजुर् ३२।१६) आदि स्थलों में 'ब्रह्मन्' शब्द का सभी भाष्यकार ब्राह्मण ही अर्थ करते हैं, और यही अर्थ इन स्थलों में संगत भी होता है । इस लिये उद्धृत मंत्रों में ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति को 'ब्रह्मा' या 'ब्रह्म' कहना स्पष्ट ही उसे ब्राह्मण सिद्ध करता है । प्रथम मंत्र में ब्रह्मणस्पति को 'ब्रह्मन्' लोगों का 'ज्येष्ठराज' कहा गया है । 'ब्रह्मन्' का अर्थ ब्राह्मण होता ही है । इसलिये ब्रह्मणस्पति ब्राह्मणों का ज्येष्ठ-राज—प्रधान, मुखिया—हुआ; और इसलिये वह ब्राह्मण भी हुआ । ब्रह्मणस्पति को ब्राह्मणों का ज्येष्ठराज कहने का क्या अभिप्राय है इस पर हम आगे विचार करेंगे वह ब्राह्मणों का ज्येष्ठराज भले ही हो, स्वयं भी ब्राह्मण तो है ही । हम उद्धृत विशेषणों से ब्राह्मणों के गुणों और कर्तव्यों का निर्णय तो कर ही सकते हैं ।

---

१. ब्रह्म वै ब्राह्मणः । तैत्तिरीय ३।९।१४।२, शतपथ १३।१।५।३, ब्रह्म हि ब्राह्मणः शतपथ ५।१।५।२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार इन मंत्रों में बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति को 'ब्रह्मन्' कहना स्पष्ट ही उसे ब्राह्मण सिद्ध करता है। 'ब्रह्मन्' शब्द के अर्थ वेद में—वेद, वेदमंत्र और परमात्मा भी होते हैं। परन्तु उद्धृत मन्त्रों में इन अर्थों की संगति नहीं हो सकती, यहाँ ब्रह्म का अर्थ ब्राह्मण ही करना होगा।

इसी प्रसंग में अथर्ववेद के निम्न मंत्र भी देखिये—

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥ अथर्व १५-१०-३
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रविशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥ अथर्व १५-१०-४
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥ अथर्व १५-१०-५

अर्थात्—इसलिये ब्राह्मण [ब्रह्म] और क्षत्रिय [क्षत्रं] उठे, वे बोले कि हम दोनों किस में प्रवेश करें। बृहस्पति में ब्राह्मण प्रवेश कर जाये और इन्द्र में क्षत्रिय प्रवेश कर जावे। इसलिये बृहस्पति में ब्राह्मण प्रविष्ट हो गया और इन्द्र में क्षत्रिय प्रविष्ट हो गया।

वेद के इस प्रसंग से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि बृहस्पति ब्राह्मण है, इन्द्र क्षत्रिय। यहां 'क्षत्र' के साथ आने के कारण 'ब्रह्म शब्द का अर्थ ब्राह्मण ही करना होगा। बृहस्पति में ब्राह्मण प्रविष्ट हुआ है और इन्द्र में क्षत्रिय प्रविष्ट हुआ, इस कथन का तात्पर्य यह है कि जो सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण है, उसे बृहस्पति कहा जावेगा। यहां ब्राह्मण और क्षत्रिय के प्रवेश से तात्पर्य ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व गुणों के प्रवेश से तात्पर्य है। बृहस्पति में पूर्ण ब्राह्मणत्व का प्रवेश है और इन्द्र में पूर्ण क्षत्रियत्व का प्रवेश है। पूर्ण ब्राह्मणत्व से आविष्ट बृहस्पति निश्चिय ही ब्राह्मण होगा।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी देखने योग्य है। हम अभी ऊपर इस खण्ड में यजुर्वेद का वाक्य पढ़कर आ रहे हैं कि—ब्रह्मणे ब्राह्मणम्। [यजु० ३०।५] अर्थात्—"सब के उत्पादक परमात्मा ने ब्राह्मण को ब्रह्म अर्थात् वेद का अध्ययन और अध्यापन करने के लिये बनाया है।" इसलिये ब्राह्मण वह है जो वेद का अध्ययन और अध्यापन करता हो। ब्राह्मण शब्द का अर्थ ही है—"ब्रह्म अधीते वेद वा[1]"—जो ब्रह्म अर्थात् वेद, परमात्मा आदि का अध्ययन करता हो उसे जानता हो। ऊपर ब्रह्मणस्पति शब्द को देखिये। ब्रह्मणस्पति का अर्थ होता है ब्रह्म अर्थात् वेद का पति। जो वेद का अध्ययन और अध्यापन करके वेद की रक्षा करे वह ब्रह्मणस्पति कहलायेगा। ब्रह्मणस्पति[2] का अर्थ सायण ने भी अपने भाष्य में यही किया है। इस प्रकार यजुर्वेद के 'ब्रह्मणे ब्राह्मणम्' वाक्य में जो बात कही गयी है

१. तदधीते तद्वेद। अष्टा० ४।२।५६॥
२. ब्रह्मणस्पते मंत्राधिपते इति। ऋग् २।२४।१५ भाष्ये सायणः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही बात बृहस्पति नाम में भी प्रकारान्तर से कही गई है। यजुर्वेद के इस वाक्य में ब्राह्मण का काम स्वाध्याय द्वारा वेद की रक्षा करना, उसका प्रचार करना वताया गया है। वही काम बृहस्पति का भी है, ऐसा उसका यह नाम वता रहा है। इसलिए बृहस्पति भी ब्राह्मण ही ठहरता है।

ब्राह्मण को भांति-भांति की विद्याओं का पंडित होना चाहिए—

वेद के अनेक स्थानों का अध्ययन करने से यह भी प्रतीत होता है कि ब्राह्मण को भांति-भांति की विद्याओं का ज्ञान होना चाहिये। इस सम्बन्ध में निम्न मन्त्र देखिये—

१—[क] यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः॥ ऋग् १०-९७-६

[ख] ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि॥ ऋग् १०-९७-२२

[ग] बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुंचन्त्वंहसः॥ ऋग् १०-९७-१५

[घ] बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम्॥ ऋग् १०-९७-१९

२— चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
ऋग् १-१६४-४५

३—[क] यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः।
अत्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिरोह ब्रह्माणो विचरन्त्यु त्वे। ऋग् १०-७१-८

[ख] इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः॥
ऋग् १०-७१-९

४— ब्राह्मणमद्य विदेयम्पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयम्। यजुर् ७-४६

५— ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः॥ अथर्व ४-६-१

६— त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम्।
अथर्व १२-३-२०

७— कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्॥ ऋग् २-२३-१

८— देवानां देवतमाय॥ ऋग् २-२४-३

९— विप्रः। ऋग् २-२४-१३

१०— आ वैधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिम्॥ ऋग् ५-४३-१२

११— यो अनूचानो ब्राह्मणः॥ ऋग् ८-५८-१

इन मन्त्रों का अर्थ क्रम से इस प्रकार है—

१—"(राजा लोग जिस प्रकार समिति में एकत्र होते हैं वैसे ही) जिसमें सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषधियां एकत्र होती हों, वह ज्ञानी ब्राह्मण [विप्र][1] —वैद्य [भिषक्] कहलाता है, वह रोग-कृमियों का नाशक होता है [रक्षोहा] और वही रोगों का नाश करने वाला होता है। "सब ओषधियां राजा सोम के साथ संवाद करती हैं कि जिस रोगी के लिये ब्राह्मण हमें प्रदान करता है, उस रोगी को हे राजन् ! हम रोग के पार पहुंचा देती हैं। ब्राह्मण के द्वारा प्रेरित की हुईं हे ओषधियो ! तुम हमें रोगों से [अंहसः] मुक्त कर दो। "ब्राह्मण [बृहस्पति] के द्वारा प्रेरित की हुईं हे ओषधियो ! तुम इस रोगी व्यक्ति के लिये बल का प्रदान करो"।

ब्राह्मण को सब ओषधियों का ज्ञान होना चाहिये, लोगों के रोगों का निवारण करने के लिये वैद्य का काम भी उसे ही करना चाहिये—यह वेद के इन मन्त्रों से स्पष्ट प्रतिपादित होता है। जो व्यक्ति सब ओषधियों का ज्ञान रखता है, सब प्रकार के रोगों की चिकित्सा कर सकता है और भांति-भांति के रोगों के उत्पादक कृमियों का भी ज्ञान रखता है और उनका प्रतिकार कर सकता है—उस व्यक्ति के लिये इन विषयों से सम्बन्ध रखने वाली कितने प्रकार की विद्याओं का ज्ञाता होना आवश्यक है, यह स्वयं सोचा जा सकता है।

२—"वाणी के चार परिमित पद हैं—उनको जो बुद्धिमान् ब्राह्मण हैं, वे जानते हैं।" लोक में जितनी वाणी है वह चार विभागों में विभक्त है। वेद के इस कथन का भाष्यकारों ने अनेक प्रकार से व्याख्यान किया है। कई लोग कहते हैं कि यहां वाणी के चार पदों से तात्पर्य भू, भुवः, स्वः इन तीन व्याहृतियों एवं [चौथे] प्रणव अर्थात् [ओंकार] से है। क्योंकि इन चारों में समस्त वैदिक वाङ्मय का सार आ जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि यहाँ वाणी के चार पदों से तात्पर्य नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात से है—क्योंकि व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से हमारी वाणी के ये ही चार विभाग बनते हैं। कई याज्ञिक लोग इन चार पदों से तात्पर्य मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और लौकिक वाणी लेते हैं। कोई-कोई भाष्यकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद, दूसरे भाष्यकार इनका अर्थ त्रयी विद्या और [चौथी] व्यवहार विद्या करते हैं। अन्य विद्वान् इनका अर्थ सर्पादि कीट, पशु, पक्षी और मनुष्यों की वाणी ऐसा करते हैं। एक दूसरे लोग इन चार पदों का अर्थ परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार अवस्थाओं में प्रकट होने वाली—नादात्मिका वाणी करते हैं। वाणी के इन चार पदों का अर्थ कुछ भी किया जाये, इतना स्पष्ट है कि यहां प्रयुक्त वाणी-शब्द बहुत व्यापक अर्थ का बोधक है। जितने प्रकार की भी वाणी है और उसके जितने भी भेद हैं बुद्धिमान् ब्राह्मण लोग उन सब को जानते हैं—मन्त्र में यह बात स्पष्ट कही गई है। ब्राह्मण लोगों को कितनी अधिक विद्याओं

१. प्राज्ञो ब्राह्मण इति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ज्ञाता होना चाहिये—यह इस मन्त्र के वर्णन से स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है।

३—[क] "जब ब्राह्मण लोग एकत्र होते हैं तब वे अपने उस समुदाय में अपनी विद्याओं के कारण कइयों को पीछे छोड़ जाते हैं।"

ब्राह्मणों को अनेक विद्याओं का ज्ञाता होना चाहिये यह इस मन्त्र के वर्णन से ही स्पष्ट सूचित होता है।

[ख] "ये जो लोग न इस लोक की ओर [अर्वाक्] चलते हैं [अर्थात् इस लोक का ज्ञान रखते हैं] और न परलोक की ओर [परः] चलते हैं [अर्थात् परलोक का ज्ञान रखते हैं], और इस प्रकार न ब्राह्मण बनते हैं और न परोपकार के यज्ञादि कर्म करने वाले [सुतेकरासः] बनते हैं...... "

इस मन्त्र के वर्णन से यह सूचित होता है कि ब्राह्मण वे लोग हैं जो लोक और परलोक का ज्ञान रखते हैं और उसके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं। लोक और परलोक का ज्ञान रखने के लिये अग्नि, जल, वायु, पृथिवी, विद्युत् आदि प्राकृतिक तत्त्वों से सम्बन्ध रखने वाली विद्याओं का, मनुष्यों के विभिन्न प्रकार के व्यवहारों—व्यवसायों, उनके सामाजिक सम्बन्धों का और राज्य-व्यवस्था आदि से सम्बन्ध रखने वाली विद्याओं का, आत्मा, परमात्मा, जड़-चेतन, कर्मफल, पुनर्जन्म, बन्ध और मोक्ष आदि से सम्बन्ध रखने वाली विद्याओं का ज्ञान रखना आवश्यक है। इन विषयों की विद्याओं से अवगति प्राप्त किये बिना लोक और परलोक का ज्ञान नहीं हो सकता। इस प्रकार इस मन्त्र के वर्णन से भी यह स्पष्ट निर्देश मिल जाता है कि ब्राह्मण को कितनी अधिक विद्याओं का ज्ञान होना चाहिये।

४—"आज मैं उस ब्राह्मण को प्राप्त करूं जो ऋषि है और आर्षेय है।"

ऋषि उस ज्ञानी को कहते हैं जिसकी बुद्धि सब प्रकार के विषयो में गति करने की शक्ति रखती है और जो दूर भविष्य की बात को भी अपने ज्ञान के आधार पर जान लेने का सामर्थ्य रखता है। ब्राह्मण को इस प्रकार का ऋषि, इस प्रकार का ज्ञनी होना चाहिये। इस प्रकार का ज्ञानी कोई व्यक्ति अनेक विद्याओं के अभ्यास से ही हो सकता है। आर्षेय[1] का अर्थ होता है जो ऋषियों से सम्बन्ध रखता हो, ऋषियों में प्रसिद्ध हो। ब्राह्मण को आर्षेय कहने का भाव यह है कि उसे ऐसा ज्ञानी होना चाहिये कि दूसरे ज्ञानियों में उसकी प्रसिद्धि हो। ब्राह्मण का यह वर्णन भी स्पष्ट सूचित करता है कि उसे अनेक प्रकार के विषयों का ज्ञाता होना चाहिये।

१. ऋषिषु विख्यात आर्षेयस्तं ज्ञानेन सुज्ञातमित्यर्थः। इति महीधरः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—"ब्राह्मण सब वर्णों में प्रथम उत्पन्न हुआ है—वह दस सिरों और दस मुखों वाला है।"

ब्राह्मण अपने ज्ञान के कारण सब वर्णों में प्रथम बनाया गया है। उसमें अन्य वर्णों की अपेक्षा कितना अधिक ज्ञान रहना चाहिये यह उसके दस सिरों वाला [दशशीर्षः] और दस मुखों वाला [दशास्यः] इन विशेषणों से सूचित होता है। हमारा सिर हमारे ज्ञान का केन्द्र होता है। ब्राह्मण के पास मानो दूसरे वर्ण वाले लोगों की तुलना में दस सिर होते हैं, उसके पास उनकी अपेक्षा दसगुणा ज्ञान होता है। अपने उस दसगुणा ज्ञान को वह दस मुखों वाला होकर ही दूसरों तक पहुंचाता है। ब्राह्मण का यह वर्णन भी स्पष्ट बताता है कि उसे अनेक विद्याओं का ज्ञाता होना चाहिये।

६—"तीनों लोक ब्राह्मण के द्वारा भली भांति जाने[1] हुए [संमिताः] छुए होते हैं—वह द्युलोक, यह पृथिवी लोक, और बीच का अन्तरिक्ष लोक।

ब्राह्मण को तीनों लोकों का ज्ञाता होना चाहिये। तीनों लोकों में अनेक प्रकार के पदार्थ हैं, जिनके विषय में अनेक विद्याएं बन जाती हैं। ब्राह्मण को तीनों लोकों का पूर्ण ज्ञाता होने के लिये इन सब पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाली विद्याओं को जानना होगा। भांति-भांति की विद्याओं का ज्ञाता ब्राह्मण को होना चाहिये यह इस मन्त्र में असंदिग्ध रूप में बताया गया है।

७—"ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] क्रान्तदर्शी ज्ञानियों में [कवीनां] सब से अधिक क्रान्तदर्शी ज्ञानी होता है, उसका श्रवण अर्थात् विद्याध्ययन उपमा के योग्य होता है [उपमश्चावस्तमम्]।"

क्रान्तदर्शी ज्ञानी को, पदार्थों की गहराई का ज्ञान रखने वाले ज्ञानी को कवि कहते हैं। ब्राह्मण कवियों में भी कवि होता है। वह पदार्थों का बहुत ही अधिक गहरा ज्ञान रखने वाला होता है। उसका ज्ञान, उसका श्रवण, उसका अध्ययन इतना अधिक होता है कि लोग उसी की उपमा देते हैं। ब्राह्मण का यह वर्णन भी स्पष्ट बताता है कि उसे कितना अधिक ज्ञानी, कितनी अधिक विद्याओं का वेत्ता होना चाहिये।

८—"ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] विद्वानों में [देवानां] सब से अधिक विद्वान् [देवतमाय] होता है।"

भांति-भांति की विद्याओं को जानने वाले व्यक्तियों को विद्वान् कहते हैं।

---

१. विद्वांसो हि देवाः। शत० ३।७।३।१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण को विद्वानों में सबसे अधिक विद्वान् होना चाहिये। मन्त्र में विद्वान् के लिये देव शब्द का प्रयोग हुआ है। शतपथ में देव का अर्थ विद्वान् किया गया है। यह शब्द "दिवु" धातु से बनता है। इस धातु के क्रीड़ा आदि दस अर्थ होते हैं। उन सब अर्थों में, सब कामों में, जो कुशल होगा उसे देव कहा जायेगा। उन सब कामों में कुशल व्यक्ति एक भारी विद्वान् ही हो सकता है। इसलिये शतपथ ने देव का जो अर्थ विद्वान् किया है, वह ठीक ही किया है। ब्राह्मण को देवों में देव=विद्वानों में विद्वान् होना चाहिये।

९—"ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] विप्र होता है।"

यहां ब्राह्मण को विप्र कहा गया है। निघण्टु में विप्र का अर्थ मेधावी बुद्धिमान् अर्थ दिया गया है। विप्र उस मेधावी विद्वान् को कहते हैं जो समय-समय पर उत्पन्न होने वाली विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता हो। ब्राह्मण को इस प्रकार का ज्ञानी विद्वान् होना चाहिये। ऐसा ज्ञानी अनेक विद्याओं का ज्ञाता व्यक्ति ही हो सकता है।

१०—"ब्राह्मण [बृहस्पति] को वेधा [आवेधसम्] होना चाहिये।"

"वेधाः" उस विद्वान् को कहते हैं जो नये-नये आविष्कार कर सकता हो, नई-नई चीजें बना सकता हो। मन्त्र में "वेधाः" के साथ "आ" उपसर्ग लगा दिया गया है। "आ" का अर्थ होता है "चारों ओर"–जिसकी प्रतिभा चारों ओर चलती हो, जो सभी क्षेत्रों में नये-नये आविष्कार कर सकता हो, उस विद्वान् को "आवेधाः" कहा जायेगा। ब्राह्मण को इस प्रकार का विद्वान् होना चाहिये। ऐसा विद्वान् अनेक विद्याओं का ज्ञाता पुरुष ही हो सकता है।

११—"ब्राह्मण अनूचान होता है।"

जिसने गुरु के मुख से भांति-भांति की [वेदादि शास्त्रों की] विद्याओं को पढ़ा है, उसे अनूचान कहते हैं। ब्राह्मणों को अनूचान होना चाहिये। उन्हें विविध प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करना चाहिये।

वेद के इन और ऐसे ही अन्य सन्दर्भों से यह भली-भांति विदित होता है कि ब्राह्मण को भांति-भांति की विद्याओं का पंडित होना चाहिये। 16/11/95

ब्राह्मण को विद्या पढ़ाने का कार्य करना चाहिये—

वेद के अनेक प्रसंगों के अध्ययन से यह परिणाम निकलता है कि ब्राह्मण का एक कर्तव्य सब को विद्या पढ़ाना भी है। इस सम्बन्ध में निम्न मन्त्र देखिये—

१—ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः। ऋग् ७-१०३-७

२—ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्। ऋग् ७-१०३-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूंरनु । ऋग् १-१५-५

४—ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः । ऋग् ६-७५ १०

५—देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् । अथर्व १२-४-२०

६—वशां च विद्यान्नारदः ब्राह्मणास्तह्येष्याः ।। अथर्व १२-४-१६

७—ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ।।
अथर्व १०-५-४१

८—ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।। अथर्व ४-१९-२

९—सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ।।
ऋग् १-१८-६

१०—ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।। ऋग् १-४०-१

११—प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।। ऋग् १-४०-३

१२—तमृत्विया उप वाचः सवन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि । ऋग् १-१९०-२

१३—विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ।। ऋग् २-२३-२

१४—हवामहेऽवस्पतेरधिवक्तारमस्मयुम् ।। ऋग् २-२३-८

१५—प्रसुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ।। ऋग् २-२३-१०

१६—ऋत प्रजात ।। ऋग् २-२३-१५

१७—इन्द्रेण युजा तमसा परिवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ।। ऋग् २-२३-१८

१८—बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ।। ऋग् २-२४-१

१९—स सन्नयः स विनयः ।। ऋग् २-२४-९

२०—देवानां पितरम् ।। ऋग् २-२४-३

२१—सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ।। ऋग् ४-५०-४

२२—अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्रः आवः ।। ऋग् १०-६७-४

२३—अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुदनः शीपालमिव वात आजत् ।।
ऋग् १०-६८-५

२४—क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन् ।। ऋग् १०-१८२-१

२५—बृहस्पते यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।। ऋग् १-१०६-५

२६—अस्मे धेहि द्युमतीं वाचनासन्बृहस्पते ।। ऋग् १०-९८-३

२७—यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः संदधातु बृहस्पतिः ।।
अथर्व १९-४०-१

२८—बृहस्पते···ज्योतयैनं···संशितं चित् सन्तरं शिशाधि ।। अथर्व ७-२६-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन मन्त्रों का शब्दार्थ क्रम से इस प्रकार है—

१—"[ब्राह्मणासः] ब्राह्मण लोग [न] जिस प्रकार [अतिरात्रे] अज्ञानान्धकार की रात्रि का अतिक्रमण करने वाले [सोमे] स्नातक में [न][1] सम्प्रति [पूर्णम्] भरे हुए [सरः] गुरु से बहकर शिष्य में जाने वाले विद्या के सरोवर को [अभितः] सब ओर से [वदन्तः] बोलकर उपदेश कर देते हैं।" मन्त्र कहता है कि ब्राह्मण लोग विद्या के सरोवर का उपदेश करके उसे स्नातकों में डाल देते हैं और इस प्रकार उनके अज्ञान की रात्रि को दूर कर देते हैं।

२—"ब्राह्मण लोग सोम अर्थात् स्नातकों को बनाने वाले [सोमिनः] होते हैं, वे साल भर वेद का अध्ययन करते हुए शिष्यों में अपनी वाणी को [वाचं] डाल देते हैं।"

गुरुकुल में रहकर पूर्ण विद्या प्राप्त—विद्या में स्नान किया हुआ व्यक्ति सोम कहलाता है। ब्राह्मण लोग सोमी हैं। वे इस प्रकार सोमों को—[स्नातकों को] —तैयार करते हैं। वे अपनी वाणी के द्वारा शिष्यों में ज्ञान भरकर उन्हें स्नातक बनाते हैं।

३—"हे इन्द्र सम्राट्, आप कार्यों को सिद्ध करने वाले [राधसः] ब्राह्मणों से ऋतुओं के अनुसार सोम का पान करो।"

ब्राह्मण सोमों को [स्नातकों को]—तैयार करते हैं। वर्ष की प्रत्येक ऋतु में वे स्नातकों को तैयार करते हैं। सम्राट्—ब्राह्मणों द्वारा तैयार किये हुए सोमों को-स्नातकों को—राज्य के पदों पर नियुक्त करता है। इस प्रकार इन्द्र ब्राह्मण के द्वारा तैयार किये हुए सोम का पान करता है।

४—"ब्राह्मण लोग पालक, [पितरः] हैं सोमों का निर्माण करने वाले [सोम्यासः][2] हैं।"

ब्राह्मण लोग शिक्षा के द्वारा क्योंकि सोमों का [स्नातकों का] निर्माण करते हैं; इसलिये वे राष्ट्र के पालक पितर हैं।

५—"भाँति-भांति के व्यवहारशील विद्वान् लोग [देवाः] ब्राह्मण को मुख बनाकर वशा की याचना करते हैं।"

६—"मनुष्यों को नीति का दान करनेवाले [नारद[3]] हैं, पुरुष यदि तुम वशा को जानना चाहते हो तो तुम्हें ब्राह्मणों को खोजना चाहिये।"

---

१. द्वितीयो न-शब्दः सम्प्रत्यर्थे इति सायणः।

२. सोम्याः सोमसम्पादिनः। निरुक्त ११-१४

३. नृ नये, घञ् दा क। नारं=नयं=नीतिं ददातीति नारदः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये दोनों मन्त्र (५-६) अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के चौथे सूक्त के हैं। इस सूक्त में इस विषय का वर्णन है कि जब कोई व्यक्ति ब्राह्मण के पास जाकर उससे उसकी वाणी, उसका ज्ञान, सीखना चाहे तब यदि कोई उसमें बाधा डालना चाहे—ब्राह्मणों से ज्ञान सीखने में रुकावट पैदा करना चाहे—तो राजा का कर्तव्य है कि वह ऐसे लोगों को दंडित करे। सूक्त में ब्राह्मण की वाणी को, उसकी विद्या-भारती को, गौ शब्द से कहा गया है। गौ का एक अर्थ वाणी भी होता है, यह संस्कृत-वाङ्मय से थोड़ा भी परिचय रखने वाला व्यक्ति भली भाँति जानता है। इसी गौ के लिए सूक्त में दूसरा शब्द वशा प्रयुक्त किया गया है। वशा शब्द 'वश कान्तौ' धातु से बनता है जिसका अर्थ चाहना होता है। चाहने योग्य होने के कारण सूक्त में ब्राह्मण की वाणी को वशा कहा गया है। क्योंकि उसके द्वारा सत्यासत्य का विवेक होता है, खोटे-खरे का ज्ञान होता है, भाँति-भाँति के ज्ञान का उपदेश मिलता है—इसलिये ब्राह्मण की वाणी चाहने योग्य है। जब ब्राह्मण की गौ—वाणी मांगने वालों को नहीं दी जाती तब वह मानो वाणी लंगड़ी हो जाती है—निकम्मी हो जाती है। इस प्रकार का आलंकारिक वर्णन इस सारे सूक्त में है। कई लोग इस सूक्त में वशा का अर्थ वन्ध्या गौ करते हैं। सूक्त की वशा या गौ का यह अर्थ करने पर सूक्त का वर्णन इस अर्थ में बिलकुल संगत नहीं हो सकता औरा सारा सूक्त एक प्रकार से बकवास का पिटारा बन जाता है। जो अर्थ हमने किया है उससे सारा सूक्त बड़ा सुन्दर और सारगर्भित उपदेश देने लगता है।

इस भूमिका के पश्चात् अब उद्धृत दोनों मन्त्रों को देखिये। जो लोग देव—भांति-भांति के व्यवहार कोविद विद्वान्—बनना चाहते हैं, वे ब्राह्मण से वशा की याचना करते हैं। जो व्यक्ति नारद बनना चाहते हैं—लोगों को नीति का, धर्म का, उपदेश करना चाहते हैं उन्हें वशा को प्राप्त करना चाहिये और इसके लिये उन्हें उत्तम ब्राह्मणों की खोज करनी चाहिये। भावार्थ यह है कि ऐसे व्यक्तियों को ब्राह्मणों के पास जाकर उनकी वाणी सुननी चाहिये—उनसे ज्ञान सीखना चाहिये।

७—"मैं ब्राह्मणों के पास जाता हूं, वे मुझे ऐश्वर्य का दान करें—वे मुझे अपने ब्रह्मवर्चस् का दान करें।"

ब्राह्मणों के पास उनका ब्रह्मवर्चस् ही ऐश्वर्य है, जिसका वे दान करते हैं। ब्रह्मवर्चस् का अर्थ है—ब्राह्मणों का तेज। ब्राह्मणों का तेज उनकी वेद आदि शास्त्रों की विद्या का बल ही होता है। ब्राह्मणों को अपना इस ब्रह्मतेज का—विद्या के तेज का, ऐश्वर्य का सदा दान करते रहना चाहिये।

८—"हे ओषधि, बुद्धिमान् [कण्वेन[1]] और मनुष्यों की सभाओं के हितकारी

---

१. कण्व इति मेधाविनाम। निघं० ३-१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[नार्षदेन[१]] ब्राह्मणों ने तुम्हारा उपदेश किया है।"

जो ब्राह्मण मनुष्यों की सभाओं के—मनुष्यों के समूहों के—हितकारी हैं। वे नार्षद हैं। ऐसे जनहितकारी मेधावी ब्राह्मण लोगों को औषधियों के ज्ञान का उपदेश करते हैं, आयुर्वेद-शास्त्र का अध्यापन करते हैं।

९—"जो सभाओं का पति है। [सदसस्पतिम्] सम्राट् का [इन्द्रस्य] प्यारा और चाहने योग्य है, अपनी शक्तियों का दान करने वाला है—ऐसे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] से मैंने मेधा को प्राप्त किया है।"

अपने ज्ञान के कारण ब्राह्मण सभाओं का पति बनता है। वह अपने ज्ञान की शक्ति को अन्य लोगों को दान करता है—उन्हें शिक्षित करता है; और इस प्रकार —लोगों को मेधा प्राप्त होती है।

१०—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते], अपने आप को देव अर्थात् भांति-भांति के व्यवहारों में निपुण विद्वान् बनाने की इच्छा वाले हम लोग आप से इस देवत्व की याचना करते हैं। [ईमहे[२]]।"

जिसे देव बनने की, भांति-भांति के व्यवहारों का ज्ञाता विद्वान् बनने की इच्छा हो, वह ब्राह्मणों के पास जाये और उनसे ज्ञान सीखकर अपने भीतर देवत्व प्राप्त करे।

११—"ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] हमें प्राप्त हो, उससे सत्य और मधुरवाणी हमें प्राप्त हो।"

हमें ब्राह्मणों की सेवा में जाना चाहिये, वे हमें वह प्रकार सिखायेंगे जिससे हम सच्ची और सदा मधुर-वाणी का ही उच्चारण किया करेंगे।

१२—"उस ब्राह्मण को [बृहस्पतिम्] समयोचित [ऋत्वियाः[३]] वाणियाँ प्राप्त होती हैं, जो अपने आप को देव अर्थात् विद्वान् बनाना चाहते हैं [देवयताम्] देवता का निर्माण करने वाले [सः] प्रभु ने उसे बनाया है।"

ब्राह्मण को समयोचित वाणियां बोलनी आती हैं। वह समय की आवश्यकता को पहचानने वाला होता है और उसके अनुसार ही, वाणियां बोलकर वह लोगों का मार्गप्रदर्शन कर देता है। भगवान् ने ब्राह्मणों को मानो देवत्व का स्रष्टा बनाया है। जो देव बनना चाहें, विद्वान् बनना चाहें—वे ब्राह्मण के पास जायें। ब्राह्मण उन्हें

---

१. नरोऽत्र सीदन्तीति नृषत्=जनसभा। तस्मै हितो नार्षदः।
२. याचामहे इति सायणः।
३. प्राप्तकालीना इति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भांति-भांति के ज्ञान की शिक्षा देकर देव बना देगा।

१३—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते] तू सब प्रकार के ब्राह्मणों के [ब्रह्मणाम्] उत्पन्न करने वाला है।"

ब्राह्मण लोग विद्या पढ़ाकर आगे आनेवाले नये ब्राह्मणों को तैयार करते हैं। ब्रह्म-शब्द वेद का भी वाचक होता है। वेद ज्ञान का ग्रन्थ है। इसलिये ब्रह्म शब्द उपलक्षण से सत्य-ज्ञान का भी वाचक हो जाता है। क्योंकि बीजरूप में, मनुष्य के लिये उपयोगी सभी प्रकार का ज्ञान वेद में है। तब मन्त्र का भाव यह होगा कि ब्राह्मण सब प्रकार के ज्ञानों का उत्पादक है। वह ज्ञान के नये-नये आविष्कार करता है और उन्हें पढ़ाकर अगली पीढ़ी को सौंप देता है।

१४—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते], तुम अपनी रक्षा द्वारा हमें दुःखों से पार करने वाले [अवस्पर्तः] हो, तुम सदा हमारा हित चाहते हो, तुम ज्ञान के वक्ता हो [अधिवक्तारम्] हम तुम्हें ज्ञान सीखने के लिये बुलाते हैं"।

१५—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते] हम उत्तम प्रशंसावाले होकर तुम से प्राप्त होने वाली बुद्धियों के द्वारा [मतिभिः] इस संसार के कष्टों से तर जाएं।'

ब्राह्मण हमें ज्ञान सिखाकर बुद्धियों का प्रदान करता है और हम, उन बुद्धियों के द्वारा, उत्तम कर्म करने के कारण प्रशंसा प्राप्त करते हैं—एवं संसार के कष्टों से बच जाते हैं।

१६—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते] तुम ऋत अर्थात् सत्य-ज्ञान को उत्पन्न करने वाले हो।"

ब्राह्मण अपनी शिक्षा द्वारा दूसरों में सत्य-ज्ञान को उत्पन्न कर देता है। इसलिये वह ऋतप्रजात कहलाता है।

१७—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते], तुम अन्धकार में पड़ेहुए प्रजाओं के [अपाम्] समुद्र को सम्राट् के साथ मिलकर [इन्द्रियुजा] सरल मार्ग पर लाते हो [निरौब्जः[1]]।"

जब राष्ट्र का जनसमुद्र अन्धकार में पड़ा होता है—ज्ञान से शून्य होता है—तब सम्राट् की सहायता लेकर ब्राह्मण लोग उसमें ज्ञान का प्रचार करते हैं, उसे प्रकाश देते हैं और इस प्रकार उसे अंधकार से निकालकर ऋजु—सरल मार्ग पर लाते हैं।

१८—"हे ब्राह्मण [बृहस्पते] तुम हमें मति की सिद्धि कराओ।"

---

१. उब्ज आर्जवे। नितरामृजुगामिनमकरोः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण लोग भांति-भांति के ज्ञान का उपदेश करके लोगों को मति अर्थात् मननशील बुद्धि की सिद्धि कराते हैं।

१९—"ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पतिः] लोगों को उत्तमनीति देनेवाला [सन्नयः] और उत्तम शिक्षा देने वाला [विनयः] होता है।"

२०—"ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पतिः] देवों अर्थात् विद्वानों का पितर होता है।"

ब्राह्मण विद्याओं का उपदेश करके लोगों को देव अर्थात् विद्वान् बनाता है। इसलिये यह देवों का पितर तो है ही।

२१—"ब्राह्मण [बृहस्पतिः] सात प्रकार के छन्द्रों में बनेहुए वेद को पढ़ने के कारण सात मुखों और सात किरणों वाला होकर अपने शब्दघोष से अंधकार को मार भगाता है।"

ब्राह्मण वेद को और तदुपलक्षित विद्याओं को पढ़कर उन्हें औरों को पढ़ाता है और इस प्रकार उन तक अपने ज्ञान की किरणें पहुंचाता है। जिससे उनका अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है।

२२—"[द्वाभ्याम्] दो से [अवः] नीचे और [एकया] एक से [परः] ऊपर, [गुहा] गुफा में, [तिष्ठन्तीः] पड़ी हुई—और इसी लिये [अनृतस्य] असत्य के [सेतौ] जलाशय में पड़ी हुई [गाः[1]] विद्या-वाणियों को—[तमसि] अन्धकार में [ज्योतिः] प्रकाश को [इच्छन्] चाहता हुआ [बृहस्पतिः] ब्राह्मण [उस्राः[2]] किरणों के रूप में [उदाकः[3]] प्रकट करता है और [तिस्रः] तीनों लोकों को [विभावः] खोल देता है।"

जब हम अज्ञान में होते हैं, जब हम किसी प्रकार के ज्ञान की कोई बात नहीं कर सकते, तब हमारी ज्ञान-प्रकाशिका वाणियां मानो गुहा में पड़ी होती हैं। उस समय मानो वे असत्य के तालाब में पड़ी होती हैं। सच्चा ज्ञान न होने से—न हम दूसरों को उसका बोध करा सकते हैं, और न ही दूसरे लोग हमें उसका बोध करा सकते हैं। तब सत्य-ज्ञान के अभाव में हम असत्य का ही आचरण करते हैं। हमारी वाणियां उस समय असत्य के समुद्र में डूबी होती हैं। ब्राह्मण लोग इस असत्य की [इस अन्धकार की] अवस्था से हमारा उद्धार करना चाहते हैं। इस अन्धकार में वे ज्योति लाना चाहते हैं। तब वे अपनी ज्ञान-भरी वाणियों को किरणों के रूप में प्रकट करते हैं। और अपनी वाणी की ज्ञान-किरणों में से तीनों लोकों को

१. गौरिति वाङ्नाम। निघं० १-११
२. उस्रा रश्मिनाम। निघं० १-५
३. प्रादुर्भूता अकार्षीत् इति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे आगे खोलकर रख देते हैं। तीनों लोकों के पदार्थों का ज्ञानोपदेश हमें कर देते हैं।

मन्त्र में कहा है कि जब हमारी वाणियां गुहा में, अन्धकार में, पड़ी होती हैं, तब वे दो के नीचे और एक के ऊपर होती हैं। इस कथन का भाव समझ लेना चाहिये। हम पृथिवी-लोक पर रहते हैं। पृथिवी हमारे से नीचे है और हम पृथिवी के ऊपर हैं। हम से ऊपर अन्तरिक्ष और द्यौः ये दो लोक और हैं। हम दोनों लोकों के नीचे हैं। ऐसी स्थिति में हमारी वाणियां गुहा में पड़ी हैं। हमारे ऊपर और नीचे जगत् के इतने पदार्थ हैं। पर हमें उनमें से किसी का भी ज्ञान नहीं होता—हम किसी के बारे में भी कोई ज्ञान की, सही बात नहीं कर सकते। इसीलिये हमारी वाणियां मानो गुहा में पड़ी होती हैं।

मन्त्र में लोकों को सूचित करने के लिये जो दो, एक और तीन ये संख्यावाची शब्द प्रयुक्त किये गये हैं, वे स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किये गये हैं। इसका यह कारण है कि वेद में कई स्थानों पर तीनों ही लोकों के लिये पृथिवी और भूमि शब्दों का प्रयोग किया गया है। ये शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं। पृथिवी शब्द के स्त्रीलिङ्ग को ध्यान में रखकर मन्त्र में लोकों के सूचक संखयावाची शब्दों में स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग कर दिया गया है।

वेद में वाणियों के वाचक-शब्द ज्ञान के लिये, विद्या के लिये, भी प्रयुक्त हुआ करते हैं—क्योंकि वाणी और ज्ञान का गहरा सम्बन्ध है। ज्ञान वाणी के द्वारा ही प्रकाशित हो सकता है। जब कोई व्यक्ति बोलता है तो अपनी वाणी द्वारा ही कोई ज्ञान दूसरे व्यक्ति तक पहुंचा रहा होता है। यजुर्वेद के "यथेमां वाचं कल्याणीम्" यजु० २६।२ मन्त्र में वाक्—वाणी शब्द से स्पष्ट ही वेद-विद्या को कहा गया है। इसी आधार पर हमने प्रस्तुत मन्त्र में 'गाः' का अर्थ विद्या-वाणियां ऐसा कर दिया है।

सायण ने मन्त्र में, 'बृहस्पतिं तमसि ज्योतिरिच्छन्' इस वाक्य के होतेहुए भी मन्त्र के "गाः" और "उस्राः" शब्द का जो गौ अर्थ कर दिया है—और मन्त्र में देवों की गौओं को चुराने वाले पणियों की कथा को ला घुसेड़ा है—वह मन्त्र के ऊंचे भाव को सर्वथा न समझने के कारण किया है।

२३—"ब्राह्मण [बृहस्पतिः] लोगों के हृदयाकाश से अन्धकार को प्रकाश के द्वारा इस प्रकार दूर कर देता है जैसे वायु पानी पर से शैवाल [शीपालम्[१]] को दूर कर देता है।"

विद्या न होने के कारण लोगों के हृदयों में अन्धकार होता है। ब्राह्मण उन्हें विद्या का प्रकाश देता है, जिससे उनके हृदय का अज्ञानान्धकार सर्वथा दूर हो जाता है।

---

१. शैवालमिवेति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४—"ब्राह्मण [बृहस्पति] अशस्ति को दूर फैंक देता है, और दुर्मति को मार भगाता है।"

लोगों के आचरणों और मनो में जो अशस्ति होती है, जो निन्दा होती है; तथा उसमें जो दुर्मति होती है—जो दुष्ट या अधूरा ज्ञान होता है—ब्राह्मण सही ज्ञान के उपदेश द्वारा उसे दूर हटा देता है।

२५—"हे ब्राह्मण [बृहस्पते] जो तुम्हारे भीतर ज्ञान [मनुः[१]] है उसे हम तुमसे मांगते हैं।"

ब्राह्मणों में ज्ञान होता है। ब्रह्म अर्थात् वेदादि शास्त्रों के ज्ञान का अध्ययन करने ही के कारण ब्राह्मण को ब्राह्मण कहा जाता है। ज्ञानवान् ब्राह्मणों के पास जाकर हमें उनसे ज्ञान सीखना चाहिये।

२६—"हे ब्राह्मण [बृहस्पते], तुम हमारे मुख में तेजस्विनी [मनुमतीम्[२]] वाणी को धारण कराओ।"

ब्राह्मण के पास ज्ञान का तेज होता है। इससे उसकी वाणी तेजस्विनी बन गई होती है। जब हम उसके पास जाकर ज्ञान सीखते हैं, तो उस ज्ञान से हमारी वाणी भी तेजस्विनी हो जाती है।

२७—"जो मेरे मन का छिद्र है, जो मेरी वाणी का छिद्र है, अथवा जो विद्यादेवी [सरस्वती] मेरे प्रति क्रोधयुक्त व्यवहार को [मन्युमन्तम्] प्राप्त हो गई है, ब्राह्मण लोग [बृहस्पतिः] सब राज्याधिकारी देवों के साथ [देवैः] मिलकर मेरे उस छिद्र को मिला देवें [संदधातु]।"

मन के दोष मन के छिद्र, और वाणी के दोष वाणी के छिद्र, कहलाते हैं। हमारे मन में और वाणी में जो दोष हों उन्हें ब्राह्मण लोगों की संगति में जाकर उन से ज्ञान सीखकर दूर कर लेना चाहिये। यदि विद्यादेवी हमसे क्रुद्ध हो गई हो —किसी किस्म की कोई विद्या हमें न आती हो—तो ब्राह्मणों की सेवा में जाकर हमें भांति-भांति की विद्याओं का अध्ययन करके अपने अज्ञान को दूर कर लेना चाहिये।

२८—"हे ब्राह्मण [बृहस्पते], इसको प्रकाशित करो [ज्योतय[३]] यह संशित

---

१. मननात्मकं ज्ञानम्। मनुर्मननात् निरु० १२-३३, मनुः मननशक्तिरिति तै० २-३-८-३ व्याख्यायां सायणः।

२. पीप्सिमतीमिति सायणः।

३. ज्योतयति सायणः। ज्योततेर्ज्वलतिकर्मणः। निघं० १-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् ज्ञान के कारण तीक्ष्ण है तो भी इसे और ज्ञान सिखाकर, और अच्छी तरह तीक्ष्ण करो—और अच्छी तरह शिक्षित करो [संशिशाधि]।"

जब तक हमारे पास ज्ञान नहीं होता तब तक हमारी बुद्धि कुण्ठित होती है। जब हम ज्ञान सीख जाते हैं तब हमारी बुद्धि तिक्ष्ण हो जाती है—तेज हो जाती है। हमें अपने आप को ज्ञानवान् वनाने के लिये संशित होने के लिये ब्राह्मणों की संगति में जाकर विविध प्रकार की विद्याएँ सीखनी चाहियें। उनकी संगति हमें संशितव्रत-विद्वान् बना देगी।

वेद के इन और ऐसे ही अन्य स्थलों से यह असंदिग्ध रूप में ज्ञात होता है कि ब्राह्मण का एक मुख्य कर्तव्य प्रजाओं को विविध प्रकार की विद्याओं का पढ़ाना है।

ब्राह्मणों को यज्ञ-यागादि करना कराना चाहिये—

वेद का स्वाध्याय करते हुए ब्राह्मणों के सम्बन्ध में एक और बात जो अति स्पष्ट रूप में पाठक के सामने आती है वह यह है कि ब्राह्मणों को यज्ञ-यागादि कर्म करने-कराने चाहियें। इस विषय में वेद के कुछ निम्न मन्त्रों को देखिये—

१—उप यज्ञमायन् ब्राह्मणः ॥	ऋग् १०-८८-१९
२—ब्राह्मणासः······अध्वर्यवः ॥	ऋग् ७-१०३-८
३—यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ॥	ऋग् १-१८-७
४—आदृध्नोति हविष्कृतिं प्रांचं कृणोत्यध्वरम् ॥	ऋग् १-१८-८
५—देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ॥	ऋग् २-२३-२
६—इन्धानो अग्निं······यं यं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥	ऋग् २-२५-१
७—एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ॥	ऋग् ४-५०-६
८—यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥	ऋग् १०-६७-२
९—करद्यजमानाय शं योः ॥	ऋग् १०-१८२-१
१०—शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत ॥	ऋग् ३-६२-५
११—बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः ॥	अथर्व १८-३-४१
१२—बृहस्पतिपुरोहिता देवाः ॥	यजुर् २०-११
१३—स पुरोहितः ॥	ऋग् २-२४-९

इन मन्त्रों का अर्थ क्रम से इस प्रकार है—

'ब्राह्मण यज्ञ को प्राप्त होता है।' (१) 'ब्राह्मणलोग यज्ञ को चाहनेवाले होते हैं।' (२) '(जिस) ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] के बिना बुद्धिमान् का भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता है।' (३) 'ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] हविष्कृति अर्थात् यज्ञोपयोगी सामग्री के विधान को बढ़ाता है और यज्ञ को अग्रगामी वनाता है (अर्थात् पूर्ण करता है)।' (४) हे बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा प्राण देने वालों के हितकारी [असुर्य[1]] ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते] उत्कृष्ट चित्त वाले देव अर्थात् विविध प्रकारों के व्यवहारों में कुशल विद्वान् लोग भी यज्ञ-सम्बन्धी भाग को तुम से ही प्राप्त करते हैं।' (५) 'ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] जिस-जिस को अपना मित्र [युजं] बना लेता है, वह अग्नि का समिन्धन करता है अर्थात् यज्ञ करता है।' (६) 'जो विद्या आदि दान के कारण सबका पिता है, सब देव-पुरुषों का हित-कारी है, कल्याण की वर्षा करने वाला है, ऐसे ब्राह्मण [बृहस्पति] का हम यज्ञों, हवियों और नमस्कार से सत्कार करें।' (७) 'ब्राह्मण [बृहस्पति] को यज्ञ का प्रथम धाम मानते हैं।' (८) 'ब्राह्मण [बृहस्पति] यज्ञ करने वाले यजमान के लिये रोगों का शमन [शम्[2]] करता है और भयों को दूर [योः] करता है।' (९) जो वेद-मन्त्रों के द्वारा [अर्कैः] पवित्र है—ऐसे ब्राह्मण [बृहस्पति] को यज्ञों में नमस्कार करो।' (१०) 'ज्ञानी [ऋषिः] ब्राह्मण [बृहस्पति] यज्ञ का विस्तार करता है।' (११) 'देव अर्थात् विद्वान् लोग ब्राह्मण [बृहस्पति] को अपने यज्ञों में पुरोहित बनाते हैं।' (१२) 'वह ब्राह्मण [बृहस्पतिः] यज्ञों में पुरोहित होता है (१३)।'

इन मन्त्रों के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण के कर्तव्यों में से यज्ञ-यागादि करना-कराना भी एक मुख्य कर्तव्य है। यज्ञ-शब्द वैदिक साहित्य में दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—एक तो अग्निहोत्रादि कर्मकाण्ड से सम्बन्ध रखने वाले यज्ञों के अर्थ में और दूसरे समाज के योग-क्षेम के उद्देश्य से परस्पर मिलकर किये जानेवाले किसी भी प्रकार के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक आदि कर्मों और संगठनों के अर्थ में। ये दोनों ही प्रकार के यज्ञ करना और कराना ब्राह्मण का कर्तव्य है। दोनों ही प्रकार के यज्ञों का पुरोहित ब्राह्मण बनेगा। ब्राह्मण के पुरोहितत्व में यज्ञ करने वाले यजमानों के यज्ञ ही सफल यज्ञ होते हैं।

यज्ञों में हिंसा वेद-विहित नहीं—

यहां उद्धृत मन्त्रों में से दूसरे, चौथे और दसवें मन्त्रों में यज्ञ के लिये, 'अध्वर' शब्द का प्रयोग हुआ है। अध्वर का शब्दार्थ होता है—'जिसमें हिंसा न होती हो।' वेद में यज्ञ के लिये अध्वर शब्द का प्रयोग यह स्पष्ट ध्वनित करता है कि यज्ञों में किसी प्रकार की हिंसा नहीं होनी चाहिये। भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास में हम यज्ञों में प्रचलित जिस हिंसा का, जिस पशुवध का, वर्णन पाते हैं उसे सर्वथा वेद-विरुद्ध समझना चाहिये।

---

१. असुः प्राण-नाम। निरु० १०-३४, असुः प्रज्ञानाम। निघं० ३-९
असुं प्राणं प्रज्ञां वा एति ददाति असुरः। असुराय हितः असुर्यः।

२. शं योः शमनं च रोगाणां यावनं च भयानाम्। (निरु० ४-२१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणों को संयमी होना चाहिये—

वेद का स्वाध्याय करते हुए हमारा ध्यान ब्राह्मण के गुणों और कर्तव्यों के सम्बन्ध में एक इस बात की ओर भी जाता है—कि ब्राह्मण को संयमी होना चाहिये। इस विषय में निम्न मन्त्र देखिये—

१—ब्राह्मणो युक्त आसीत् ॥ ऋग् ८-५८-१

२—ब्राह्मणा व्रतचारिणः ॥ ऋग् ७-१०३-१

३—ब्राह्मणं देवबन्धुम् ॥ अथर्व ५-१८-१३

इन मन्त्र-खण्डों का शब्दार्थ क्रम से इस प्रकार है—

१—"ब्राह्मण को युक्त होना चाहिये।"

जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में करके संसार के सब विषयों से रोककर एकाग्र कर लिया है—ऐसे व्यक्ति को युक्त कहते हैं। ब्राह्मणों को अपनी इन्द्रियों को वश में करके अपने आप को युक्त—संयमी बनाना चाहिये।

२—"ब्राह्मण व्रतों का आचरण करने वाले होते हैं।"

ब्रह्मचर्यादि व्रतों को व्रत कहते हैं। इन ब्रह्मचर्यादि व्रतों में साधक को अपनी इन्द्रियों को ही वश में, संयम में, करना होता है। ब्राह्मणों को इन व्रतों का पालन करके अपनी इन्द्रियों का संयम करना चाहिये।

३—"ब्राह्मण अपनी इन्द्रियों को बांधकर रखने वाला [देवबन्धुम्] होता है।"

मन्त्र में ब्राह्मण को देवबन्धु कहा है। देव[1] का अर्थ इन्द्रिय भी होता है। देव शब्द वैदिक-साहित्य में अनेक स्थलों पर इन्द्रियों के लिये प्रयुक्त हुआ है। दिव्य-शक्तिवाला होने के कारण इन्द्रियों को देव कहा जाता है। उपनिषदों और ब्राह्मण-ग्रन्थों में कई स्थानों पर प्राणों को देव कहा गया है। इन ग्रन्थों के पाठक यह तो भली-भाँति जानते ही हैं कि इन ग्रन्थों में प्राण शब्द अनेक बार इन्द्रियों के अर्थ में प्रयुक्त होता है। देव प्राण है, प्राण इन्द्रिय है। इसलिये देव अर्थात् इन्द्रियाँ स्वतः सिद्ध हैं। इन ग्रन्थों में कई स्थानों पर चक्षु आदि इन्द्रियों को सीधा भी देव कहा गया है। बन्धु[2] का अर्थ बांधनेवाला होता है (बन्धु-लोगों को बन्धु इसीलिये कहते हैं कि वे

---

१. प्राणा देवाः। श० ६-३-१-१५ श० ७-५-१-२१ ॥ चक्षुर्देवः। गो० सू०२-१०॥ मनो देवः। गो० सू०२-१०॥ वाग्देवः। गो० सू०२-१०॥ प्राणाश्च पुनः सप्तशीर्षन् प्राणाः। श० ९-५-२-८ ॥ सप्त शिरसि प्राणाः। तां० २-१४-२ ॥

२. बध्नातीति बन्धुः। उणा०१-१० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने प्रेम से बांधकर रखते हैं) जो देव अर्थात् अपनी इन्द्रियों को बांधकर रखें उन्हें हम देवबन्धु कहेंगे। ब्राह्मण को देवबन्धु होना चाहिये। उसे अपनी इन्द्रियों को बाँधकर रखना चाहिये। उन्हें विषयों में न जाने देकर अपने वश में रखना चाहिये–उनका संयम करना चाहिये।

ब्राह्मणों को सत्य-परायण होना चाहिये—

वेद का अध्ययन करते हुए पाठक का ध्यान ब्राह्मणों के जिस एक अन्य गुण की ओर स्वभावतः जाता है, वह 'सत्य-परायणता' है। ब्राह्मणों को सत्य की उपासना का जीवन व्यतीत करना चाहिये। उन्हें असत्य से सर्वथा परे रहना चाहिये। इस प्रकार के भाव वेद में स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिये निम्न मन्त्र देखिये—

१—ऋतधीतिं बृहस्पतिम्॥ ऋग् १०-४७-६

२—ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि॥ ऋग् २-२३-३

३—असि सत्यः ब्रह्मणस्पते॥ ऋग् २-२३-११

४—बृहस्पते ऋतप्रजात॥ ऋग् २-२३-१५

५—ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः॥
ऋग् २-२४-८

६—बृहस्पते या परमापरावदत आ त ऋतस्पृशो निषेदुः॥ ऋग् ४-५०-३

७—प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिः॥ ऋग् ६-७३-१

८—आपुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः॥ ऋग् १०-६८-४

इनका अर्थ क्रम से इस प्रकार है—

१—"ऋत अर्थात् सत्य की धीति धारणा है जिसमें ऐसा ब्राह्मण [बृहस्पतिः] होता है"।

२—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] तुम ऋत के ज्योतिष्मान् रथ में बैठते हो।"

सत्य का जीवन ज्योति का जीवन है। असत्य का जीवन अन्धकार का जीवन है। सत्य का जीवन व्यतीत करना मानो, ज्योति के रथ में बैठकर चलना है और असत्य का जीवन, मानो अन्धकार के छकड़े में चढ़कर चलना है। ब्राह्मण लोग सदा ज्योति के रथ में बैठकर चलते हैं।

३—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते] तुम सत्यरूप [सत्यः] हो।"

सदा सत्य का जीवन व्यतीत करने के कारण मन्त्र में ब्राह्मण को सत्यरूप, सत्य ही कह दिया है। ब्राह्मण को सदा सत्यरूपता का जीवन बिताना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते], तुम ऋत-प्रजात हो।"

जिससे ऋत अर्थात् सत्य उत्पन्न होता हो...उसे ऋत-प्रजात कहते हैं। ब्राह्मण ऋत-प्रजात होता है। उसके जीवन से सत्य प्रादुर्भूत होता है। राष्ट्र में सत्य की धाराएँ ब्राह्मणों के जीवन से ही प्रवाहित होती हैं।

ब्राह्मण की विजय-यात्रा—

५—"[ब्रह्मणस्पतिः] ब्राह्मण [यत्र] जहां [वष्टि] चाहता है [तत्] उसी स्थान को अपने [ऋतज्येन] सत्य की प्रत्यंचा वाले [क्षिप्रेण] शीघ्रता से बाणों को फैंकने वाले [धन्वना] धनुष से [अश्नोति] प्राप्त कर लेता है [तस्य] उस ब्राह्मण के [इषवः] बाण [साध्वीः] कार्य को उत्तमता से सिद्ध करने वाले होते हैं [नृचक्षसः] मनुष्यों के पहिचानने वाले हैं। [कर्णयोनयः[1]] कान उनका स्थान होता है, अर्थात् कान के मार्ग से उनका प्रहार किया जाता है...[याभिः] जिन बाणों के द्वारा वह ब्राह्मण [दृशये] सम्यक् दर्शन के लिए सम्यक् ज्ञान के लिये [अस्यति] प्रहार करता है।"

ब्राह्मण के पास एक ही धनुष है। उसके द्वारा वह जिस प्रदेश को चाहता है जीत लेता है। परन्तु ब्राह्मण का यह धनुष क्षत्रियों के धनुष से निराला है। क्षत्रियों के धनुष की तरह ब्राह्मण का यह धनुष लोहे आदि धातुओं का बना नहीं होता न इसकी प्रत्यंचा, न इसकी डोरी, किसी तांत आदि पदार्थ की बनी होती, प्रत्युत ब्राह्मण के इस धनुष की प्रत्यंचा सत्य की बनी होती है। मन्त्र में केवल प्रत्यंचा के विषय में कहा गया है कि वह सत्य की बनी है। इससे धनुष के अन्य अंगों की कल्पना भी स्वयं कर लेनी चाहिये। मन्त्र में जिस प्रकार का वर्णन है, उसके आधार पम...हम ब्राह्मण में मनुष्यमात्र की कल्याण की पवित्र भावना को उसके धनुष का धनुर्दण्ड कह सकते हैं। ज्ञान-प्रचारार्थं बोलेगये सत्यवचन धनुष से छोड़े जाने वाले बाण हैं। मन्त्र में सत्यवृत्ति को धनुष की प्रत्यंचा कहा ही गया है। ब्राह्मण द्वारा अपने इस धनुष और इन बाणों द्वारा जो प्रदेशों पर प्रदेश विजय किया जाता है उसका उद्देश्य भी मन्त्र में स्पष्ट कर दिया गया है। ब्राह्मण की इस दिग्विजय का उद्देश्य है...दृशि...दृष्टि-दान चक्षु-दान है, लोगों को दिव्य-चक्षु देने की कामना यही उसकी विजययात्रा का एकमात्र उद्देश्य है।

मन्त्र में ब्राह्मण के धनुष का एक विशेषण 'क्षिप्र' दिया गया है। क्षिप्र का एक अर्थ शीघ्रकारी होता है, एक और अर्थ फेंकने वाला भी होता है। हमने दोनों अर्थों को ध्यान में रखकर इसका शब्दार्थ 'शीघ्रता से बाणों को फेंकने वाला' कर दिया है। ब्राह्मण के सत्य की प्रत्यंचा वाले धनुष का यह विशेषण [क्षिप्र] कार्यसिद्धि

---

१. श्रोत्रिणे श्रोत्रेन्द्रियेण ग्राह्या इति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए एक बहुत बड़ी महत्त्वपूर्ण बात की सूचना देता है। वह यह कि...जो ब्राह्मण अपने उद्देश्यों में शीघ्र सफलता चाहते हैं उन्हें सत्य के धनुष को हाथ में लेकर काम करना चाहिये। सत्य का सहारा लेने पर उनके काम बहुत शीघ्रता से सफल होंगे। बिना सत्य का सहारा लिये उन्हें अपने कार्यों में सिद्धि नहीं मिल सकती।

मन्त्र में ब्राह्मण के इस सत्य की डोरी वाले धनुष के द्वारा छोड़े जानेवाले बाणों के भी कुछ विशेषण दिये गये हैं। पहले बाण के वाचक शब्द को ही देखिये। यह शब्द गत्यर्थक ईष अथवा इष धातु से बनता है...क्योंकि बाण चलकर सीधा लक्ष्य पर जाकर लगता है इसलिये उसे इषु कहते हैं। यदि ब्राह्मण किसी प्रदेश के लोगों में जाकर प्रचार करना चाहता है तो उसे सीधा लक्ष्य पर पहुंचना होगा...उन लोगों के अन्दर जाकर सीधा उन्हें अपनी बातें सुनानी होंगी। दूर-दूर रहकर वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता। उसे लोगों में प्रवेश कर उनके साथ घुल-मिल जाना होगा...उनके साथ गहरी समीपता पैदा करनी होगी। तभी वह सफल हो सकेगा। बाण का एक अन्य विशेषण [मन्त्र में] साध्वीः दिया गया है। साध्वीः शब्द के दो अर्थ होते हैं...एक उत्तम, भला, और दूसरा कार्य का साधक। इन दोनों भावों को लेकर हमने इसका शब्दार्थ 'उत्तमता से कार्य को सिद्ध करने वाला' ऐसा कर दिया है। जो ब्राह्मण अपने प्रचार आदि के कार्यों में सफलता चाहते हैं उन्हें उत्तम उपायों का, भले साधनों का प्रयोग करना चाहिये। कुत्सित साधनों का, बुरे तरीकों का, अवलम्बन करने पर उसे सफलता नहीं मिलेगी। असाध्य उपायों से ब्राह्मण को सिद्धि न मिल सकेगी। बाण का एक अन्य विशेषण मन्त्र में 'नृचक्षसः' दिया गया है...मनुष्यों को देखने वाले मनुष्यों को पहिचानने वाले। बाण के इस विशेषण द्वारा ब्राह्मण को एक और उपदेश दिया गया है। वह यह कि...यदि ब्राह्मण अपने प्रचार आदि के कार्यों में सफलता चाहता है तो उसे आदमियों को पहचानने वाला होना चाहिये। ब्राह्मण जिन लोगों में प्रचार करना चाहता है...वे किस स्वभाव के लोग हैं, उनकी प्रवृत्ति कैसी है, उनका रहन-सहन, खान-पान, उनके रीति-रिवाज किस प्रकार के हैं, उनकी रुचि और अरुचियां किस तरह की हैं, इत्यादि...उसे सब बातों का ज्ञान होना चाहिये। एक शब्द में, उसे उन लोगों को पूरी तरह समझने वाला होना चाहिये। तीसरा विशेषण है...'कर्णयोनयः'...'कान जिनके योनि अर्थात् स्थान हैं'। अर्थात् जो कानों पर जाकर लगते हैं। ब्राह्मण जिन लोगों में काम करना चाहता है उसे उन के कानों तक पहुंचना चाहिये। उसे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे लोग उसके पास आकर उसकी बातों को कान देकर सुन सकें। यदि लोग उसकी बातों को किसी भी कारण से कान देकर नहीं सुनते हैं तो उसका सब कहना, उसकी सारी व्याख्यानकला व्यर्थ हो जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि ब्राह्मण इन बातों को ध्यान में रखता हुआ, सत्य का धनुष हाथ में लेकर विजययात्रा के लिये निकलेगा तो वह देशों के पीछे देश जीतता चला जायेगा।

६—"हे ब्राह्मण [बृहस्पते] जो दूर से दूर की स्थिति [परमापरावत्] है वहां से आकर—तुम्हारे सत्य से स्पर्श रखने वाले [ऋतस्पृशः]—अर्थात् सत्ययुक्त-व्यवहार लोगों में बैठते हैं।"

ब्राह्मण जब लोगों के साथ सम्पर्क में आता है तो वह उनके साथ सत्ययुक्त व्यवहार ही करता है। ब्राह्मण में यह जो सत्ययुक्त व्यवहार की वृत्ति आती है वह बहुत दूर स्थान से, अर्थात् हृदय से आती है। ब्राह्मणों के सत्ययुक्त व्यवहार ऊपर-ऊपर के नहीं होते, उनकी जड़ बहुत गहरी होती है — उनका सम्बन्ध हृदय से होता है। इसीलिये उनमें किसी प्रकार की बनावट नहीं होती। उनकी यह स्वाभाविकता लोगों पर प्रभाव डालती है। जिसका परिणाम यह होता है कि वे लोगों के दिलों में बैठ जाते हैं, उनके हृदयों में उनका स्थान हो जाता है।

७—"ब्राह्मण [बृहस्पतिः] सबसे पहला [प्रथमजा] सत्य का रक्षक [ऋतावा] है।"

ब्राह्मण सत्य का रक्षक है। उसका सबसे पहला काम सत्य की रक्षा करना है। और लोग सत्य की रक्षा करें या न करें, ब्राह्मण को तो सत्य की रक्षा सबसे पहले करनी है।

८—"[मधुना] मधु से [आपुषायन्] जगत् को सींचता हुआ [बृहस्पतिः] ब्राह्मण [ऋतस्य] सत्य के [योनिम्] कारण को [अवक्षिपत्] लोगों पर गिरा देता है—[इवा] जिस प्रकार [द्यौः] द्युलोक [उल्काम्] उल्का को गिरा देता है।"

ब्राह्मण सारी धरती को मधु से सींचना चाहता है। वह सब लोगों के जीवनों को मिठास से भरना चाहता है। इस उद्देश्य से वह लोगों में सत्य का संचार करता है। परन्तु सत्य का संचार जीवन में बिना सत्य-ज्ञान के नहीं हो सकता। सम्यक् ज्ञान, सही ज्ञान, सत्य के आचरण का कारण है। इसलिये ब्राह्मण सत्य-आचरण के द्वारा सत्य-ज्ञान को लोगों में फैलाता है। जब लोगों को सत्य-ज्ञान हो जायेगा तो तब उनका आचरण भी सत्य हो जायेगा। और आचरण में, जीवन में, सत्य आ जाने पर सारा जीवन मधुमय-मिठास से भरा हुआ हो जायेगा।

वेद के इन और ऐसे ही अन्य वर्णनों से यह असंदिग्धरूप में सूचित होता है कि ब्राह्मणों को सत्य-परायण होना चाहिये।

ब्राह्मणों को मधुर-भाषी होना चाहिये—

ब्राह्मणों के गुणों और कर्तव्यों के सम्वन्ध में वेद का स्वाध्याय करते हुए एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बात जिसकी ओर पाठक का ध्यान अनायास ही जाता है, वह है मधुर-भाषी होना। इस सम्बन्ध में निम्न मन्त्र देखने योग्य हैं—

१—प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्येतु सूनृता ॥ ऋग् १-४०-३

२—मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिम् ॥ ऋग् १-१९०-१

३—अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसा तृणत्।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥ ऋग् २-२४-४

४—पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ ऋग् ४-५०-१

५—आप्रुषायन् मधुना ॥ ऋग् १०-६८-४

इन का शब्दार्थ क्रम से इस प्रकार है—

१—"ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] हमारे पास आवे और उसके कारण, सत्य और मधुरवाणी [सूनृता] हमारे पास आवे।"

ब्राह्मण सत्य और मधुरवाणी का स्वामी होता है। उसकी संगति से दूसरे लोगों में भी सत्य और मधुरवाणी आ जाती है।

२—"ब्राह्मण [बृहस्पति] मनमोहक वाणी वाला [मन्द्रजिह्वम्[१]] होता है।"

ब्राह्मण अपनी मस्त कर देने वाली मधुर वाणी से सबके चित्तों को वश में कर लेता है।

३—"[ब्रह्मणस्पतिः] ब्राह्मण [मधुधारम्] मधु की धारा वाले [अश्मास्यम्[२]] विस्तृत और निरन्तर बहने वाले [यम्] जिस [अवतम्] झरने को [ओजसा] अपने बल से [अभ्यतृणत्] खोजता है [तम्] उसको [एव] ही [विश्वे] सब [स्वर्दृशः] सुख को देखने (अर्थात् चाहने) वाले लोग [पपिहे] पीते हैं, पुनः वे सब लोग [उद्रिणम्[३]] मधुर जल वाले [उत्सम्] उस झरने को [साकम्] एकसाथ मिलकर [सिसिचुः] सींचते हैं—भरते हैं।"

ब्राह्मण अपने उपदेशों द्वारा मधुरता का एक झरना बहा देता है। यह झरना निरन्तर बहता रहता है और फैलता रहता है। सब चाहने वाले लोग इस झरने के मधुर-रस का खूब पान करते हैं। इसका पान करने से उनकी यह अवस्था हो जाती है कि उनके हृदयों में मधुरता का सरोवर उत्पन्न हो जाता है। और वे अपने आचरणों

---

१. मादकवाचमिति सायणः।

२. अशनवन्तमास्यन्दनवन्तमिति यास्कः। निरु० १०-१३
व्यापनवन्तमासेचनवन्तमिति तस्यार्थं इति सायणः।

३. उदकवन्तमिति सायणः। मानसं वाचिकं च मध्वनोदकपदेनोच्यते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वचनों द्वारा माधुर्य-जल को बहाने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ब्राह्मण ने जो मधुरता का झरना बहाया था वह और अधिक भर जाता है।

४—"मधुरवाणी वाले [मन्द्रजिह्वम्] उस ब्राह्मण को [बृहस्पतिम्] ज्ञानी लोग आगे रखते हैं।"

५—"ब्राह्मण [बृहस्पति] मधु से [मधुना] सब को सींचता है।"

ब्राह्मण में मधु होता है। वह अपने उपदेशों द्वारा सब धरती को उस मधु से सींचता फिरता है।

इन और ऐसे ही अन्य ब्राह्मण-विषयक वेद के वर्णन से यह असंदिग्ध रूप से सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों को मधुर-भाषी होना चाहिये।

ब्राह्मणों को तपस्वी होना चाहिये—

ब्राह्मणों को तपस्वी होना चाहिये यह बात भी वेद का अध्ययन करते हुए अनेक स्थानों पर वर्णित हुई मिलती है। जैसे कि—

१—ऋषीनार्षेयाँस्तपसोधि जातान्॥ अथर्व ११-१-२६

२—तपुर्मूर्धा॥ ऋग् १०-१८२-३

३—अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम्॥ अथर्व ५-१८-६

[१] "जो ज्ञानी हैं, ज्ञानियों से सम्बन्ध रखते हैं और ज्ञानियों में प्रसिद्ध हैं, जो तप से उत्पन्न हुए हैं, ऐसे ब्राह्मणों को मैं बुलाता हूं।" [२] ब्राह्मण [बृहस्पति] तपु अर्थात् तप करनेवाला है।" [३] "ब्राह्मण लोग तप और सात्त्विक क्रोध [मन्यु] से पीछा करके [अनुह्य] शत्रु को दूर से ही छेद डालते हैं [एनं भिन्दन्ति]"।

ब्राह्मण तप से उत्पन्न होते हैं। उनका सिर, उनका मस्तिष्क, सदा तप में निरत रहता है। तपस्या का जीवन बिताने के विचार ही सदा उनके मस्तिष्क में रहते हैं। तप का अर्थ होता है—धर्मरक्षार्थ सदा कष्ट सहने के लिये तत्पर रहना। ब्राह्मण लोग इस प्रकार के तपोमय जीवन के धनी होते हैं। उनका सारा जीवन तपस्या का जीवन रहता है। इस तपस्या के बल पर ही वे अपने सब शत्रुओं को जीत लेते हैं। उनकी तपस्या किसी विरोधी को खड़ा नहीं होने देती।

वेद के इस प्रकार के वर्णनों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों को सदा तपस्वी रहना चाहिये।

ब्राह्मणों को मेधावी होना चाहिये—

ऊपर हम देख चुके हैं कि ब्राह्मणों को भांति-भांति की विद्याओं का ज्ञाता होना चाहिये। परन्तु विविध विद्याओं का ज्ञाता होना ही ब्राह्मण के लिये पर्याप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। विविध विद्या-विज्ञानों की विद्वत्ता के साथ उनमें स्वाभाविक बुद्धि भी होनी चाहिये। यह हमें वेद का अध्ययन करते हुए अनेक स्थलों में स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है। उदाहरण के लिये निम्न मन्त्र देखिये—

१—सुमेधां बृहस्पतिम् ॥ ऋग् १०-४७-६

२ - बृहस्पतिं सुमेधसम् ॥ ऋग् १०-६५-१०

इन दोनों मन्त्रों में ब्राह्मण [बृहस्पति] को सुमेधाः कहा गया है। मेधा [धारणावती] उत्कृष्ट बुद्धि को कहते हैं। जिसमें मेधा हो, उत्तम बुद्धि हो, वह सुमेधा कहलायेगा। ब्राह्मणो में उत्तम मेधा-शक्ति होनी चाहिये। यह इन और ऐसे ही अन्य मन्त्रों से स्पष्ट प्रकट होता है।

ब्राह्मणों को तेजस्वी होना चाहिये—

ब्राह्मणों को तेजस्वी होना चाहिये, यह भी वेद के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ निम्न मन्त्रों को देखिये—

१—ब्राह्मणासः......घर्मिणः। ऋग् ७-१०३-८

२—त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या ॥ अथर्व ६-३८-१

३—बृहस्पतिम्......आदीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥ ऋग् ५-४३-१२

४—तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ॥ ऋग् २-२३-१४

अर्थात् (१) 'ब्राह्मण लोग धर्म-तेजवाले होते हैं।' (२) 'जो तेज [त्विषि] अग्नि में, ब्राह्मण में और सूर्य में होता है।' (३) 'जो तेज से दीप्त हो रहा है [आदीदिवांसम्] जिसकी कान्ति सुवर्ण की तरह हितकारी और रमणीय है [हिरण्यवर्णम्] ऐसे ब्राह्मण को [बृहस्पतिम्] हम परिचर्या करते हैं [सपेम]।' (४) 'हे ब्राह्मण ! [ब्रह्मणस्पति], तुम अपनी अति तेजस्विनी, [तेजिष्ठया] तापकारिणी शक्ति से [तपनी] राक्षसी पुरुषों को तपाओ।'

ब्राह्मण में तेज होना चाहिये। जैसा तेज अग्नि, सूर्य और सुवर्ण में होता है, वैसा ही तेज कि जिस तेज के आगे दुष्टवृत्ति के लोग खड़े न रह सकें। ब्राह्मण में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का तेज रहना चाहिये। पुरुष में दूसरों पर अपना प्रभाव डाल सकने की, दूसरों को अपना व्यक्तित्व अनुभव करा सकने की जो विशेष शक्ति होती है, उसे तेज कहते हैं। जिन में यह तेज-शक्ति होती है, उन्हें कोई दबा नहीं सकता। ब्राह्मणों को ऐसा दुर्धर्ष तेजस्वी होना चाहिये कि उन्हें कोई दबा न सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणों का शरीर बलिष्ठ होना चाहिये—

ऋग्वेद के १-४०-२ में ब्रह्मणस्पति को "सहसस्पुत्र" कहा है। 'सहः' बल को कहते हैं। पुत्र शब्द का प्रयोग अतिशय को बताने के लिये हुआ है। सहसस्पुत्र का शब्दार्थ होता है—बल का पुत्र, जो बल का पुत्र होगा वह स्वयं अति-बली होगा। इसलिये सहसस्पुत्र का सीधा अर्थ हो जाता है—अतिशय बलवान्। ब्रह्मणस्पति के इस विशेषण से यह स्पष्ट परिणाम निकलता है, कि ब्राह्मणों का शरीर उनके मन और आत्मा की भांति अत्यन्त बलिष्ठ होना चाहिये। दुर्बल शरीर में मस्तिष्क भी दुर्बल हो जाता है। अतः ब्राह्मणों को अपने शरीर को भी बलिष्ठ बनाना चाहिये।

ब्राह्मणों को सरल स्वभाव का होना चाहिये—

ऋग्वेद २-२६-१ में ब्राह्मण को ऋजु कहा गया है—

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतः।

इस मन्त्र-खण्ड का शब्दार्थ इस प्रकार है —

[शंसः] उत्तम बातों का शंसन अर्थात् उपदेश करने वाला [ब्रह्मणस्पतिः] ब्राह्मण [ऋजुः] कपट-रहित=सरल रहता हुआ [इत्] ही [वनुष्यतः] हिंसा करने वाले शत्रुओं की [वनवत्] हिंसा कर देता है।

मन्त्र में ब्रह्मणस्पति पद नहीं आया है, लेकिन सारे सूक्त में ब्रह्मणस्पति का वर्णन है। इसलिये प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ करते हुए ब्रह्मणस्पति पद का अध्याहार कर लेना होता है। वेद-विद्या का अधिपति ब्राह्मण (ब्रह्मणस्पति) 'शंस' होता है— वह सदा ही लोगों के आगे उत्तम बातों का शंसन करता है। उन्हें सदा ही इन्हीं बातों का उपदेश करता है। कई लोग उसके सत्योपदेशों से चिढ़कर उसके साथ कुटिलता का, धूर्त्तता का, व्यवहार करने लगते हैं। और इस प्रकार कुटिलता का सहारा लेकर, वे उसकी हिंसा करना चाहते हैं। उसे कष्ट देना चाहते हैं। ब्राह्मण, उनकी कुटिलता के सामने भी, कुटिलता का ग्रहण न करके ऋजु ही बना रहता है—सरल ही बना रहता है। वह अपने ऋजु-व्यवहार से, सरल व्यवहार से अपने हिंसकों को, अपने विरोधियों को निरस्त्र कर देता है, जीत लेता है।

मन्त्र में ब्राह्मण (ब्रह्मणस्पति) के लिये प्रयुक्त इस 'ऋजु' विशेषण से यह स्पष्ट सूचित होता है कि ब्राह्मणों का जीवन सदा ऋजुता का, सरलता का, होना चाहिये।

ब्राह्मणों को अहिंसा-परायण होना चाहिये—

वेद के अध्ययन से ब्राह्मणों के सम्बन्ध में एक यह भी बात ज्ञात होती है कि उन्हें अहिंसा-परायण होना चाहिये। उन्हें कभी किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना चाहिये। जो लोग उनके साथ द्वेष करें उन्हें भी ब्राह्मण को अपने प्रेम और उपकार के जीवन से जीत लेना चाहिये। इस सम्बन्ध में निम्न मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

१—बृहस्पतिम्......अरुषम्। ऋग् ५-४३-१२
२—अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिम्। ऋग् १-१९०-१
३—बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम। ऋग् ७-९७-५
४—बृहस्पते चयस इत्पियारुम्॥ ऋग् १-१९०-५
५—असि सत्यं ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीढुहर्षिणः॥ ऋग् २-२३-११
६—विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नः साम्नः कविः।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि॥ ऋग् २-२३-१७
७—बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म॥ ऋग् १०-१८२-१

इन मन्त्रों का अर्थ क्रम से इस प्रकार है—

१—"ब्राह्मण [बृहस्पति] अहिंसक [अरुषम्[1]] होता है।" २—"ब्राह्मण [बृहस्पति] अहिंसक [अनर्वा[2]] होता है, मंगलों की वर्षा करने वाला होता है, मधुर वाणी बोलने वाला होता है।" ३—"ब्राह्मण [बृहस्पति] जो कि अहिंसक [अनर्वा] है उसे हम बुलाते हैं।" ४—"हे ब्राह्मण [बृहस्पते], जो हिंसक [पियारुम्[3]] है उसके पास भी तुम उस पर कृपा करने के लिये पहुंचते हो [चयसे[4]]।" ५—"[ब्रह्मणस्पते] हे ब्राह्मण! तुम सदा [सत्यः] सत्ययुक्त [असि] रहते हो, [वीढुहर्षिणः] दृढ़ता के कामों में हर्ष मनाने वाले, [उग्रस्य] उग्र कर्म करने वाले को भी (ऋणया) अपने उपकारों के ऋण से [दमिता] वशवर्ती कर लेते हो।"

जो लोग सदा दृढता के, कठोरता के कामों में हर्ष मनाते हैं, सबके साथ सदा कठोरता और क्रूरता का ही आचरण करते हैं—ऐसे उग्रवृत्ति लोगों को भी ब्राह्मण अपने ऋण से, अपने उपकारों से—दमन कर देता है। अपने उग्रकर्मा विरोधी को भी उसके साथ उपकार करके—उस पर उपकारों का ऋण चढ़ाकर उसके चित्त में परिवर्तन लाकर-ब्राह्मण शान्त कर देता है। क्योंकि ब्राह्मण, जैसा कि ऊपर के मन्त्रों में कहा गया है, अहिंसक है—इसलिये वह अपने शत्रुओं पर क्रोध नहीं करता। वह (उद्धृत

१. रुष हिंसायाम्। रोषतीति रुट्। न रुट् अरुट्, तम् अरुषमहिंसकम्।
२. अर्व हिंसायाम्। अर्वति हिनस्तीति अर्वा। अन्येभ्यो दृश्यते इति वनिम्। न अर्वा अनर्वा तमनर्वाणम् अहिंसकम्।
३. पियारुं हिंसकम् पीयते हिंसाकर्मण इदं रूपमिति सायणः।
४. चयसे गच्छस्येवानुग्रहीतुमिति सायणः। चय गतौ।
५. ऋणया ऋणेन। सुपां सुलुगिति विभक्तेर्या॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग् १।१६०।५ मन्त्र के अनुसार) अपने को कष्ट पहुंचाने वाले शत्रुओं के पास भी उन पर कृपा करने के लिये पहुंच जाता है। इस प्रकार (विरोधियों के साथ भी निरन्तर उपकार करते रहने का परिणाम यह होता है कि) एक समय आता है जब कि वे विरोधी उसके विरोधी नहीं रहते।

ब्राह्मण का शत्रुओं को जीतने का निराला प्रकार और उसकी रचना का उपादान सोमतत्त्व—

६—"हे ब्राह्मण [कविः] क्रान्तदर्शी ज्ञानी! [त्वष्टा] सबको बनाने वाले परमात्मा ने [विश्वेभ्यः] सब [भुवनेभ्यः] लोकों [परि] से [साम्नः] सारे साम को लेकर उससे [त्वा] तुझ को [अजीजनत्] उत्पन्न किया है। [सः] वह [ब्रह्मणस्पतिः] तू ब्राह्मण [ऋणचित्] ऋणों को चिन देने वाला है—उपकारों का ढेर लगा देने वाला है, [ऋणया] अपने उपकारों के ऋण से [द्रुहः] द्रोह करने वाले विरोधी का [अन्ता] मारने वाला है [महः] महान् [ऋतस्य] सत्य के [धर्तरि] धारण करने वाले परमात्मा में तुम्हारी चित्तवृत्तियाँ लगी रहती हैं।"

सत्य महान् है। उस महान् सत्य का सबसे बड़ा धारण करने वाला परमात्मा है। ब्राह्मण की चित्तवृत्ति सदा सत्य के महान् धारण करने वाले परमात्मा में लगी रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि ब्राह्मण को भी सत्य से प्रेम हो जाता है। वह भी अपने भीतर सत्य को धारण कर लेता है। जब उसकी वृत्तियों का एकमात्र आधार सत्य के कर्ता परमात्मा हैं, तो ब्राह्मण को भी सत्यधर्ता होना नितान्त आवश्यक है। भगवान् के प्रेमी में भगवान् के गुण आकर ही रहेंगे। जब ब्राह्मण सत्य का धर्ता बन गया, उसके मन, वचन, और कर्म से सत्य ही प्रवाहित होगा। वह स्वयं भी सत्य का आचरण करेगा, और लोगों को भी सत्य पर चलने की प्रेरणा करेगा। वह लोगों को सच्ची बात, खरी बात सुनायेगा। वह सत्य के प्रचार से टलेगा नहीं। उसकी सच्ची बातों को सुनकर बहुत से नासमझ उसके विरोधी हो जायेंगे, उससे द्रोह और द्वेष करने लगेंगे। तरह-तरह से उसे कष्ट पहुंचाने लगेंगे। ब्राह्मण अपने इन प्रति-कर्त्ताओं को (अपने इन विरोधियों को) मारदेगा—उन्हें रहने नहीं देगा। परन्तु उस का अपने विरोधियों को मारने का प्रकार निराला होगा। वह प्रकृत्या ऋणचित् है। लोगों पर अपने उपकार के ऋणों की ढेरियें लगा देने वाला है—उन्हें अपने उपकारों के भार से दबा देने वाला है। इसलिये वह अपने विरोधियों पर भी, अपने से द्रोह करने वालों पर भी, उपकार के ऋण चढ़ा देता है। विरोधी उसका अपकार करते चले जाते हैं, वह बदले में उनके साथ उपकार करता चला जाता है। इसका परिणाम यह होता है, कि एक दिन उसके विरोधी सोचने के लिये बाधित हो जाते हैं कि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो, वैसा व्यक्ति नहीं है कि जैसा हम समझे हुए थे हम भी अब तक भूल में थे, जो इसे बुरा समझ रहे थे। यह तो जो बातें कह रहा था, सच्ची थीं और हमारे हित के लिये कही जा रही थीं। हमने इसकी बातों को सुनकर इसके साथ द्वेष करके बहुत बुरा किया। हमसे बहुत भूल हुई। ज्यों ही उनके मन में इस प्रकार के विचार उठने लगते हैं, उन्हें पश्चात्ताप होता है : वे उसके साथ विरोध, द्रोह और वैर करना छोड़ देते हैं, वे अब उसके साथ प्रीति करने लगते हैं। जब ब्राह्मण के शत्रु उससे प्रीति करने लग गये, तो उसके शत्रु मानो आप ही मर गये उसे रक्त का एक बूंद न गिराना पड़ा, और उसके शत्रुओं का संहार हो गया। इस निराली विधि से ब्राह्मण अपने शत्रुओं को मारता है।

भला ब्राह्मण में यह शक्ति कहाँ से आ गई कि लोग उसके साथ द्रोह करें, द्वेष करें और वह उनके साथ उपकार करके उन पर ऋणों के ढेर लादता जाये? ब्राह्मण के इस विचित्र आचरण का कारण यह है कि उसके रचयिता परमात्मा ने उसकी रचना संसार के और सब प्राणियों से भिन्न प्रकार से की है। अन्य प्राणी तो हाड़, मांस और लहू से बनाये गये हैं, ब्राह्मण 'साम' से बनाया गया है। त्रिभुवन में जितना भी 'साम' तत्त्व था, उसे परमात्मा ने एकत्र कर लिया और उससे उसने ब्राह्मण की रचना की।

'साम' का एक अर्थ शान्ति होता है। संसार में जहाँ-कहीं भी शान्ति का तत्त्व है, संसार के जिस पदार्थ में भी शान्ति देने का गुण पाया जाता है, वहीं से उसे भगवान् ने संग्रह किया और उससे ब्राह्मण की रचना की। साम का एक अर्थ संगीत भी होता है। ऋग्वेद के मन्त्रों को जब संगीत की रीति से गाया जाता है तो वे साम कहलाने लगते हैं। संगीत में जो शान्ति और प्रेम का संचार कर देने की शक्ति है, उसे प्रत्येक संगीत-प्रेमी सहृदय जानता है। त्रिलोकी में जहाँ-कहीं भी संगीत का तत्त्व है, भगवान् ने उसका संग्रह किया और उससे ब्राह्मण की रचना की। साम का एक अर्थ वेद के मन्त्र, सम्पूर्ण वेद, भी किया जा सकता है। क्योंकि वेद के मन्त्रों को ही जब विशेष रीति से गाया जाता है तो वे साम हो जाते हैं। इसलिये संगीतारूढ सारे वेद को ही साम कहा जा सकता है। साम से प्रभु ने ब्राह्मण को बनाया है। वेद के मन्त्रों में जो ज्ञान भरा है उससे ब्राह्मण की रचना की गई है। वेद के एक-एक मन्त्र में जो ज्ञान पाया जाता है, उसे ब्राह्मण सीखता है और, उसके अनुसार, अपना क्रियात्मक जीवन ढालता है—तब जाकर कहीं ब्राह्मण 'ब्राह्मण' बनता है।

वेद के गम्भीर अध्ययन और तदनुकूल आचरण से ब्राह्मण को अनुभव हो जाता है कि जो उसके शत्रु कहलाते हैं वे वास्तव में उसके शत्रु नहीं हैं। वे उससे इसलिये शत्रुता नहीं करते कि उससे शत्रुता करना चाहते हैं—वे उससे इसलिये शत्रुता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं कि वे नासमझ हैं (उन्हें वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो सका है। उन्होंने स्थिति को पूरी तरह समझा नहीं है। यदि वे वस्तुस्थिति को पूरी तरह समझ गये होते तो वे उससे कभी शत्रुता न करते)। उसे बोध हो जाता है कि शत्रुता का असली कारण आदमी का बुरा होना नहीं है, उसका असली कारण वस्तुस्थिति को पूरी तरह न समझ पाना है। भला जो नासमझी से द्वेष कर बैठते हैं, उन से प्रति-द्वेष कैसा? उनके साथ तो प्रेमवृत्ति रखकर ही उनके हृदयों के समीप पहुंचना होगा, और उनके हृदयों के समीप पहुंचकर उनका अज्ञान दूर करना होगा। जब उनका अज्ञान दूर हो जायेगा तो वे स्वतः ही ब्राह्मण से द्वेष करना छोड़ देंगे। वेद के अध्ययन से प्राप्त होने वाले इस प्रकार के ज्ञान से ब्राह्मण की रचना हुई है। जो ब्राह्मण संसारभर के शान्ति-तत्त्व और संगीत-तत्त्व से बनाया गया है, जिस ब्राह्मण की रचना वेद के तत्त्व-ज्ञान से हुई है—उसके लिये अपने विरोधियों के साथ भी उपकार का आचरण करना भला कौन बड़ी बात है?

वेद ने अपने अलौकिक कवितामय ढंग में यह बता दिया—कि ब्राह्मण के जीवन का आदर्श क्या है, ब्राह्मण को अपना जीवन किस दिशा में ढालना चाहिये। पूर्ण अहिंसा-परायण होकर ब्राह्मण को अपने शत्रुओं को भी प्रेम और उपकार के द्वारा जीतना चाहिये। ब्राह्मण-विधि से प्राप्त की हुई शत्रुओं की विजय ही वास्तविक और पूर्ण विजय होती है। विजय के अन्य सभी प्रकार अधूरे हैं। अन्य विधियों से जीताहुआ शत्रु, जीता जाकर भी शत्रु ही रहता है, ब्राह्मण-विधि से जीताहुआ शत्रु जीता जाकर शत्रु नहीं रहता, मित्र बन जाता है।

७—"ब्राह्मण [बृहस्पति] को चाहिये कि वह अपने प्रति पाप की शसना पाप की इच्छा, करने वाले व्यक्ति के लिये भी [अघशंसाय] ज्ञान को ही [मन्म] प्राप्त कराये [नेषत्]।"

जो लोग ब्राह्मण के साथ पाप करना चाहते हैं, उसके साथ अनिष्ट करना चाहते हैं, ब्राह्मण को उनके साथ मधुर-व्यवहार ही करना होगा, उन्हें समझाना होगा। क्योंकि उनके पाप का कारण उनकी नासमझी है। जो ज्ञानी होता है, वह पाप नहीं करता। ब्राह्मण को संसार से पाप का नाश करना है फिर चाहे अपने साथ होने वाला पाप हो अथवा अन्यों के साथ होने वाले पाप, यह कार्य उन से द्वेष करके, उनसे अलग रहकर, कदापि नहीं किया जा सकता। उनके पास पहुंचकर, उन्हें ज्ञान देकर करना होगा। उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत कराना होगा। यह तभी सम्भव है कि जब पापियों के पास पहुंचा जाए। उनसे प्रेम किया जाये, जिससे कि वे पापवृत्ति को ही छोड़दें, पापवृत्ति को मारना उद्देश्य है, पापी को नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद के इन और ऐसे ही ब्राह्मण-विषयक वर्णनों से यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों का जीवन अहिंसा-परायण होना चाहिये—उन्हें न केवल स्वयं ही किसी प्रकार का कष्ट देना चाहिये, प्रत्युत जो लोग उससे विरोध करते हैं, उससे द्वेष करते हैं, उनके साथ भी प्रेम और भलाई का व्यवहार करना चाहिये।

ब्राह्मण सब प्रकार से पवित्र रहे—

वेद के अध्ययन से यह भी प्रकट होता है कि ब्राह्मण को सब प्रकार से पवित्र रहना चाहिये। उदाहरणार्थ निम्न मन्त्र-खण्ड देखिये—

ऋग् ७-९७-५
१—शुचिक्रन्दं......बृहस्पतिम् ॥

ऋग् ७-९७-७
२—स हि शुचिः...स शुन्ध्युर्...बृहस्पतिः ॥

इन का शब्दार्थ इस प्रकार है—

१—"ब्राह्मण [बृहस्पतिम्] पवित्र शब्द वाला [शुचिक्रन्दम्] है।"

२—"वह ब्राह्मण [बृहस्पतिः] पवित्र [शुचिः] और पवित्र बनाने वाला [शुन्ध्युः] है।"

ब्राह्मण के शब्द पवित्र होने चाहियें। उसे पवित्र भावना से पवित्र वाणी का ही प्रयोग करना चाहिये। वाणी को अन्य सब इन्द्रियों का उपलक्षण समझकर अपनी सभी इन्द्रियों का प्रयोग पवित्र भावना तथा पवित्र रीति से करना चाहिये। मन्त्र-२ में तो ब्राह्मण को ही शुचि अर्थात् पवित्र कह दिया गया है। ब्राह्मण का सर्वस्व ही पवित्र होना चाहिये। उसका बाह्य और आभ्यन्तर दोनों, पवित्र होने चाहियें उस का शरीर, और उसके मन और आत्मा, सभी पवित्र होने चाहियें। उसके साथ जड़ और चेतन जिन भी वस्तुओं का सम्बन्ध है, वे सब पवित्र रहनी चाहियें। पूर्णतः पवित्र रहने वाला ब्राह्मण ही संसार को पवित्र करने वाला (शुन्ध्यु) बन सकता है। जो स्वयं पवित्र है वही औरों को पवित्र कर सकता है।

ब्राह्मण सत्य-पथ का नेता—

ब्राह्मणों का एक कर्तव्य यह भी है कि वे जनता को सुनीति सिखाते रहें—उसे सन्मार्ग पर चलाते रहें। इस सम्बन्ध में निम्न मन्त्र देखिये—

ऋग् २-२३-४
१—सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनम् ॥

ऋग् २-२३-६
२—त्वं नो गोपाः पथिकृद् विचक्षणः ॥

ऋग् २-२३-७
३—सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥

इन का अर्थ क्रम से इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—'हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते], तुम जनता को [जनम्] सुनीतियों से [सुनीतिभिः] चलाते हो और उसकी रक्षा करते हो।"

२—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते], तुम रक्षा करने वाले हो, मार्गों का (आदर्शों का) निर्माण करने वाले [पथिकृत्] हो, बड़े बुद्धिमान हो।"

३—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते], तुम हमारे लिये—इस देवपुरुषों के योग्य सुख-भोग की प्राप्ति के लिये [देववीतये] गन्तव्य मार्ग को सुगम [सुगम्] कर दो।"

ब्राह्मण बड़ा विचक्षण होता है—प्रत्येक बात को समझनेवाला, बुद्धिमान् होता है। वह लोगों को उत्तम नीतियों की शिक्षा देता है। इससे लोगों का जीवन-मार्ग सरल हो जाता है। लोग उत्तम नीति से परिष्कृत मार्ग पर सुखपूर्वक चलते हैं। उस पर चलने से उन्हें सब प्रकार के उत्तम सुखभोग, देवपुरुषों के योग्य सुख-सम्भार प्राप्त होते हैं। दुःखों और कष्टों से उनके जीवनों की रक्षा हो जाती है।

ब्राह्मण सबका मंगल चाहे—

ब्राह्मणों का यह भी कर्तव्य है कि वे भांति-भांति से प्रजाओं का मंगल करते रहें। इस विषय में वेद के निम्न मन्त्र देखिये—

१—यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः ।। ऋग् १-१८-२

२—तमिद् वोचेमा विदथेषु शम्भुवम् ।। ऋग् १-४०-६

३—आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ।। ऋग् २-२३-१

४—न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ।।
ऋग् २-२३-५

५—त्रातार त्वा तनूनां हवामहे ।। ऋग् २-२३-८

६—त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ।।
ऋग् २-२३-६

७—त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयः ।। ऋग् २-२३-१०

८—सनिता धनं धनम् ।। ऋग् २-२३-१३

९—विप्रो भरते मती धना ।। ऋग् २-२४-१३

१०—तोकं च तस्य तनयं वर्धते यं यं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ।। ऋग् २-२५-२

११—सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।। ऋग् ७-९७-३

१२—देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वमारिरेच ।। अथर्व १८-३-४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका अर्थ क्रम से इस प्रकार है—

१—"जो ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] रोगों को मारनेवाला है, [अमीवहा] जो धन प्राप्त करनेवाला है, और जो लोगों की पुष्टि को बढ़ानेवाला है।"

२—"जो सुखों को उत्पन्न करके देनेवाला [शम्भुवम्] है ऐसे उस ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] का ही हम ज्ञान-यज्ञों में [विदथेषु] बखान करें।"

३—"हमारी प्रार्थनाओं को सुनतेहुए हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] तुम अपनी रक्षाओं के साथ [ऊतिभिः] हमारे स्थानों में [सादनं] आकर बैठो।"

४—"हे [ब्रह्मणस्पते] ब्राह्मण [सुगोपाः] उत्तम रक्षा करनेवाले तुम [यं] जिसकी [रक्षसि] रक्षा करते हो [तं] उसको [न] न [अंहः] रोग [न] न [दुरितं] पाप [कुतश्चन] कहीं से प्राप्त होता है, और [न] न ही उसको [अरातयः] शत्रु [तितिरुः[1]] मारते हैं [न] और न ही [द्वयाविनः] मन में कुछ और ऊपर से कुछ और इस प्रकार दुहरा बरताव करने वाले छलिया लोग उसे कहीं से प्राप्त होते हैं। [अस्मात्] इस पुरुष से [विश्वाः] सारी [इत्] ही [ध्वरसः] हिंसक शक्तियों को [वि बाधसे] रोककर परे कर देते हो।"

५—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते], तुम हमारे शरीरों की रक्षा करनेवाले हो। तुम्हें हम बुलाते हैं।"

६—"[ब्रह्मणस्पते] हे ब्राह्मण [सुवृधा] अच्छी प्रकार लोगों की वृद्धि करनेवाले [त्वया] तुम्हारे द्वारा [वयं] हम [मनुष्याः] मनुष्य [स्पार्हा] चाहने योग्य [वसु] धनों को [आ ददीमहि] प्राप्त करें [याः] जो [नः] हमारे [दूरे] दूर [याः] जो [तडितः[2]] समीप [अरातयः] शत्रु [अभिसन्ति] हमारा पराभव करते हैं, [ताः] उन [अनप्नसः] कर्महीन बुरे कर्म करनेवाले शत्रुओं को [जम्भय] नष्ट कर दो।"

७—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते], उत्तम रीति से लोगों की वृद्धि करने वाले [सुवृधा] तुम्हारे द्वारा हम उत्तम आयु [वयः] को अथवा उत्तम अन्न [वयः] को धारण करते हैं।"

८—"हे ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पते] तुम प्रत्येक प्रकार के धन को [धनं धनं] को देनेवाले हो।"

९—"ज्ञानी ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] अपनी बुद्धि से [मती] धनों को धारण करता है।"

---

१. तिरते हिंसाकर्मणः रूपम्।

२. तडित इति अन्तिकनाम। निघं० २-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—"ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पति] जिस-जिस को अपना मित्र [युजं] बना लेता है, उसके पुत्र [तनयं] और पौत्र [तोकं] बढ़ते हैं।

११—'मैं उत्तम सुख देनेवाले [सुशेवं] ब्राह्मण [ब्रह्मणस्पतिम्] की स्तुति करता हूं [गृणीषे[1]]।"

१२—"ब्राह्मण ने [देवेभ्यः] तत्त्वज्ञानी विद्वान्पुरुषों के लिये [कं] किस [मृत्युं] मृत्यु को [अवृणीत] वरण किया है ? अर्थात् किसी भी मृत्यु को नहीं वरण किया है। [प्रजायै] प्रजाओं के लिये [किम्] किस [अमृतम्] अमृत को [न] नहीं [अवृणीत] वरण किया है ? अर्थात् (मृत्यु को रोकने और अमृत को देने के लिये) सभी अमृतों को वरण किया है। [ऋषिः] अतीन्द्रियार्थों को भी जानने वाला ब्राह्मण [यज्ञं] यज्ञ का [अतनुत] विस्तार करता है। (ब्राह्मण और उसके द्वारा विस्तारित यज्ञों द्वारा सबको अमृत पिलाये जाने पर भी) [यमः] सबको वश में रखने वाला परमात्मा [प्रियाम्] हमारे प्यारे शरीरों को [आरिरेच] जीवन से खाली कर देता है...हमें मार देता है।"

ब्राह्मण सब प्रकार का मंगल-दाता—

ब्राह्मण अनेक प्रकार से लोगों को मंगल प्रदान करता है। वह लोगों के रोगों को दूर करता है, उनकी पुष्टियों को बढ़ाता है अर्थात् उन्हें तरह-तरह से पुष्ट करता है। उनकी सुख-शान्ति की वृद्धि करता है। भांति-भांति के उपायों से जनता की रक्षा करने के लिये उनके पास पहुंचता है। जनता में पाप नहीं फैलने देता और इस प्रकार पाप से, दुराचरण से—होने वाले रोगों से जनता की रक्षा करता है। हिंसक-शत्रुओं और छली लोगों से लोगों को बचाता है। जितने प्रकार के भी कष्ट और हिंसायें लोगों को प्राप्त हो सकती हैं उन सबको वह रोककर उनसे दूर रखने की कोशिश करता है। जनता के स्वास्थ्य और नीरोगता की वह चिन्ता रखता है। जनता की सब प्रकार से उत्तम वृद्धि करना उसका उद्देश्य है; वह सदा इसे ध्यान में रखता है। लोगों को यह स्पृहा करने योग्य, चाहने योग्य धन-प्राप्ति के उपाय बताता है और इस विधि से वह लोगों को धन प्रदान करता है। वह दूर और समीप के शत्रुओं से प्रजा के लोगों को सावधान रखता है और उनसे बचने और उनको नष्ट करने के उपाय उन्हें बताता है। वह जनता को आयु बढ़ाने के उपाय बताता है। उत्तम अन्न प्राप्त करने और उसका उपयोग करने के ठीक साधनों का उपदेश जनता में करता है। एक दो प्रकार के नहीं, जितने प्रकार के भी धन हो सकते हैं, उनकी प्राप्ति के उपाय जनता को बताता है, और इस भांति वह सब प्रकार के धन जनता में बांटता

---

१. गृणे स्तुवे इति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस वाक्य (ऋग् २-२३-१२) से यह भी ध्वनित होता है कि ब्राह्मण के पास जितना भी निजी धन होता है उसे वह आवश्यकता पड़ने पर लोगों में बांट देता है। वह लोगों को मति अर्थात् विचारशील बुद्धि दे देता है जिससे लोग मनोवांछित धन प्राप्त कर लेते हैं। ब्राह्मण का जिसके साथ मेल हो जाता है उसके घर में पुत्र और पौत्र खूब बढ़ते हैं, क्योंकि वह उत्तम सन्तान निर्माण की विद्या उसे बता देता है। ब्राह्मण सुशेव होता है। वह जनता को उत्तमोत्तम शिवों, सुखों और मंगलों का प्रदान करता रहता है। वह सदा ही प्रजाओं को कोई न कोई शिव=कल्याण बांटता रहता है।

ऊपर उद्धृत १२ वें मन्त्र में ब्राह्मण द्वारा प्राप्त होने वाले सभी मंगलों की ओर निर्देश कर दिया गया है। मन्त्र के पूर्वार्द्ध में दो प्रश्न पूछे गये हैं, जिनके द्वारा ब्राह्मण के मंगल-प्रदान पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला गया है। देव-पुरुषों के लिये ब्राह्मण ने कौन सी मृत्यु का वरण किया है? अर्थात्—जो लोग, ब्राह्मण के उपदेशानुसार अपने जीवन को ढालकर, अपने-आप को देवपुरुष बना लेते हैं, उनके लिये कोई भी मृत्यु नहीं रह जाती (ऐसे लोगों के लिये ब्राह्मण किसी भी मृत्यु का वरण नहीं करता)। फिर दूसरे प्रश्न में पूछा है—प्रजा के लिये ब्राह्मण ने कौन-सा अमृत वरण नहीं किया? अर्थात्—प्रजा के लिये ब्राह्मण तो सब अमृत ही अमृत वरण करता है। कोई भी अमृत ऐसा नहीं है जिसे ब्राह्मण प्रजा के लिये वरण करके न लाता हो—जिससे प्रजा के लोग देव बन जाते हैं, किसी भी प्रकार की मृत्यु उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं देती जिससे प्रजा को अमृत ही अमृत, सुख ही सुख प्राप्त होता है, उस उपाय की ओर भी मन्त्र के तीसरे चरण में निर्देश है—कि प्रजाओं को मृत्युओं से बचाने और उन्हें अमृत पिलाने के लिये ब्राह्मण यज्ञ का विस्तार करता है। ब्राह्मण प्रजाओं के जीवन को यज्ञिय बना देता है। जिनका जीवन यज्ञिय बन गया, उन्हें मृत्यु नहीं पकड़ सकती—वे तो सदा अमृत में निवास करते हैं। मन्त्र के अन्तिम चरण में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही है। वह यह कि एक समय आता है कि जब यम=सब का नियन्ता—परमात्मा मनुष्य के प्रिय शरीर को जीवन से खाली कर देता है, समय आता है कि जब आत्मा को शरीर से अलग हो जाना पड़ता है—अर्थात् व्यक्ति को मरना ही पड़ता है। इस आत्म-शरीर-वियोग रूप मृत्यु से तो संसार का कोई भी प्राणी बच नहीं सकता आत्मा और शरीर का कभी वियोग न हो, इस प्रकार के अमृतत्व की तो कभी आशा ही नहीं रखनी चाहिये। वेद के इसी आशय को ध्यान में रखकर महर्षि याज्ञवल्क्य ने शतपथ ब्राह्मण में कहा है—"नाऽमृतत्वस्याशास्ति, सर्वमायुरेति आस्तर्यो हैव भवति," (शतपथ २-२-८,१४), अर्थात्—"अमृतत्व की आशा नहीं है, यही अमरपन है कि सारी आयु को प्राप्त करता है अहिंसनीय हो जाता है, मारना चाहने वाला शत्रु भी उसे मार नहीं सकता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण के उपदेश द्वारा अपने जीवन को यज्ञिय बनाकर प्रजाजन जो मृत्यु से बच जाते हैं और अमृत प्राप्त कर लेते हैं इसका अभिप्राय यही है कि यज्ञिय-जीवन बिताने वाले सौ वर्ष की पूरी आयु प्राप्त करते हैं—सारी आयु भर उन्हें कोई कष्ट नहीं होता।

मन्त्र के पूर्वार्द्ध के—"किस मृत्यु को वरण किया और किस अमृत को वरण नहीं किया"—प्रश्नों में प्रयुक्त किस [कम्, किम्] शब्द से यही ध्वनित होता है—कि वरण किये जाने वाले मृत्यु-और-अमृत अनेक प्रकार के हैं। ब्राह्मण उनमें से न केवल किसी प्रकार की भी मृत्यु का वरण नहीं करता प्रत्युत सब प्रकार के अमृतों का वरण कर लेता है। प्रसिद्ध मृत्यु तो एक ही प्रकार का है—उसमें आत्मा और शरीर का वियोग हो जात है। इसलिये यहाँ मृत्यु का प्रसिद्ध अर्थ मौत नहीं हो सकता, यहां मृत्यु का अर्थ भांति-भांति के कष्ट करना पड़ेगा। समय-समय पर प्राप्त होने वाले रोगादि कष्ट और उनसे उत्पन्न होने वाली चिन्ताएँ, हमारे स्वास्थ्य को दुर्बल बना देती हैं और इस प्रकार हमें मृत्यु के अधिक समीप ला खड़ा करती हैं। इस लिये, मृत्यु का सहायक होने के कारण, मन्त्र में विविध कष्टों को मृत्युओं का नाम दे दिया गया है। इसी प्रकार मन्त्र में प्रयुक्त अमृत शब्द भी भांति-भांति के सुखों—मंगलों का वाचक है—क्योंकि सुखों और मंगलों की प्राप्ति हमारे स्वास्थ्य को बढ़ा देती है और हमें मृत्यु से दूर करके अमृत की ओर ले जाती है। अमृत का [अमरपन का] जनक होने के कारण विविध प्रकार के सुखों और मंगलों को ही मन्त्र में अमृत कहा गया। वेद के इन और इस प्रकार के अन्य मन्त्रों से यह स्पष्ट द्योतित होता है कि ब्राह्मण का एक यह भी कर्त्तव्य है कि वह जनता का भांति-भांति से मंगल करता रहे।

ब्राह्मण के गुणों का सभी स्तवन करें—

ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में कहा गया कि ब्राह्मणों को इतना गुणशाली होना चाहिये कि लोग उनके गुणों की कथाओं का गान करते रहें। मन्त्र इस प्रकार है—

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः॥ ऋग्वेद १-१९०-१

मन्त्र का शब्दार्थ इस प्रकार है—

"हे प्रजाजन—[अनर्वाणं] जो सब प्रकार की हिंसाओं से पृथक् है। [वृषभं] जो प्रजाओं पर भांति-भांति के मंगलों की वर्षा करता है, [मन्द्रजिह्वं[1]] जिस की मधुरवाणी सब को मोहित कर लेती है, [नव्यं] जो अपने गुणों के कारण स्तुति

---

१. मादकवाचमिति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के योग्य है [बृहस्पतिं] ऐसे ब्राह्मण की महिमा को [अर्कैः] अपनी स्तुतियों और पूजा सत्कारों से [वर्धय] बढ़ाओ, [नवमानस्य[1]] स्तुति किये जा रहे [यस्य] जिसके गुणों को [सुरुचः] प्रकाश वाले [अर्थात् ज्ञानवान्] [देवा[2]] अपने व्यवहार में कुशल [गाथान्यः[3]] गुण-कथाओं का गान करने वाले [मर्ताः] मनुष्य [आशृण्वन्ति[4]] सुनते और सुनाते हैं।

मन्त्र का भाव अपने आप में स्पष्ट है। इसे स्पष्ट करने के लिये विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं। मन्त्र से स्पष्ट सूचित होता है कि ब्राह्मणों को ऐसा गुणशाली होना चाहिये कि लोग उनकी गुण-गाथाओं को गाते रहें।

ब्राह्मण योद्धा भी हो—

वेद के ब्राह्मण-विषयक प्रसंगों का अध्ययन करतेहुए हमें ऐसे भी कई प्रमाण मिले हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि ब्राह्मण युद्ध भी कर सकते हैं। तद्यथा—

१. यौ नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन्॥ ऋग् २-३०-९

२. बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम्॥ ऋग् १०-१०३-४

मन्त्रों का शब्दार्थ इस प्रकार है—

१—"[यः] जो [नः] हमारा [सनुत्यः] छिपा हुआ [उत वा] अथवा प्रकट [जिघत्नुः] मारने की इच्छा वाला शत्रु है—[तं] उस को [अभिख्याय] पहिचान कर [तिगितेन] तीक्ष्ण शस्त्र से [विध्य] बींध दे। [बृहस्पते] हे ब्राह्मण आप [आयुधैः] शस्त्रास्त्रों से [शत्रून्] शत्रुओं को [जेषि] विजय करते हो [द्रुहे] हमारे साथ द्रोह करने वाले शत्रु के लिये [राजन्] हे राजन् हे प्रकाशमान आप [रीषन्तं] मारने वाले शस्त्र को [परिधेहि] धारण करो।"

२—"[बृहस्पते] हे ब्राह्मण आप [रथेन] अपने रथ से [परिधेया[5]] शत्रुओं के चारों ओर पहुंचो [रक्षोहा] आप राक्षस-पुरुषों का संहार करने वाले हो [अमित्रान्] शत्रुओं को [अपबाधमानः] रोकने वाले हो [सेनाः] शत्रु-सेनाओं को [प्रभंजन्]

---

१. स्तूयमानस्य। कर्मणि कर्तृप्रत्यय इति सायणः।
२. देवाः व्यवहर्तारो मर्ताः=मनुष्याः इति सायणः।
३. स्तुतिवचसो नेतार इति सायणः। गाथानां नेतारः प्रयोक्तारः।
४. आश्रावयन्ति इति सायणः।
५. दीयतिर्गतिकर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोड़ते हुए और [प्रमृणः[1]] हिंसक शत्रुओं को [युधा] युद्ध के द्वारा [जयन्] विजय करते हुए आप [अस्माकं] हमारे [रथानाम्] रथों के [अविता] रक्षक [एधि] होवो।"

प्रथम मन्त्र में बृहस्पति को शस्त्रों द्वारा शत्रुओं को जीतने वाला कहा है और इससे प्रार्थना की है कि जो हमें छिपकर अथवा प्रकाशरूप में मारना चाहे उस शत्रु को वह अपने तीखे हथियारों से मारडाले। यह मन्त्र जिस सूक्त का है उसमें ११ मन्त्र हैं। अन्तिम मन्त्र का देवता मरुत् माना जाता है, छठे मन्त्र का देवता इन्द्र और सोम माने जाते हैं; आठवें मन्त्र के पूर्वार्द्ध की देवता सरस्वती मानी जाती है। नौवें मन्त्र का देवता बृहस्पति माना जाता है। शेष मन्त्रों का देवता—इन्द्र। इस प्रकार—सूक्त का प्रधान देवता इन्द्र है। सूक्त में इन्द्र से तीखे हथियारों द्वारा शत्रुओं को मारने की प्रार्थना की गई है। इन्द्र का राष्ट्र-परक अर्थ सम्राट् होता है—यह सभी जानते हैं। बृहस्पति इन्द्र के साथ (सम्राट् के साथ) मिलकर शत्रुओं से लड़ रहा है। राष्ट्र की राज्य-शक्ति के साथ मिलकर शत्रुओं से लड़ रहा है। जिन शत्रुओं से लड़ा जा रहा है वे भी प्रजा के, राष्ट्र के शत्रु हैं। प्रस्तुत मन्त्र में प्रजाजन बृहस्पति से शत्रुओं को मारने की प्रार्थना कर रहे हैं। सूक्त के चौथे मन्त्र में इन्द्र को बृहस्पति भी कहा गया है। वहाँ सायण ने भी बृहस्पति को स्वतन्त्र देवता न मानकर इस शब्द को इन्द्र का विशेषण माना है और इसका अर्थ किया है—बड़े बड़ों का पालक। सायण के शब्द हैं—"हे बृहस्पते, बृहतां परिवृढानां पालयितरिन्द्र" अर्थात् "हे बड़े बड़ों की पालना करने वाले इन्द्र।" इस आधार पर कोई कह सकता है कि प्रस्तुत मन्त में बृहस्पति का अर्थ ब्राह्मण नहीं करना चाहिये—इस का अर्थ बड़े बड़ों का पालक इन्द्र ही करना चाहिये। क्योंकि ब्राह्मण के विषय में हम ऊपर देख चुके हैं कि वह अहिंसा-परायण है, अतः किसी पर शस्त्र नहीं उठा सकता। यह ठीक है कि इस मन्त्र में बृहस्पति का अर्थ इन्द्र भी किया जा सकता है, परन्तु यहाँ बृहस्पति शब्द का इन्द्र (सम्राट्) अर्थ करने पर भी, श्लेष से अथवा ध्वनि से यह ब्राह्मण का वाचक भी रहेगा। क्योंकि अन्यत्र बृहस्पति का अर्थ ब्राह्मण होता है, अतः निष्कर्ष यह हुआ कि ब्राह्मण शस्त्रास्त्र लेकर राष्ट्र के शत्रुओं से युद्ध कर सकता है।

दूसरे मन्त्र में बृहस्पति को राक्षस-पुरुषों और शत्रुओं को मारने और रोकने वाला कहा गया है। उस से कहा गया है कि वह शत्रुओं को अपने रथ से घेरले, उनकी सेनाओं को तोड़ डाले और इस प्रकार युद्ध करके हिंसक शत्रुओं को परास्त करे एवं अपने पक्ष के रथारोही सैनिकों की रक्षा करे। जिस सूक्त का यह मन्त्र है उसके १३ मन्त्र हैं। सूक्त के चतुर्थ मन्त्र का देवता बृहस्पति माना जाता है।

१. मृण् हिंसायाम्। प्रमृणन्ति हिंसन्ति इति प्रमृणः शत्रवः, क्विप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारहवें मन्त्र का देवता अम्बा माना जाता है। और अन्तिम मन्त्र के देवता विषयक-विकल्प होने से कोई मरुत् मानते हैं और कोई इन्द्र। इस प्रकार सूक्त का प्रधान देवता इन्द्र है। सारे सूक्त में इन्द्र का वर्णन है। इन्द्र एक सेनापति के रूप में युद्ध का संचालन कर रहा है। इसी प्रसंग में बृहस्पति से प्रार्थना की गयी है। बृहस्पति इस सूक्त में भी इन्द्र के साथ राष्ट्र की राज्य-शक्ति के साथ मिलकर शत्रुओं की सेनाओं से लड़ रहा है। क्योंकि सूक्त का प्रधान देवता इन्द्र (सम्राट्) है, इसलिये इस मन्त्र के बृहस्पति शब्द का अर्थ भी बड़े-बड़ों का पालक इन्द्र ऐसा किया जा सकता है। सायण ने भी इस मन्त्र में बृहस्पति का अर्थ—"हे बृहस्पते बृहतां पते पालयितर्देव" ही किया है। यद्यपि उसने इस मन्त्र के बृहस्पति को स्पष्ट रूप में इन्द्र का विशेषण नहीं कहा है—जैसे कि ऋग् २-३०-४ के बृहस्पति शब्द को ऊपर स्पष्ट रूप में इन्द्र का विशेषण कहा है। परन्तु प्रस्तुत मन्त्र के बृहस्पति का भी शब्दार्थ सायण ने वही किया है जो उस मन्त्रगत बृहस्पति शब्द का किया है। यह ठीक भी है—क्योंकि सूक्त का प्रधान-देवता इन्द्र है और सूक्त में विषय भी ऐसा ही चल रहा है, जिसका सामान्यतः इन्द्र से ही सम्बन्ध है। इस लिये प्रस्तुत मन्त्र में बृहस्पति का अर्थ बड़े-बड़ों का रक्षक इन्द्र ऐसा किया जा सकता है। फिर भी, जैसा हम ऊपर की पंक्तियों में उद्धृत प्रथम मन्त्र के विशदीकरण में दिखाकर आये हैं। क्योंकि बृहस्पति का अर्थ वेद में ब्राह्मण भी होता है; इसलिये यह शब्द प्रस्तुत मन्त्र में प्रधानतः इन्द्र का वाचक होते हुए भी श्लेष और व्यंजना से ब्राह्मण का भाव भी दे सकता है। और इस प्रकार इस मन्त्र से भी यह भाव अवश्य व्यंजित होता है कि ब्राह्मण भी शस्त्रास्त्र लेकर शत्रु-सेनाओं से लड़ सकता है। साथ ही इस सूक्त में एक बात और देखने की है—सूक्त के आठवें मन्त्र में यह वाक्य आता है—"इन्द्र आसां नेता बृहस्पति-र्दक्षिणा"। अर्थात् "हमारी इन विजिगीषु (देवसेनानां) सेनाओं का नेता इन्द्र है, और बृहस्पति उनके दक्षिण की ओर है।" सूक्तगत आठवें मन्त्र के इस वाक्य से यह स्पष्ट सूचित होता है कि यहाँ बृहस्पति इन्द्र से पृथक् है। इसलिये सूक्तगत बृहस्पति का अर्थ ब्राह्मणत्व करना ही होगा। तब ब्राह्मण विषयक जो निष्कर्ष हमने ऊपर दिखाया है, वह स्वतः सिद्ध हो जायेगा।

ब्राह्मण को अहिंसा और हिंसा का समन्वय—

तब एक प्रश्न उपस्थित होता कि—ब्राह्मण में दो विरुद्ध धर्मों की प्रतिष्ठा क्यों? एक ओर पीछे हम इसी प्रकरण के खण्ड [ड] में दिखा आये हैं—कि ब्राह्मणों को अहिंसापरायण होना चाहिये और इस खण्ड में हम दिखा रहे हैं—कि ब्राह्मण शस्त्रास्त्र लेकर युद्ध भी कर सकता है। ब्राह्मण के सम्बन्ध में वेद ये दो परस्पर-विरोधी बातें क्यों कहता है? शस्त्रास्त्र लेकर युद्ध करने वाले ब्राह्मण अहिंसा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परायण, अहिंसा के व्रती—कैसे हो सकते हैं? वेद की ब्राह्मणविषयक इन दोनों विरोधी बातों का क्या समाधान है? यह विरोध ऊपर से दीखता है; वस्तुतः गहराई में जाकर देखने से यह विरोध-विरोध नही रह जाता। ब्राह्मण का अपना वैयक्तिक जीवन सदा अहिंसा-परायण ही रहेगा। वह अपने वैयक्तिक जीवन में अपने विरोधियों के प्रति प्रेमभाव ही रखेगा और उनके साथ उपकार और भलाई का व्यवहार करते हुए उनके हृदयों को जीतने का सदा प्रयत्न करेगा। वह विरोधियों द्वारा अपने प्रति किये जा रहे आचरण में कभी इस सिद्धांत से नहीं डिगेगा। बड़े-से बड़े शत्रु के साथ भी वह अपनी वैयक्तिक स्थिति में सदा अहिंसा का ही आचरण करेगा। परन्तु विरोधी द्वारा राष्ट्र-द्रोह अथवा समाज-द्रोह किये जाने पर ब्राह्मण शस्त्रग्रहण भी कर सकता है।

मान लीजिये—कोई राष्ट्र हमारे राष्ट्र पर आक्रमण करता है। हमारे राष्ट्र के ब्राह्मण, संन्यासी और दूसरे समझदार लोग आक्रांता राष्ट्र को समझाने की भरपूर कोशिश कर चुके हैं। अपने राष्ट्र के राजनीतिज्ञ और दूसरे विद्वान्-पुरुष आक्रांता राष्ट्र को पूरी तरह बता चुके हैं—कि हमारे राष्ट्र ने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा—वह व्यर्थ ही अन्याय पर उतारू है—अतः? उसका हमारे राष्ट्र के साथ लड़ने का कोई कारण नहीं है। इस पर भी आक्राँता-राष्ट्र हामारे राष्ट्र के साथ लड़ने के किये कटिबद्ध है। ऐसी अवस्था में विवश होकर हमारे राष्ट्र को आक्रांता राष्ट्र के साथ युद्ध करने का निश्चय करना पड़ता है। इस प्रकार बाधित होकर आत्मरक्षा के लिये आक्रांता के साथ लड़ाई लड़ने का निश्चय हो जाने पर सम्पूर्ण राष्ट्र को सारी शक्ति जुटाकर शत्रु के साथ युद्ध करना ही होगा।

जन-जन को शस्त्राभ्यास—

न केवल युद्ध ही करना होगा अपितु युद्ध को जीतना भी होगा। क्षत्रिय-वर्ग तो इस युद्ध को जीतने के लिए जी जान से लड़ेगा ही, पर ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि आक्रान्ता की शक्ति बहुत प्रबल हो, अकेले क्षत्रियों द्वारा उसका पराभव संभव न हो। तब राष्ट्र के एक-एक व्यक्ति को युद्ध के लिए तैयार रहना होगा। ऐसी संकट की स्थिति को ध्यान में रखकर वेद ने आदेश दिया है कि "विशं विशं युद्धाय संशिशाधि" (ऋग् १०-४८-४—अथर्व ४-३१-४) अर्थात् "राष्ट्र के एक-एक प्रजा-जन को युद्ध की शिक्षा दो।" ऐसी संकट की स्थिति में ब्राह्मणों को शस्त्र हाथ में लेकर युद्ध में कूदना ही होगा।

शरीराङ्गों द्वारा आक्रमण का निराकरण—

वेद के पुरुष-सूक्तस्थ "ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्" वाले मन्त्र में ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को शरीर के मुख आदि अंगों से उपमा दी है। शरीर में लड़ने का, रक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का काम भुजा (जिसे क्षत्रिय कहा गया है) का है। परन्तु अकेले भुजाओं से काम न चलता हो तो हमारा शरीर शत्रु को पैर की ठोकर से उछल-उछलकर कूल्हे की मार से मारता है और समय पाकर दांतों से भी काटता है और तो और सिर से भी टक्कर मारता है। क्षत्रिय से अकेले काम चलता न देखकर समाज-शरीर के चारों वर्ण लड़ाई में उतर आते हैं। राष्ट्र की रक्षा क्षत्रियों के जीवन का विशेष-कर्त्तव्य है। पर संकट के समय राष्ट्र की रक्षा के लिए युद्ध करना सभी वर्गों का कर्त्तव्य होजाता है। उस समय अहिंसा के व्रती ब्राह्मणों को भी कुछ देर के लिए अहिंसा त्याग देनी होती है। क्योंकि यदि इस धर्म-युद्ध में अपना राष्ट्र हार गया तो समूचे राष्ट्र का ही विनाश हो जायेगा। जब आत्मरक्षा के सिद्धान्त का आश्रय लेकर ब्राह्मण राष्ट्र की रक्षा के लिए लड़ता है तब (उस धर्मसंकट में) उसकी हिंसा वस्तुतः अहिंसा होती है। क्योंकि उस हिंसा के तल में अहिंसा की धारा बह रही होती है। हिंसा तब अहिंसा की स्थापना के लिए ही की जा रही होती है।

उद्धृत मन्त्रों में हमने देखा कि बृहस्पति, इन्द्र के साथ मिलकर—ब्राह्मण, सम्राट् (अर्थात् राष्ट्र की राज्यशक्ति) के साथ मिलकर लड़ रहा है। अन्यत्र भी जहाँ कहीं ब्राह्मण के शस्त्र-ग्रहण करने का वर्णन आता है वह राज्यशक्ति के साथ मिल-कर ही आता है। इसका स्पष्ट निष्कर्ष यही निकलता है कि जब राज्य युद्ध करने का निश्चय कर ले और अकेले क्षत्रियों से काम न चल सके तो राष्ट्र के लिये उस संकट की स्थिति में ब्राह्मण भी युद्ध कर सकते हैं। किन्तु स्मरण रहे कि यह ब्राह्मण अपने राष्ट्र के लिये भी तभी लड़ेगा जब उसका राष्ट्र सत्य पर होगा—धर्म पर होगा। यदि हमारा राष्ट्र, अधर्म का सहारा लेकर किसी राष्ट्र के साथ लड़ने जायेगा, तो सच्चे ब्राह्मण उस युद्ध में (अपनों का) भी साथ नहीं देंगे। यदि आवश्य-कता होगी तो वे अपने ही राष्ट्र के लोगों के हाथों मरजाना पसन्द करेंगे पर अधर्म की लड़ाई में अपने राष्ट्र का भी साथ कदापि नहीं देंगे। न केवल साथ ही नहीं देंगे प्रत्युत सत्यारूढ़ होकर युद्ध करने की अवस्था में वे अपने राष्ट्र का विरोध भी करेंगे (ब्राह्मण—सत्यरूप होता है, वह सत्य के ज्योतिर्मय रथ पर बैठकर चलता है इसलिए वह वास्तव में न तो अपने राष्ट्र के लिये लड़ता है और न किसी और राष्ट्र के लिये, वह तो सत्य के लिये लड़ता है। जब अपना राष्ट्र सत्य पर न होगा तो वह उसके भी विरुद्ध हो जायेगा)।

जब आक्रान्ता के साथ अपने राष्ट्र का युद्ध समाप्त हो जायेगा, तो ब्राह्मण का वैयक्तिक जीवन फिर से अहिंसा की राह पर चलने लगेगा। उसके मन में आक्रांता राष्ट्र के लोगों के प्रति किसी प्रकार का द्वेष नहीं होगा। वह उनके साथ भी प्रेम से मिलेगा। उनसे उपकार और भलाई का व्यवहार करेगा। उनके दु:खों को दूर करने के उपाय करेगा। उनके साथ अपने राष्ट्र की जो संधि होगी, उसमें उन पर किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के अन्याय और अत्याचार नहीं होने देगा। वह ऐसे प्रयत्न करेगा जिन से दोनों राष्ट्रों के बीच का अविश्वास और भ्रान्तियाँ दूर होकर दोनों राष्ट्र परस्पर प्रीति से बर्ताव करें। ब्राह्मण अहिंसा की रक्षा के लिये ही हिंसा कर रहा था, अब दोनों राष्ट्रों में लड़ाई थम जाने पर वह पराजित राष्ट्र के लोगों के साथ अपने व्यवहार से प्रमाणित कर देगा कि उसकी हिंसा भी असल में अहिंसा ही थी।

वैयक्तिक जीवन में ब्राह्मण अत्यन्त अहिंसाव्रती रहेगा। किन्तु उसमें भी वह कभी-कभी शस्त्र-ग्रहण करता है। उदाहरणार्थ मान लीजिये ब्राह्मण किसी निर्जन जंगल के रास्ते में से आ रहा है। वहाँ अकस्मात् कोई डाकू उसके सामने आ जाता है और उस पर आक्रमण करना चाहता है। ब्राह्मण डाकू को समझाता-बुझाता है। डाकू का उस ब्राह्मण से पहले का कोई परिचय नहीं है। वह ब्राह्मण के गुणों को नहीं जानता। इसलिये ब्राह्मण के समझाने बुझाने का डाकू पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी भी स्थिति नहीं है कि राजकर्मचारी या दूसरे लोग डाकू को मारने से रोकें। तब ब्राह्मण, अपनी रक्षार्थ शस्त्र-प्रयोग कर सकता है।

'विशंविशं युद्धाय संशिशाधि' राष्ट्र के जन-जन को युद्ध की शिक्षा दो। वेद की इस आज्ञा के आधार पर प्राप्त की हुई शस्त्रास्त्र-संचालन की शिक्षा अब उसके काम आयेगी। अहिंसा-व्रती ब्राह्मण का उद्देश्य डाकू को मार डालना नहीं है, उसका उद्देश्य केवल आत्म-रक्षा करना है, इसलिये वह पहले तो अपने युद्ध-शिक्षा के कौशल से ऐसा प्रयत्न करेगा कि जिससे डाकू के हथियार गिरा लिये जायें अथवा नष्ट कर दिये जायें, वह डाकू को निहत्था करके छोड़ देगा। उसे जान से मारेगा नहीं। डाकू को निहत्था न किया जा सके और अपने बचाव के लिये उसे मारना ही आवश्यक हो, तो ब्राह्मण उसे मारने से भी पीछे नहीं हटेगा। उसकी यह हिंसा-हिंसा नहीं होगी—अपितु अहिंसा ही होगी। इस प्रकार डाकू से अपना बचाव कर लेने के पश्चात् ब्राह्मण के मन में उसके प्रति द्वेष और घृणा के भाव नहीं होंगे। उसके मन में डाकू के प्रति प्रेम ही रहेगा। वह समय पड़ने पर उस के साथ भलाई का ही बरताव करेगा। डाकू के दुःख और कष्ट की अवस्था का जब उसे ज्ञान हो जायेगा तो, वह डाकू के पास पहुंचेगा और उसके दुःख और कष्ट को दूर करने का प्रयत्न भी करेगा। इस प्रकार डाकू का हृदय जीतकर उसे सुधारने का निरन्तर प्रयत्न करता रहेगा। ब्राह्मण के जीवन का एकमात्र प्रेरकभाव अहिंसा, प्रेम और उपकार की वृत्ति होती है। जब कभी उसे अति संकट में पड़कर हिंसा करनी पड़ जाती है, तब भी उसके हृदय में अहिंसा की गंगा लहरें मार रही होती है। अहिंसा की यह मूलवृत्ति ब्राह्मण को उसकी कादाचित्क हिंसा को भी अहिंसा का ही रूप दे देती है (क्योंकि उसकी यह कादाचित्क हिंसा भी अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिये ही तो की जाती है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणों को ब्रह्म-ज्ञानी होना चाहिये—

वेद के अध्ययन से ब्राह्मणों के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह मालूम पड़ती है कि उन्हें ब्रह्मज्ञानी होना चाहिये, परमात्मा का साक्षात्कार उन्हें होना चाहिये। प्रथम तो 'ब्राह्मण' इस संज्ञा से ही यह सूचित होता है कि ब्राह्मणों को ब्रह्मज्ञानी होना चाहिये। ब्रह्म का एक अर्थ परमात्मा भी होता है—जो ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को जानता हो और जो ब्रह्मविद्या का अध्ययन करता हो वह ब्राह्मण[1] कहलायेगा। जो बात ब्राह्मण के नाम से सूचित होती है वही वेद में स्थान-स्थान पर अधिक स्पष्ट रूप में कही गई है। उदाहरण के लिये निम्न मन्त्रों को देखिये—

१—सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ ऋग् १०-१६-६, अथर्व १८-३-५५

२—सोमो ह्यस्य दायादः ॥ अथर्व ५-१८-६

३—सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ॥ यजुर् ६-४०, १०-१८

४- सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्या ऽश्नाति कश्चन ॥ ऋग् १०-८५-३

५—इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ॥ ऋग् १०-७१-६

इन मन्त्रों का शब्दार्थ क्रम से इस प्रकार है—

(१) "जो सोम [परमात्मा] ब्राह्मणों में सब ओर से प्रविष्ट हो रहा है।" (२) "सोम [परमात्मा] इस ब्राह्मण का समीपस्थ सम्वन्धी [दायाद] है।" (३) "सोम [परमात्मा] हम ब्राह्मणों का राजा है।" (४) "[यत्] यह जो कि [ओषधिम्] ओषधि को [पिषन्ति] पीस लेते हैं, उसी से कोई अज्ञानी लोग [सोमम्] सोम को [पपिवान्] पिये हुए [मन्यते] मान लेता है। [ये] जिस [सोमम्] सोम को [ब्राह्मणः] ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण [विदुः] जानते हैं, [तस्य] उसका [कश्चन] कोई [न] विरला ही [अश्नाति] उपभोग करता है।" (५) "ये लोग—जो न इस लोक की ओर चलते हैं और न परलोक की ओर, और न ही यज्ञ-यागादि उपकार से काम करते है......।"

हमने इन मन्त्रों में सोम का अर्थ परमात्मा किया है। अधिविद्य-कक्षा में सोम का अर्थ शिक्षाप्राप्त स्नातक करते हैं। एक अध्याय में हमने सोम का अर्थ न्यायाधीश भी किया है। सोम का अर्थ वेद में सोमनामक ओषधि भी होता है और कई स्थलों पर इसका अर्थ चन्द्रमा भी होता है। इस शब्द के धन-सम्पत्ति आदि कई और अर्थ भी प्रसंगतः होते हैं। परन्तु इन उद्धृत मन्त्रों में सोम के ये अर्थ संगत नहीं हो सकते। जो ब्राह्मणों में सब ओर से प्रविष्ट हो रहा है, जो ब्राह्मणों का समीपस्थ सम्वन्धी है, जो ब्राह्मणों का राजा है और जिस सोम को ब्राह्मण लोग ही जानते हैं और कोई साधारण प्रजाजन नहीं जानते वह सोम और कुछ न होकर, परमात्मा ही हो सकता है। यह परमात्मा-रूपी सोम ही ब्राह्मणों में सब ओर से प्रविष्ट है। यों तो सर्वव्यापक परमात्मा सभी

१. ब्रह्म अधीते वेद वा ब्राह्मणः। तदधीते तद्वेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों में प्रविष्ट है, परन्तु साधारण लोग उस की व्यापकता को अनुभव नहीं करते और न ही उसे जानने के प्रयत्न करते हैं। ब्राह्मण लोग ही उसकी व्यापकता को अनुभव करते हैं, उसे जानने के प्रयत्न करते हैं और उसे जानकर अपने सारे मानसिक और शारीरिक व्यापारों को उसकी आज्ञाओं के अनुकूल ढालते हैं इसलिए ब्राह्मणों के लिये विशेष रूप से मन्त्र में कहा गया है कि परमात्मा उनमें सब ओर से प्रविष्ट है, उनके रोम-रोम, सांस-सांस और एक-एक कार्य में परमात्मा की प्रीति झलक रही होती है। यह परमात्मा-रूपी सोम ही ब्राह्मणों का समीपस्थ सम्बन्धी है। ब्राह्मण-लोग अपनी रक्षा और कल्याण के लिये सबसे अधिक भरोसा परमात्मा पर ही करते हैं। वे अपने सम्बन्धियों से बढ़कर अपना हितैषी केवल परमात्मा को ही समझते हैं। ब्राह्मण लोग इस परमात्मा-रूपी सोम को ही अपना राजा समझते हैं। वे संसार के किसी राजा को अपना राजा नहीं मानते, इसीलिये वे संसार के किसी राजा से नहीं डरते। वे प्रभु को ही अपना राजा मानते हैं। उसी के नियमों पर चलते हैं। और केवल उसी से डरते हैं। वे सांसारिक राजाओं के नियमों को वहीं तक मानते हैं और वहीं तक उनसे डरते हैं, जहाँ तक उनके नियम परमात्मा के नियमों के अनुकूल होते हैं। जो सोम, पीसकर पी जाने वाली औषधि नहीं है, जिसे ब्राह्मण लोग ही जानते हैं, और कोई साधारण प्रजा-जन जिसका उपभोग नहीं कर सकता—जिसे जान नहीं सकता—यह (ब्राह्मणों के—ब्रह्मज्ञानियों के ज्ञान का विषय) सोम केवल मात्र परमात्मा ही हो सकता है। यह उद्धृत चौथा ऋग्वेदीय मन्त्र अथर्व १४.१.३ में भी आता है। वहाँ **"न तस्याश्नाति कश्चन"** के स्थान पर **"न तस्याश्नाति पार्थिवः"** पाठ है। इस पाठ का अर्थ यह होगा कि "कोई पृथिवी से सम्बन्ध रखने वाला पृथिवी के, संसार के, विषयों में फंसा हुआ व्यक्ति उसका उपभोग नहीं कर सकता"। तात्पर्य यह है कि औषधि के अतिरिक्त जिस सोम को ब्राह्मण ही जानते हैं उस का उपभोग, उस का ज्ञान, संसार के विषयासक्तपुरुष नहीं कर सकते। इस प्रकार का, विषयासक्त-पुरुषों की पहुंच से बाहर का सोम, परमात्मा ही हो सकता है। अन्तिम मन्त्र में ब्राह्मणों के विषय में कहा गया है कि वे लोक और परलोक दोनों को जानते हैं। परलोक के जानने में परमात्मा का जानना समाविष्ट है। अतः सिद्ध हुआ कि—ब्राह्मण वे हैं जो परमात्मा को भी जानते हैं।

वेद के इन (और ऐसे ही अन्य) प्रसंगों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणों को ब्रह्म-ज्ञानी भी होना चाहिये। वास्तव में जबतक ब्राह्मण-लोग ब्रह्मज्ञानी नहीं होंगे, तब तक ऊपर के खण्डों में ब्राह्मण के सत्य, अहिंसा, संयम, पवित्रता उपकार आदि जिन महान् गुणों का वर्णन किया गया है, उनमें उन्हें पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। ब्राह्मण जब भी परमात्मा को पहचानकर उसपर पूर्ण भरोसा करके उसकी आज्ञाओं के अनुकूल अपना जीवन बिताना प्रारम्भ करता है, तभी उसमें इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणों की पूर्णता आती है। गुणों के एकमात्र पूर्ण-भंडार ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होने पर ही ब्राह्मण (उन) गुणों का पूर्ण आगार बन सकता है।

ब्राह्मण पिता, पितामह वाला हो—

यजुर्वेद के सातवें अध्याय के ४६वें मन्त्र में निम्न वाक्य आता है—

ब्राह्मणमद्य विधेयं पितृमन्तं पैतृमत्यम् ॥

अर्थात्—"आज मैं उस ब्राह्मण को प्राप्त करूं जो पितृमान् है अर्थात् जिसका पिता ब्राह्मण है जो पैतृमत्य अर्थात् पितृमान् की संतान है अर्थात् ऐसे पिता की संतान है जिसका पिता ब्राह्मण था"।

भाव यह है कि ऐसे ब्राह्मण को प्राप्त करूँ जिसके पिता, पितामह, प्रपितामह आदि सब ब्राह्मण रहे हैं। यों तो सभी पुरुषों के पिता, पितामह आदि होते हैं। पिता, पितामह आदि की सत्ता के बिना किसी पुरुष की सत्ता नहीं हो सकती। फिर भी ब्राह्मण इस मन्त्र में जो पितृमान् अर्थात् पितावाला और पैतृमत्य पितावाले पितावाला कहा है, उसका विशेष महत्त्व है। और वह यह है कि—ब्राह्मण के पिता और पितामह आदि भी ब्राह्मण होने चाहियें। ब्राह्मण असल में पिता, पितामहवाला तब होता है जबकि उसके पिता, आदि भी ब्राह्मण हों। इसलिये हमने शब्दार्थ पितृमान् और पैतृमत्य का अर्थ कर दिया है—जिसके पिता और पितामह ब्राह्मण हैं। उवट और महीधर ने भी इन शब्दों का ऐसा ही अर्थ किया है। मन्त्र में ऐसे ब्राह्मण की कल्पना की गई है जिसके पिता और पितामह ब्राह्मण हैं। इस मन्त्र से यह ध्वनित होता है कि ब्राह्मणों को ऐसा प्रयत्न करते रहना चाहिये कि उनके वंश में निरन्तर ब्राह्मण ही उत्पन्न हों और फिर ब्राह्मण के उदाहरण से यह भी भाव निकल आयेगा कि अन्य वर्णों को भी निरन्तर ऐसा प्रयत्न करते रहना चाहिये कि उनके वंश में उन्हीं के वर्ण के व्यक्ति उत्पन्न होते रहें। तात्पर्य यह है कि अपने वंश में वर्ण का ह्रास न होने पावे। ऐसा यत्न प्रत्येक वर्ण को निरन्तर करते रहना चाहिये।

वर्णव्यवस्था जन्म पर नहीं, कर्म पर—

वेद के इस मन्त्र से यह भी भाव निकलता है कि वर्ण जन्म पर नहीं गुण-कर्म-स्वभाव पर आश्रित है। यदि जन्म पर वर्ण आश्रित हो तब तो प्रत्येक ब्राह्मण का पिता ब्राह्मण है ही। फिर ऐसा ब्राह्मण जिसका पिता और पितामह ब्राह्मण हो —अन्वेषण करने की क्या आवश्यकता है? जन्म की वर्णव्यवस्था होने पर तो किसी ब्राह्मण के पिता, प्रपिता आदि सभी स्वतः ब्राह्मण होंगे ही गुण-कर्म की व्यवस्था में सभी ब्राह्मणों का ऐसा होना आवश्यक नहीं। वहाँ ऐसे भी वहुत ब्राह्मण हो सकते हैं कि जिनके पिता आदि ब्राह्मण न रहे हों, क्षत्रिय, वैश्य रहे हों। सो इस मन्त्र से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि वर्णव्यवस्था गुण, कर्म से होनी चाहिये, जन्म से नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत होता है ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि में यह जो लिखा है कि—"इन गुण-कर्मों के योग से ही चारों वर्ण होवें तो उस कुल, देश और मनुष्य-समुदाय की बड़ी उन्नति होवे और जिनका जन्म जिस वर्ण में हो, उसी के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव हों तो अति विशेष है।" वह इसी वेद-मन्त्र के आधार पर लिखा है।

प्रजा के लोगों को ब्राह्मणों की पालना करनी चाहिये

सब कुछ ब्राह्मण का है—

अथर्ववेद के ग्यारहवें कांड में निम्न मन्त्र आता है—

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा न एषा।
इदं धनं निदधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः॥ अथर्व ११-१-२८

मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

"[इदं] यह [मे] मेरा [ज्योतिः] चमकता हुआ [अमृतं[1]] मृत्यु से बचाने वाला [हिरण्यं] सुवर्ण [क्षेत्रात्] खेत से आया हुआ [पक्वं] पका हुआ अनाज [एषा] यह [मे] मेरी [कामदुघा] कामना पूरी करने वाली दुधारू गाय, [इदं] यह [धनं] धन—[ब्राह्मणेषु] ब्राह्मणों में [निदधे] देता हूँ, और इस प्रकार मैं [पितृषु] पालन करने वाले लोगों में [यः] जो [स्वर्गः] सुख की ओर ले जाने वाला [पन्थां] मार्ग है, उस को [कृण्वे] बनाता हूँ।"

जिस सूक्त का यह मन्त्र है उसमें ब्रह्मौदन का वर्णन है। गृहस्थ दम्पती ब्राह्मणों को खिलाने के लिये ओदन अर्थात् भात, तैयार कर रहे हैं। यहाँ ओदन उपलक्षण है। ब्रह्मौदन से तात्पर्य ब्राह्मणों की पालना करने वाली सामग्री से है। सूक्त के उपदेश का आशय यह है कि गृहस्थ नर-नारियों को अपने राष्ट्र के ब्राह्मणों की सब तरह से पालना करनी चाहिये। ब्राह्मणों के ब्रह्मौदन खिलाने से ब्राह्मणों की पालना करने से क्या फल मिलते हैं, इसका वर्णन भी सूक्त में दिया गया है। प्रसंग से और भी कितनी ही बातों का उपदेश दिया गया है। उसी प्रसग में यह मन्त्र आया है।

मन्त्र में कहा गया है—गृहस्थों का कर्त्तव्य है कि सुवर्ण, अनाज, गौवें, तथा और भी जितने प्रकार का धन है वह सब, ब्राह्मणों को देते रहें। इस प्रकार जो गृहस्थ ब्राह्मणों की पालना करते हैं वे पिता अर्थात् पालक हो जाते हैं। और पालक लोगों का जो सुखदायी मार्ग है उसे अपने लिये प्रशस्त बनाते हैं। अर्थात्—ब्राह्मणों की आवश्यकताओं को पूरा करके उनकी पालना करने वाले गृहस्थ इस लोक और परलोक में स्वर्ग में रहते हैं।

मन्त्र में सुवर्ण को अमृत कहा है। अमृत का अर्थ है जो मृत्यु न होने दे। सुवर्ण अनेक रोगों का औषध भी है, सो रोग-निवारक होने से, भी वह अमृत है।

१. नास्ति मरणं यस्मात् तत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण संग्रही न हो—

मन्त्र में ब्राह्मणों की पालना का भार गृहस्थ नर-नारियों पर डाला गया है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि ब्राह्मणों को अपना जीवन सम्पत्ति कमाने में नहीं लगाना चाहिये, और न ही उन्हें भविष्य के विचार से बहुत सी धन-सामग्री का संग्रह करके रखना चाहिये। मनुस्मृति आदि आर्य-साहित्य के ग्रन्थों में ब्राह्मण की सम्पत्ति-रहितता के सम्बन्ध में जो मार्मिक वर्णन पाये जाते हैं, मालूम होता है, वे वेद के इस और ऐसे ही अन्य वर्णनों के आधार पर ही किए गए हैं। यदि ब्राह्मण संपत्ति-संग्रह पर पड़ जायेगा तो वह लोभ-लालच, संभालने की चिन्ता आदि में पड़कर अपने आदर्श से गिर जाएगा। फिर वह ज्ञान के, सत्य के, न्याय और धर्म के रक्षण का जो व्रत उसने लिया है उसमें पूरा न उतर सकेगा। इसलिए ब्राह्मणों के भली भांति पालन की चिंता राष्ट्र के लोगों को करनी चाहिए और राष्ट्र में ज्ञान, सत्य, न्याय और धर्म के प्रचार एवं रक्षा की चिन्ता ब्राह्मणों को करनी चाहिए। तभी कोई राष्ट्र उन्नति कर सकता है।

ब्राह्मण राजनीतिज्ञ भी हो—

ब्राह्मणों को राजनीति का पण्डित भी होना चाहिए। वेद के अध्ययन से यह भी अवगत होता है। निम्न मन्त्र देखिये—

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा ओकांसि चक्रिरे॥ ऋग् १-४०-५, यजुर् ३४-५७

मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

"[ब्रह्मणस्पतिः] वेदज्ञ-ब्राह्मण [नूनं] निश्चय ही [उक्थ्यं] प्रशंसनीय [मन्त्रं] विचार को [प्रवदति] उत्तम रीति से कहता है [यस्मिन्] जिस विचार में [इन्द्रः] इन्द्र [वरुणः] वरुण [मित्रः] मित्र [अर्यमा] और अर्यमा, ये सब राज्याधिकारी लोग [ओकांसि] निवास [चक्रिरे] करते हैं।"

इन्द्र का अर्थ सम्राट् होता है, यह हम जानते ही हैं। वरुण आदि को राज्य-व्यवस्था में राज्य के विभिन्न अधिकारी-शासक समझ लेना पर्याप्त है। वेदज्ञ-ब्राह्मण इन सब राज्याधिकारियों को विचार देता है। ब्राह्मण के दिए हुए मन्त्र में (विचार में)—ये राज्याधिकारी लोग इस प्रकार सुरक्षित रहते हैं जैसे कोई अपने ओकस में, घर में सुरक्षित रहता है। ब्राह्मण का बताया विचार इन राज्याधिकारियों की दीवार बनकर रक्षा करता है। ब्राह्मण के बताये विचार पर चलने वाले राज्याधिकारियों की दुर्गति और नाश कभी नहीं हो सकता।

ब्राह्मण इन्द्रादि राज्याधिकारियों को जो विचार देगा, वह उनके राज्य-पालन के कर्त्तव्य से—राजनीति से—ही सम्बन्ध रखेगा। इस प्रकार इस मन्त्र में स्पष्ट है कि ब्राह्मणों को राजनीति का पण्डित भी होना चाहिए। ब्राह्मणों द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदर्शित राजनीति धूर्तता की नीति न रहकर, सच्ची राजनीति हो, वह धर्मनीति—विश्व के कल्याण की नीति होगी।

राजाओं को ब्राह्मणों का सत्कार और पालन करना चाहिये—

वेद के स्वाध्याय से यह भी ज्ञात होता है कि किसी भी राज्य के राजाओं को, राज्य-कर्मचारियों को, ब्राह्मणों का मान, सत्कार करना चाहिए। उन्हें आदर देना चाहिए और सब प्रकार से उनकी पालना करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्न मन्त्र देखिये।

१—स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम्॥ ऋग् ४-५०-७

२—स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इडा पिन्वते विश्वदानीम्।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति॥ ऋग् ४-५०-८

३—अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः॥ ऋग् ४-५०-९

इन मन्त्रों का शब्दार्थ क्रमशः इस प्रकार है—

१—"[सः] वह [इत्] ही [राजा] राजा [विश्वा] सब [प्रतिजन्यानि] युद्ध करने वाली शत्रु-सेनाओं का [शुष्मेण] बल से [वीर्येण] और पराक्रम से [अभितस्थो] सामना कर सकता है [यः] जो [बृहस्पति] ब्राह्मण की [सुभृतं] भली प्रकार भरण-पोषण करके [बिभर्ति] पालना करता है, [वल्गूयति] स्तुति करता है [वन्दते] उसका नमस्कार करता है, [पूर्वभाजं] प्रत्येक बात में उसे पहले पूछा जाने वाला बनता है।"

२—"[सः] वह [इत्] ही [सुधितः] अच्छे प्रकार तृप्त होकर [स्वे] अपने [ओकसि] घर में [क्षेति] निवास करता है [तस्मै] उसके लिये [इडा] भूमि [विश्वदानीम्] सदा [पिन्वते[1]] समृद्ध होती है, [तस्मै] उसके लिये [विशः] प्रजायें [स्वयं] अपने आप [एव] ही [नमन्ते] झुकी रहती हैं—[यस्मिन्] जिस [राजनि] राजा के यहाँ [ब्रह्मा] ब्राह्मण [पूर्वः] आगे [एति] चलता है।"

३—"[यः] जो [राजा] राजा [अवस्यवे] रक्षा चाहने वाले [ब्रह्मणे] ब्राह्मण के लिये [वरिवः] धन [कृणोति] देता है, वह राजा [अप्रतीतः] शत्रुओं के विरोध से रहित होकर [धनानि[धनोंका [संजयति] भले प्रकार जीतता है, [प्रतिजन्यानि[2]] शत्रुओं द्वारा किये जाने वाले युद्धों को, और [सजन्याति] अपने राष्ट्र के लोगों द्वारा किये जाने वाले युद्धों (अर्थात् विरोधों) को भी [सञ्जयति] भली

१—वर्धते इति सायणः।
२—जन्यं युद्धम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार जीत लेता है—[तं] उस की [देवाः] राष्ट्र के विविध व्यवहारशील विद्वान्, राजकर्मचारी-गण, और अग्नि, वायु आदि देव [अवन्ति] रक्षा करते हैं।"

ब्राह्मण सब का अग्रणी है—

प्रथम मन्त्र में कहा है कि राजा को चाहिये कि वह ब्राह्मण का भरण-पोषण करे और इस प्रकार भरण-पोषण करे कि ब्राह्मण सुभृत होजाय—उसकी प्रत्येक आवश्यकता अच्छी तरह पूरी हो जाये। इसके साथ ही राजा का कर्त्तव्य है कि वह ब्राह्मण की स्तुति किया करे—प्रशंसा किया करे—और उसको नमस्कार किया करे। इतना ही नहीं राजा का कर्त्तव्य है कि वह ब्राह्मण को प्रत्येक बात में प्राथमिकता दे—प्रत्येक बात में उसे पहले पूछे—सभा-समाजों में उसे अगला और उच्च स्थान दे। विचार के समय उसकी बात को सबसे अधिक महत्त्व दे। अपने सुख और आराम से पहले ब्राह्मण के सुख और आराम की चिन्ता करे। द्वितीय मन्त्र में कहा है कि राजा के यहाँ ब्राह्मण को आगे चलना चाहिये --प्रत्येक बात का नेता ब्राह्मण को होना चाहिये। राजा को प्रत्येक बात—ब्राह्मण की सलाह से करनी चाहिये। तृतीय मंत्र में कहा गया है कि जब ब्राह्मण अवस्यु हो— रक्षा चाहता हो—जब उसे अपने पालन-पोषण के लिये किसी चीज की आवश्यकता हो—तो राजा को चाहिये कि वह ब्राह्मण को धनादि देकर उसकी उस आवश्यकता को पूरा करे।

जो राजा ब्राह्मणों का इस तरह मान-सत्कार करता है, उसे सब मंगल प्राप्त होते हैं। वह राष्ट्र के बाहर और भीतर के सब शत्रुओं को जीत लेता है। वह राज-सिंहासन पर और राजगृह में सुरक्षित रहता है। राज्य की भूमि समृद्ध होकर उसके लिये खूब अनाज, फल और खनिज पदार्थों को उगलती है। राष्ट्र की सब प्रजायें स्वयं प्रसन्नता से उसके अधीन रहना पसन्द करती हैं। जड़ और चेतन सब देवों से उसे रक्षा प्राप्त होती है।

ब्राह्मण का जो चरित्र ऊपर के पृष्ठों में खैंचा गया है उसमें दिखाये गये ज्ञान और चरित्र के धनी ब्राह्मणों का मान जिस राजा के राज्य में होगा, और उनकी सलाह के अनुसार जो राजा चलेगा, उसका राज्य सर्वथा निष्कण्टक और अभ्युदयशाली होना तो आवश्यक ही है।

ब्राह्मण के जीवन का महान् और कठोर आदर्श—

इस प्रकरण में हमने ऊपर वेद का आदेश देखा था कि प्रजा के लोगों को ब्राह्मणों का पालन-पोषण करना चाहिये। इस उपखण्ड में हम देख रहे हैं कि राजा का भी यह कर्त्तव्य है कि वह ब्राह्मणों की पालना और पोषणा करे। इस प्रकार राजा और प्रजा (सभी) को अपने राष्ट्र के ब्राह्मणों का पालन-पोषण और आदर-सत्कार करना चारिये। ब्राह्मण का जीवन बिताना अत्यन्त कठिन कर्म है। ब्राह्मण को किसी प्रकार की सम्पत्ति और ऐश्वर्य का संग्रह नहीं करना चाहिए। उसे स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकृत धन-हीनता का जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसका जीवन तपस्या और संयम से ओत-प्रोत होना चाहिए। उसे अपने जीवन में ऊंची से ऊंची पवित्रता लानी चाहिए, ज्ञान के संग्रह और उसके प्रसार में निरन्तर उद्यत रहना चाहिए। सत्य, न्याय और धर्म के प्रचार और प्रसार में उसे अपने जीवन को आहुत कर देने के लिए उद्यत रहना चाहिये। अपने शत्रुओं के प्रति भी उसके मन में द्वेष के भाव नहीं आने चाहिएं। प्राणिमात्र के कल्याण की कामना उसके मन में रहनी चाहिए। सब जगत् के लिए प्रेम और उपकार के भाव उसे अपने हृदय में संजोये रखने चाहिए। पूर्ण अहिंसा का—प्रेम, और उपकार सहनशीलता का—जीवन उसे बिताना चाहिए। ऐसा ऊंचा और कठिन जीवन बिताने के लिए राष्ट्र के बहुत ही कम लोग आगे आयेंगे। पर राष्ट्र के कल्याण के लिए ऐसा जीवन बिताने वाले लोगों का उपलब्ध होते रहना नितांत आवश्यक है। राजा और प्रजा द्वारा इस प्रकार का—ब्राह्मण का जीवन बिताने वाले लोगों का सम्मान-सत्कार और उनके भरण-पोषण की चिन्ता राज्य की ओर से होते रहने के परिणामस्वरूप जनता के लोग इस जीवन की ओर आकृष्ट हो सकेंगे। राजा और प्रजा-वर्ग को ब्राह्मण पर यह आदर-सत्कार और भरण-पोषण किसी कृपा-दृष्टि से नहीं, अपितु अपने कल्याण के लिये, अपने हित के लिये, राष्ट्र के भले के लिए करते रहना चाहिए। अन्यथा ब्राह्मण भी अन्य लोगों की तरह धन कमाने और अपने पेट की पूर्ति के जीवन में पड़ जायेगा। जिससे राष्ट्र का अकल्याण ही होगा। इसलिये राजा और प्रजा को अपना धर्म समझकर ब्राह्मणों का सम्मान-सत्कार भरण-पोषण करना चाहिए। जिन ब्राह्मणों को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है वे किस प्रकार के लोग होते हैं— यह जान लेना आवश्यक था। इसलिए मैंने यहाँ ब्राह्मण के सम्बन्ध में इतना विस्तार से लिखा है। ब्राह्मण के सम्बन्ध में जो कुछ यहाँ लिखा गया है, वेदों में उससे कहीं अधिक वर्णन पाये जाते हैं। उन सब का उल्लेख कर सकना यहाँ संभव नहीं था, यहाँ कुछ मुख्य बातें ही लिखी गई हैं जिससे पाठकों को अनुमान हो जाये कि वेद किस प्रकार के लोगों को ब्राह्मण कहता है।

ब्राह्मण के गुणों पर ऋषि दयानन्द—

इस प्रकरण को समाप्त करते हुए, ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में वेद तथा अन्य आर्य-शास्त्रों के आधार पर ब्राह्मणों के जो गुण दिखाये हैं उन पर दृष्टिपात करना भी आवश्यक होगा। ऋषि ने लिखा है—

"ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना—ये छः कर्म हैं[1]। परन्तु प्रतिग्रह अर्थात् लेना नीच कर्म है। [शम]—मन से बुरे काम की इच्छा भी न करनी और उसको कभी अधर्म में प्रवृत्त न होने देना। [दम]—श्रोत्र

१. मनु १।८८ के आधार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और चक्षु आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोककर धर्म में चलाना। [तप]—सदा ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय होके धर्मानुष्ठान करना। [शौच]—भीतर के राग, द्वेषादि दोष और बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्यासत्य के विवेकपूर्वक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से निश्चय पवित्र होता है। [क्षान्ति]—अर्थात् निन्दा-स्तुति, सुख, दुख, शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा, हानि, लाभ, मानापमान, हर्ष-शोक आदि छोड़ के—धर्म में सदा दृढ़निश्चय रहना। [आर्जव]—कोमलता, निरभिमानता, सरलता, सरल स्वभाव रखना, कुटिलता आदि दोष छोड़ देना, [ज्ञान]—सब वेदादि शास्त्रों को सांगोपांग पढ़के पढ़ाने का सामर्थ्य, विवेक, सत्य का निर्णय, जो वस्तु जैसी हो वैसी अर्थात् जड़ को जड़ और चेतन को चेतन जानना और मानना। [विज्ञान] पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे यथायोग्य उपयोग लेना। [आस्तिक्य] कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व-परजन्म, धर्म, विद्या, सत्संग, माता, पिता, आचार्य और अतिथियों की सेवा को न छोड़ना और निन्दा कभी न करना ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मणवर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहियें[1]।

(स प्र० ४ समुल्लास)

---

१. गीता १८.४२ के आधार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४]

क्षत्रिय

□

वेदों की अन्तःसाक्षी पर क्षत्रिय वर्ण—

अब लीजिये क्षत्रिय वर्ण को। क्षत्रिय के गुणों और कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में हम यहाँ वेदों की अन्तःसाक्षी के आधार पर विचार करते हैं—

उदाहरण के लिये ऋग्वेद का निम्न मन्त्र देखिये—

त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान्याचिषामहे।
सुमृडीकां अभिष्टये ॥ ऋग् ८-६७-१

अर्थात्—"[अभिष्टये] अभीष्ट सुखों की प्राप्ति के लिये [सुमृडीकान्] उत्तम सुख देने वाले [त्यान्] उन [क्षत्रियान्] क्षत्रिय [आदित्यान्] आदित्यों से [अवयाचिपामहे] हम याचना करें।"

जिस सूक्त का यह मन्त्र है, उसका देवता आदित्य है और सूक्त में मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र और आदित्य इन देवताओं के नाम आये हैं। इसी प्रकार अन्य स्थलों में प्राण, भग, अंश आदि अन्य देवताओं को आदित्य और क्षत्रिय कहा गया है। इस लिये इन्द्र, वरुण, रुद्र आदि देवों के जिन गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है, वे सब क्षत्रियों के गुण और कर्त्तव्य समझने चाहियें। उदाहरण के रूप में क्षत्रियों के गुणों की ओर निर्देश करने के लिये कुछ मन्त्र यहाँ भी उद्धृत कर देते हैं।

राष्ट्र-रक्षा क्षत्रिय का कर्त्तव्य—

क्षत्रियों को राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिये।

तद् विषयक कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं—

१—तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य। ऋग् १०-४०-९-३ अथर्व ५-१७-३
२—निषेदतुः साम्राज्यया…क्षत्रिया। ऋग् ८-२५-८
३—क्षत्राय राजन्यम्। यजुर् ३०-५

अर्थात् (१) "इस प्रकार क्षत्रिय का राष्ट्र रक्षित रहता है।" (२) "मित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वरुण ये दोनों क्षत्रिय साम्राज्य के लिये, उसकी रक्षा के लिये अपने-अपने अधिकार पदों पर बैठते हैं।" (३) "सबके उत्पादक परमात्मा ने क्षत्रिय [राजन्यम्] को क्षत्र अर्थात् राष्ट्र की रक्षा के लिये बनाया है।"

इन मन्त्रों में स्पष्ट रूप में क्षत्रियों का काम राष्ट्र की रक्षा करना बताया गया है।

क्षत्रियों को धृतव्रत होना चाहिए—

वेद के—

धृतव्रताः क्षत्रियाः। ऋग् ८-२५-८

धृतव्रताः क्षत्रियाः। ऋग् १०-६६-८

इन मन्त्रों में क्षत्रियों को धृतव्रत कहा है। व्रत के कई अर्थ होते हैं। ब्रह्मचर्यादि व्रतों को भी व्रत कहते हैं। जिन्होंने ब्रह्मचर्यादि व्रतों का धारण किया है, उत्तम कर्मों और नियमों का व्रत धारण किया है उन्हें धृतव्रत कहा जायेगा। क्षत्रियों के पालनार्थ को अपने जीवन में और राष्ट्र में उत्तम व्रतों का धारण करने वाला होना चाहिये।

क्षत्रियों को सत्य का रक्षक होना चाहिए—

१—ऋतावना······क्षत्रियाः। ऋग् ८-२५-८

२—ऋतस्य गोपा······क्षत्रियाः। ऋग् ७-६४-२

३—ऋतसापः क्षत्रियाः। ऋग् १०-६६-८

४—ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षान् ऋतस्य पस्त्यसदः। ऋग् ६-५१-९

५—ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः। ऋग् ६-५१-१०

अर्थात् (१) "क्षत्रिय ऋतवान् (अर्थात् सत्य पर चलने वाले) होते हैं।" (२) "क्षत्रिय ऋत के, सत्य के गोपा (अर्थात् रक्षक) होते हैं।" (३) "क्षत्रिय ऋतसाप अर्थात् सत्य से सम्बन्ध रखने वाले होते हैं।" (४) "हे वरुण, मित्र, इन्द्र आदि देवो! तुम ऋत अर्थात् सत्य के रथ पर चलनेवाले [रथ्यः] हो तुम ऋत के घर में रहने वाले [पस्त्यसदः] हो।" (५) "वे (इन्द्र, वरुण आदि) देव सत्य के धारण करने वाले [ऋतधीतयः] हैं और वचन के धनियों में सत्य का पालन करने वाले [वक्मराजसत्याः] हैं।"

इन वर्णनों से स्पष्ट है कि क्षत्रियों को सत्य का पालन करने वाला और रक्षक होना चाहिये।

क्षत्रियों को राष्ट्र से हिंसा मिटा देनी चाहिये—

क्षत्रियों के सम्बन्ध में वेद में अन्यत्र कहा है—

१—रिशादसः सत्पतीन्। ऋग् ६-५१-४

२—सुक्षत्रासो रिशादसः। ऋग् १-१९-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—को अस्या नो द्रुहो अवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रिये वस्या। अथर्व ७-१०३-१
४—अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम्। ऋग् ८-१८-२
५—व्रता रक्षन्ते अद्रुहः। ऋग् ८-६७-१३
६—ते न आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत। ऋग् ८-६७-१४

अर्थात्—(१) "ये आदित्य-लोग क्षत्रिय-लोग हिंसकों को मारने वाले [रिशादस] और भले लोगों के रक्षक हैं [सत्पतीन्]। (२) ये उत्तम क्षत्रिय और उत्तम बल वाले [सुक्षत्रासः] सैनिक लोग [मरुतः] हिंसकों को मारने वाले [रिशादसः] हैं। (३) [वस्यः] प्रशस्त धन [इच्छन्] देने की इच्छा वाला [कः] कौन [क्षत्रियः] क्षत्रिय [अस्याः] इस [अवद्यवत्याः] निन्दनीय बातों से मुक्त [द्रुहः] हिंसा से [नः] हमारा [उन्नेष्यति] उद्धार करेगा। (४) इन आदित्यों के [क्षत्रियों के] मार्ग हिंसारहित [अनर्वाणः] हैं। (५) ये आदित्य-क्षत्रिय द्रोहरहित हिंसारहित होकर व्रतों की रक्षा करते हैं। (६) हे आदित्यो—क्षत्रियो! तुम हमें हिंसक लोगों के [वृकाणाम्] मुख से छुड़ाओ।"

इन मन्त्रों के वर्णनों से स्पष्ट है कि क्षत्रिय लोग स्वयं किसी से द्रोह नहीं करते, अद्रुह हैं। वे स्वयं किसी की हिंसा नहीं करते क्योंकि वे अनर्वा हैं। जो औरों की हिंसा करते हैं, जो औरों से द्रोह करते, जो औरों को खाना चाहते हैं, उन्हें क्षत्रिय मारते हैं। क्षत्रिय हिंसकों को मारते हैं जिससे वे किसी की हिंसा न कर सकें। क्षत्रिय राष्ट्र में से हिंसा को मिटाना चाहते हैं जिससे कि सब लोग सब के साथ उपकार का जीवन व्यतीत करसकें। उनकी हिंसा अहिंसा के लिये है।

क्षत्रिय पापनाशक हों—

क्षत्रियों के सम्बन्ध में अन्यत्र वेद में कहा है कि—

१—त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति। ऋग् ६-५१-१०
२—अनागास्त्वे……दधतु। ऋग् ७-५१-१
३—आदित्यासो युयोतना नो अंहसः। ऋग् ८-१८-१०

अर्थात् (१) "वे आदित्य (क्षत्रिय) हम से सब पापों को [दुरिता] दूर करते हैं। (२) वे आदित्य (क्षत्रिय) निष्पापत्व में [अनागास्त्वे] धारण करें अर्थात् निष्पाप बनावें। (३) हे आदित्यो! (क्षत्रियो) हमें पाप से [अंहसः] छुड़ाओ।"

इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि क्षत्रियों का काम राष्ट्र के लोगों को पाप से छुड़ाना है। क्षत्रिय द्वारा दण्ड-धारण का एकमात्र उद्देश्य लोगों को पाप-कर्म से दूर रखना होता है।

क्षत्रियों को ज्ञानी होना चाहिए—

वेद में निम्न मन्त्र हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—आदित्यासः कवयः । ऋग् ३-५४-१०

२—तान् ·· उरुचक्षसो नॄन् । ऋग् ६-५१-९

३—अयं मित्र ·· सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः । ऋग् ३-५९-४

(१) "आदित्य लोग (क्षत्रिय लोग) कवि होते हैं अर्थात् प्रत्येक बात का गहरा ज्ञान रखने वाले क्रान्तदर्शी ज्ञानी होते हैं। (२) वे इन्द्रादि देव, महान् ज्ञान रखने वाले [उरुचक्षसः] मनुष्य [नॄन्] होते हैं। (३) यह मित्र नामक राज्याधिकारी उत्तम क्षत्रिय उत्तम बल वाला [सुक्षत्रः] और निर्माण की शक्ति रखने वाला ज्ञानी [वेधाः] होने के कारण ही नियुक्त हुआ है।"

क्षत्रियों को बलशाली होना चाहिए—

क्षत्रियों को बलशाली होना चाहिए। इस सम्बन्ध में वेद में कहा है—

१—दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु । ऋग् ७-१८-२५

२—अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत । ऋग् ७-६६-११

अर्थात् (१) "हे सैनिको [मरुतः] तुम्हारा बल [क्षत्रम्] नाश न होने योग्य और जीर्ण न किया जा सकने योग्य तथा राष्ट्र की परिचर्या– सेवा करने वाला [दुवोयु[1]] हो। (२) वरुण, मित्र अर्यमा ये आदित्य लोग औरों से प्राप्त न किया जा सकने वाला। [अनाप्यम्] बल [क्षत्रम्] धारण करते हैं।"

क्षत्रियों को तेजस्वीं होना चाहिए—

क्षत्रियों को तेजस्वी होना चाहिए, ऐसा वेद में स्थान-स्थान पर कहा है! उदाहरण के लिये देखिये —

१—ते हि श्रेष्ठवर्चसा । ऋग् ६-१-४

२—अदब्धान् । ऋग् ६-५१-४

३—ये शुभ्रा घोरवर्पसः । ऋग् १-१९-५

४—अदब्धाः सन्ति पायवः । ऋग् ८-१८-२

५—ये अदब्धासः स्वयशसः । ऋग् ८-६७-१३

६—राजन्ये (या त्विषिः) सा नो देवी ऐतु । अथर्व ६-३८-४

अर्थात् (१) "वे (इन्द्र आदि आदित्य देव), श्रेष्ठ तेज वाले हैं। (२) वे किसी से दबते नहीं हैं। (३) सैनिक लोग [मरुतः] जो कि शुभ्र वर्णवाले और शत्रुओं के लिए डरावने तेजस्वी रूपवाले हैं। (४) ये आदित्य—क्षत्रिय—किसी से न दबने वाले रक्षक हैं। (५) जो आदित्य—क्षत्रिय लोग किसी से न दबने वाले और अपने यज्ञ से यशस्वी हैं। (६) क्षत्रिय में [राजन्ये] जो प्रताप होता है वह दिव्य प्रताप [देवी त्विषिः] हम में आवे। इन वर्णनों से स्पष्ट है कि क्षत्रियों को किसी से न दबने वाला तेजस्वी होना चाहिए।"

१. परिचरणकाम इति सायणः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रियों को निर्भय होना चाहिए—

क्षत्रियों को निर्भय होना चाहिए ऐसा वेद में स्थान-स्थान पर कहा है। उदाहरण के लिये निम्न मन्त्र देखिये—

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।। अथर्व २-१५-४

अर्थात् 'जिस प्रकार ब्राह्मण [ब्रह्म] और क्षत्रिय [क्षत्रं] न किसी से डरते हैं, और न हिंसित होते हैं। इस मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों को किसी से डरना नहीं चाहिए। उन्हें सर्वथा निर्भय रहना चाहिए।"

क्षत्रिय को योद्धा होना चाहिए—

क्षत्रियों को शूर-वीर और शस्त्रास्त्र में कुशल होना चाहिए, ऐसा वेद में स्थान-स्थान पर कहा है। उदाहरण के लिए निम्न मन्त्र-खण्ड देखिए—

आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो अतिव्याधी महारथो जायताम् । यजुर् २२-२२

अर्थात् "हे परमात्मन् हमारे राष्ट्र में शूरवीर बाण चलाने में निपुण, शत्रुपर गहरा प्रहार करने वाले, बड़े-बड़े रथों पर चढकर शत्रुओं से लड़ने वाल क्षत्रिय [राजन्यः] उत्पन्न हों। इस प्रकार स्पष्ट है कि क्षत्रियों को शूर-वीर और युद्ध-विद्या में निपुण होना चाहिए।"

क्षत्रियों को सदा प्रजाओं को प्रसन्न रखना चाहिए—

प्रजाओं की भली प्रकार रक्षा और पालन-पोषण करके क्षत्रियों को सदा उन्हें प्रसन्न रखना चाहिए। वेद में ऐसा अनेक स्थानों पर कहा गया है। उदाहरण के लिए निम्न मन्त्र देखिये—

१—त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान् याचिषामहे ।
सुमृक्तिकां अभिष्टये ।। ऋग् ८-६७-१

२—अयं मित्रः सुशेवः । ऋग् ३-५९-४

३—आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन । ऋग् ७-५१-१

४—स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः । ऋग् ५-५१-१२

५—आदित्यासो ·····मादयन्ताम् ऋग् ७-५१-२

६—सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत । अथर्व १५-८-१

अर्थात्—(१) "अभीष्ट सुख की प्राप्ति के लिए, उत्तम सुख देने वाले उन क्षत्रिय आदित्यों से हम याचना करें। (२) यह मित्र देव - आदित्य उत्तम सुख देने वाला है। (३) हम आदित्यों (क्षत्रियों) की रक्षा द्वारा [अवसा] अत्यन्त शान्ति देने वाले [शन्तमेन] नये-नये सुख और कल्याण से [शर्मणा] युक्त होवें। (४) आदित्य (क्षत्रिय) लोग हमारी उत्तम स्थिति के लिये (कल्याण के लिये) होवें (५) आदित्य लोग हमें हर्षित करें। (६) वह क्योंकि प्रजा का रंजन करता है इस लिए राजा कहलाता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन मन्त्रों के वर्णन में स्पष्ट है कि प्रजा की रक्षा और सुख-समृद्धि बढ़ाकर उस का रंजन करना, उसको प्रसन्न रखना क्षत्रियों का प्रधान कर्त्तव्य है।

क्षत्रियों को राष्ट्र में उत्तम नीति चलानी चाहिए—

क्षत्रियों को अपने राष्ट्र में सदा उत्तम नीति चलानी चाहिए। इस सम्बन्ध में अनेक स्थानों पर उपदेश किया गया है। उदाहरण के लिए निम्न मन्त्र देखिये—

१—आदित्यासो नयथा सुनीतिभिः। ऋग् १०-६३-१३

२—सुवनस्य दातॄन् आदित्यान् यामि। ऋग् ६-५१-४

३—ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्चजनाः।

सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः॥ ऋग् ६-५१-११

इन मन्त्रों का अर्थ क्रम से इस प्रकार है—

(१) "हे आदित्य—क्षत्रिय लोगो! हमें उत्तम नीतियों द्वारा [सुनीतिभिः] चलाओ। (२) उत्कृष्ट निवास के [सुवसनस्य] देने वाले आदित्य—क्षत्रिय लोगों को प्राप्त होता हूँ। (३) [इन्द्रः] सम्राट् और उसके [पूषा] पूषा [भगः] भग, आदि कर्मचारी [पृथिवी] हमारी मातृभूमि [अदितिः] अदीन राष्ट्रशक्ति [पञ्चजनाः] पांचों जन [ते] वे सब [नः] हमारे [क्षाम] निवास को [वर्धन्] बढावें, वे सब हमारे लिये [सुशर्माणः] सुन्दर सुख देने वाले [स्ववसः] अच्छी तरह रक्षा करने वाले [सुनीथाः] अच्छी तरह मार्ग दिखाने वाले [सुत्रात्रासः] अच्छी तरह पालन करने वाले और [सुगोपाः] अच्छी तरह सम्भालकर रखने वाले हों। ये इन्द्र आदि देव पृथिवी पर आर्यव्रतों की रचना करने वाले हैं।"

इन मन्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि इन्द्र आदि आदित्य (क्षत्रिय) देवलोगों को सुनीति पर चलाते हैं। वे लोगों को उत्तम नीतियों पर जीवन बिताने के उत्तम मार्गों पर चलाने के कारण उन्हें सुवसन अर्थात् उत्तम निवास प्रदानकर्ता कहा गया। ये इन्द्रादि देव सुनीथ हैं—उत्तम मार्गों पर चलाने वाले हैं। वे उत्तम नीति पर चलाकर लोगों को उत्तम निवास देते हैं, उत्तम सुख देते हैं, उत्तम रक्षा करते हैं, उत्तम पालना करते हैं और सभी प्रकार से उन्हें सम्भालकर रखते हैं। जितने भी आर्य लोगों के, श्रेष्ठ लोगों के व्रत हैं—नियम हैं—उनकी ये इन्द्र आदि देव अपने राष्ट्र में रचना करते हैं।

इससे स्पष्ट है कि क्षत्रिय लोगों को अपने राष्ट्र में सुनीति, उत्तम राजनीति चलानी चाहिए। उनकी राजनीति में किसी प्रकार की मलिनता नहीं होनी चाहिये।

क्षत्रियों को यज्ञ-यागादि करने चाहियें—

क्षत्रियों को यज्ञ-यागादि करनेवाला होना चाहिये, ऐसा भी आदेश वेद में किया गया है। उदाहरण के लिये निम्न मन्त्र देखिये—

१—क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतः······अध्वराणामभिश्रियः। ऋग् १०-६६-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः । अथर्व ७-१०३-१

(१) "इन्द्र आदि क्षत्रिय-लोग यज्ञ में जाने वाले [यज्ञनिष्क्रृत:[१]] हैं और हिंसारहित यज्ञों का [अध्वराणाम्[२]] सेवन करने वाले [अभिश्रिय:[३]] हैं। (२) देवों में कौन यज्ञ की कामना वाला [यज्ञकामः] कौन पूर्ति की कामना वाला लम्बी आयु को देता है।"

प्रथम मन्त्र में तो स्पष्ट ही क्षत्रियों को यज्ञ करने वाला कहा है। क्षत्रिय-लोग हिंसारहित यज्ञों को करने वाले हैं, ऐसा कहकर यह भी निर्देश कर दिया गया कि क्षत्रियों को यज्ञों में हिंसा नहीं होनी देनी चाहिए। दूसरे मन्त्र में भी "यज्ञ-काम" शब्द क्षत्रिय के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। मन्त्र के पूर्वार्द्ध के एक उपखण्ड में यह प्रश्न उठाया गया है कि—कौन क्षत्रिय हमारा द्रोह से (हिंसा से) उद्धार करेगा? उसी प्रसंग में मन्त्र के इस उत्तरार्द्ध में प्रश्न पूछा गया है कि कौन यज्ञ-काम और पूर्ति-काम हमें दीर्घ-आयु करेगा? तात्पर्य यह है कि यज्ञ की कामना वाला यज्ञ-यागादि करने की इच्छा वाला—क्षत्रिय ही अपने राष्ट्र के लोगों को दीर्घ-आयु दे सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि राष्ट्र में यज्ञ-यागादि का प्रचार होने से लोगों की आयु-वृद्धि होती है क्योंकि ये यज्ञ-यागादि कर्म एक विशेष प्रकार से लोगों के शरीरों की पूर्ति करते हैं जिससे उन का स्वास्थ्य वृद्धि को पाता है। इसीलिये यज्ञ को मन्त्र में पूर्ति-काम भी कहा है।

क्षत्रियों के गुणों पर ऋषि दयानन्द—

इस प्रसंग को समाप्त करने से पूर्व ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में वेदादि शास्त्रों के आधारपर क्षत्रियों के गुणों की ओर जो निर्देश किया है, उसे भी देखलेना चाहिए—

"न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़कर श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना, सब प्रकार से सब का पालन, विद्या-धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना, अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़वाना, और विषयों में न फंसके जितेन्द्रिय रहके सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना[४]—ये पांच कर्म क्षत्रिय के हैं। [शौर्य] सैकड़ों सहस्रों से भी अकेला युद्ध करने में भय न होना। [तेजः] सदा तेजस्वी अर्थात् दीनता रहित, प्रगल्भ, दृढ़ रहना। [धृतिः] धैर्यवान् होना। [दाक्ष्य] राजाओं और प्रजा-सम्बन्धी

---

१. यज्ञं प्रति निर्गमनं यज्ञनिर् तस्य कर्त्तार इति सायणः।
२. हिंसारहितानां यज्ञानामिति सायणः।
३. अभिसेवकः इति सायणः। श्रिञ् सेवायाम्।
४. मनु० १।८९ के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना। [युद्ध] युद्ध में भी दृढ़ निःशंक रहके उससे कभी न हटना, न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे। आप बचे, जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना, [दान] दानशील रहना [ईश्वरभाव] पक्षपात-रहित होके सब के साथ यथायोग्य वर्त्तना। विचार के देना, प्रतिज्ञा पूरी करना, उसको कभी भंग न होने देना। ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं[1]।"

---

१. गीता १८।४३ के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५] वैश्य

□

वेदों की अन्तःसाक्षी पर वैश्य वर्ण—

अब आइये वैश्य-वर्ण पर विचार करें। वैश्य वर्ण पर पुरुषसूक्त के आधार पर देख आये हैं कि वैश्य शरीर का मध्यभाग है। शरीर का मध्यभाग-पेट जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग के लिये रस-भोजन तैयार करके देता है उसी प्रकार समाज का जो भाग राष्ट्र के लिये भोजन, वस्त्रादि सामग्री जुटाता है उसे वैश्य कहते हैं। भोजन, वस्त्रादि सामग्री खेती, पशुपालन, व्यापार, व्यवसाय, लेन-देन आदि के द्वारा ही उत्पन्न हो सकती और सब जनता तक पहुंच सकती है। इसलिये खेती, पशु-पालन, व्यवसाय, लेन-देनादि सब काम वैश्य के कहे जाते हैं। संस्कृत में "विश्" प्रजा को कहते हैं। यह शब्द प्रायः "विशः" अपने बहुवचनान्त रूप में प्रयुक्त होता है। जो "विशः" अर्थात् प्रजाओं के लिये साधु हो, हितकारी हो, उसे वैश्य[1] कहते हैं। वैश्य भोजन-वस्त्रादि सब प्रजाजनों तक पहुंचाकर उनका हित करता है। इसलिये वह वैश्य है। वेद में वैश्य के लिये विश्य शब्द भी आता है। दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। प्रजावाचक "विशः" शब्द भी वैश्य के लिये बहुत बार प्रयुक्त हुआ है। किसी भी राष्ट्र की प्रजा में सदा ही वैश्यों की बहुत अधिक संख्या रहेगी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र वैश्यों की अपेक्षा सदा ही बहुत थोड़े रहेंगे। प्रजाओं का बहुत बड़ा भाग वैश्य होने के कारण वैश्यों को प्रजावाची विशः शब्द से ही कह दिया जाता है। लौकिक संस्कृत तक में विश् शब्द वैश्य के लिये भी प्रयुक्त होता है।

वैश्यों के कर्त्तव्य की ओर एक भावगर्भ संकेत **मरुद्भ्यो वैश्यम्** (यजुर् ३०।५) इस मन्त्र-खण्ड में किया गया है कि सब के उत्पादक सविता परमात्मा ने वैश्य को मरुतों के लिये बनाया है। मरुत् का शब्दार्थ है—मरने और मारने वाला। मनुष्य मरते भी रहते हैं और युद्ध आदि में लड़-झगड़कर एक-दूसरे को मारते भी रहते हैं। इसलिये मनुष्य मरुत् कहलाते हैं। वेद में सैनिकों को विशेष रूप से मरुत् कहा जाता है। क्योंकि सैनिकों में मरने-मारने का गुण विशेष रूप से पाया जाता है। परन्तु इस वाक्य

१. विशि साधुः विश्यः। विश्य एव वैश्यः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मरुत् का अर्थ सैनिक न करके सामान्य मनुष्य ही करना होगा। क्योंकि जिस मन्त्र का यह वाक्य है उसमें "ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्" (यजुर् ३०।५) ऐसा कहकर चारों वर्णों के कर्त्तव्य की ओर संक्षिप्त निर्देश किया गया है। "ब्रह्मणे ब्राह्मणं" ब्राह्मण को ब्रह्म अर्थात् वेद और वेदोपलक्षित ज्ञान के लिये बनाया गया है। ब्राह्मण को ज्ञान-अर्जन और प्रजाओं में उसके प्रचार का काम करने के लिये बनाया गया है। "क्षत्राय राजन्यं" राजन्य (क्षत्रिय) को राष्ट्र के क्षत-त्राण के लिये बनाया गया है। राज्य-प्रबन्ध द्वारा राष्ट्र की रक्षा करना क्षत्रियों का काम है "तपसे शूद्रम्" शूद्र को तप के लिये बनाया है। सब वर्णों की सेवा रूप तप करना शूद्र का काम है। इन वाक्यों के मध्य ग्रथित वाक्य है "मरुद्भ्यो वैश्यम्" अर्थात् मरुतों के लिये वैश्य को बनाया गया है। इसलिये इस वाक्य में मरुतों के कर्त्तव्यों की ओर निर्देश होना चाहिए। यहाँ मरुत् का अर्थ सैनिक नहीं किया जा सकता। क्योंकि सैनिक होना क्षत्रिय का क्षेत्र है, वैश्य का नहीं। अतः यहाँ मरुत् का अर्थ सामान्य मनुष्य लेना होगा। अब मन्त्र-खण्ड का अर्थ हुआ वैश्य को मनुष्यों के लिये बनाया गया है। मनुष्यमात्र की पालना जिन भोजन, वस्त्र आदि साधनों द्वारा होती है, उन को कृषि और व्यापार द्वारा उत्पन्न करना फिर उन्हें मनुष्यों तक पहुंचाना वैश्य का कर्त्तव्य है।

वेद में स्थान-स्थान पर इसकी ओर निर्देश किया गया है। तद्यथा—

१—यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्। ऋग् ५-४५-६

२—याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरूषु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ऋग् १-११२-११

इन मन्त्रों का अर्थ क्रम से इस प्रकार है—

(१) "हे अश्वियो! [यया] जिस बुद्धि से [वङ्कुः] सर्वत्र गति करने वाला [वणिक्] व्यापारी [पुरीषम्] लोगों का पालन-पोषण करने वाले अन्न आदि को [आप] प्राप्त करता है, उस बुद्धि को हम प्राप्त करें।"

हमने मन्त्र में पुरीष[1] का अर्थ पालन-पोषण करने वाला अन्न आदि किया है। यह शब्द "पॄ" धातु से, जिसका अर्थ पालन और पूरण करना होता है, बनता है। जो पालना करे और क्षति की पूर्त्ति करे, उसे पुरीष कहेंगे। इस योगार्थ के आधार पर यह शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। ब्राह्मणग्रन्थों में इसके अन्न आदि अर्थ भी किये गये हैं। उदाहरण के लिये देखिये—

१—अन्नं पुरीषम्। शतपथ ८-१-४-५

२—पशवः पुरीषम्। " " ८-७-४-१६

३—गोष्ठः पुरीषम्। ताण्ड्य० १३-४-१३

---

१. शॄपॄभ्यां फिच्च। उणा० ४।२७।। पिपर्ति तत्पुरीषम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति। शतपथ २-१-१-७

इन स्थलों में (१) अन्न को, (२) पशुओं को, (३) गोष्ठ अर्थात् पशुओं के रहने के स्थानों को पुरीष कहा गया है। अन्तिम वाक्य में जो पुरुष श्री (अर्थात् धन-सम्पत्ति) को प्राप्त करता है उसे "पुरीष्य" कहा गया है। इस से धन-सम्पत्ति का नाम पुरीष सिद्ध होता है। मन्त्र-खण्ड में व्यापारियों का वर्णन चल रहा है। इसलिये यहाँ पुरीष का अर्थ विविध प्रकार के अन्न, भांति-भांति के पशु, मकान और अनेक प्रकार की धन-सम्पत्ति करना होगा। मन्त्र में व्यापारी के लिए वणिक् शब्द का प्रयोग हुआ है। वणिक्[1] शब्द "वण" धातु से बनता है, जिसका अर्थ व्यवहार करना होता है। जो भांति-भांति के व्यवहार-व्यापार करे, उसे वणिक् कहते हैं। मन्त्र में वणिक् का एक विशेषण "वङ्कुः"[2] आया है। यह शब्द वचु "धातु से" जिसका अर्थ गति करना होता है, बनता है। जो व्यापार के लिये देश-देशान्तर में गति करे, आवे-जावे, उसे वङ्कु कहेंगे। सायणाचार्य ने प्रस्तुत मन्त्र में वङ्कु का अर्थ वनगामी किया है। वन के वेद में कई अर्थ होते है। जंगल भी, पानी भी होता है। व्यापारियों को वनगामी होना चाहिए। उन्हें जंगलों में जाना चाहिए। उन्हें विभिन्न प्रकार की लकड़ियों, औषधियों और दूसरे पदार्थ जंगलों में से लाकर उनका व्यापार करना चाहिये। उन्हें समुद्रों में जाकर वहाँ से मोती, मूंगे आदि विभिन्न सामुद्रिक पदार्थों को लाकर उनका व्यापार करना चाहिए। मन्त्र का भाव यह भी निकलता है कि व्यापारियों को जहाजों में बैठकर समुद्र-पार के देशों में भी व्यापार के लिये जाना चाहिये। इस प्रकार इस मन्त्र से वैश्यों के सम्बन्ध में निम्न परिणाम निकलते हैं—

१. उन्हें व्यापार के लिये देश-देशान्तर में जाना चाहिये।
२. उन्हें जंगलों में जाकर वहाँ से भांति-भांति के पदार्थ लाकर उनका व्यापार करना चाहिए।
३. उन्हें समुद्रों में जाकर वहाँ से मोती-मूंगे आदि विविध प्रकार के सामुद्रिक पदार्थ लाकर उनका व्यापार करना चाहिये।
४. उन्हें पुरीष अर्थात् अनाज, पशु और सोना चान्दी आदि धन-सम्पत्ति को उत्पन्न करके उसका व्यापार करना चाहिये।
५. उन्हें व्यापार के लिये जहाजों में बैठकर समुद्र-पार के देशों में भी जाना चाहिए।
६. उन्हें व्यापार के लिये उपयोगी विशेष बुद्धि को अपने में उत्पन्न करना चाहिये।

अब अगले मन्त्र को लीजिये—

---

१. पणेरिज्यादेश्च वः। उणा० २।७०॥ पणायति व्यवहरतीति वणिक्।
२. वङ्कु। वंचु गतौ। औणदिक उ-प्रत्ययः। बहुवचनात्कुलम्। इति सायणः।
ऋग् १-५१-११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) "[सुदानू] उत्तम रीति से दान देने वाले अश्वियो! [याभिः] जिन तुम्हारी रक्षाओं के कारण [औशिजाय[1]] मेधावान् और [दीर्घश्रवसे] दीर्घकाल तक जिसने विद्याओं का श्रवण किया है ऐसे [वणिजे] व्यवहार-कुशल वैश्य के लिये [कोशः] धन-कोश [मधु] मधु को [अक्षरत्] बहाता है, और [याभिः] जिन अपनी रक्षाओं से [कक्षीवन्तम्] हस्तकुशल शिल्पी [स्तोतारं] स्तोता की [आवतम्] तुम रक्षा करते हो [ताभिः] उन [ऊतिभिः] अपनी रक्षाओं के साथ [अश्विना] हे अश्वियो तुम [ऊषु] भले प्रकार [आगतम्] आओ।"

मन्त्र में वणिक् को औशिज कहा है। यह शब्द उशिज् शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होकर बनता है। इस प्रकार उशिज् और औशिज का एक ही अर्थ हो जाता है। निघण्टु में यास्काचार्य ने उशिज् का अर्थ मेधाशाली किया है। उशिज् शब्द उणादि कोश (२।७१) में वश् धातु से सिद्ध किया गया है। इस धातु का अर्थ कान्ति (अर्थात् इच्छा करना और) प्रकाश करना होता है। इसलिये उशिज् उन मेधावी विद्वानों को कहेंगे जो भांति-भांति के विद्या-विज्ञानों को जानने की इच्छा रखते हैं। यहाँ यह शब्द वणिक् का विशेषण होकर आया है। जो वणिक् नई-नई बातों के सीखने के इच्छुक और नये-नये व्यापार-व्यवसायों को करने की इच्छा वाले होंगे, उन्हें उशिक् या औशिज कहा जायेगा। मन्त्र में वणिक् का एक दूसरा विशेषण दीर्घश्रवस् आया है। जिसने दीर्घकाल तक गुरु के मुख से विविध विषयों का श्रवण किया हो, उसे दीर्घश्रवस् कहते हैं। भाव यह है कि वैश्यों को अपने कामों से सम्बन्ध रखने वाली विद्याओं को गुरुकुलों में यथोचित समय तक सीखकर अपने कार्यों में लाना चाहिए।

मन्त्र में एक शब्द कक्षीवान् भी आया है। यह भी वणिक् का ही विशेषण है। यद्यपि इसका प्रयोग इस प्रकार हुआ है कि यह शब्द आपाततः वणिक् का विशेषण प्रतीत नहीं होता। वेद में अन्यत्र कक्षीवान् शब्द औशिज का विशेषण होकर प्रयुक्त हुआ है। उशिक् का पुत्र होने के कारण ही उसे औशिज कहा गया है। इसलिये प्रस्तुत मन्त्र को औशिज का और उसके द्वारा वणिक् का विशेषण समझना चाहिए। कक्षीवान् का अर्थ यास्काचार्य ने निरुक्त (६-१०) में कक्षावान् अर्थात् कक्ष्याओं वाला ऐसा किया है। कक्ष्या का अर्थ यास्क ने ही निघण्टु (२-१५) में अंगुली किया है। कक्ष्या का धात्वर्थ यास्क ने निरुक्त (३-९) में 'कर्मों को प्रकाशित करने वाली किया है। अंगुलियों के द्वारा अनेक प्रकार के काम किये जाते हैं, इसलिए उन्हें कक्ष्या कहते हैं। कक्ष्याओं में-अंगुलियों में रहने वाली क्रियाओं को (उनके द्वारा होनेवाले कामों को) भी कक्ष्या कहा जाता है। भाव यह है कि अंगुलियों द्वारा जो

१. उशिग् मेधाविनाम। निघं० ३-१५। उशिगेव औशिजः। प्रज्ञादिषु पठितत्वात् प्रज्ञादिभ्यश्चेति स्वार्थे अण्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भांति-भांति की शिल्पक्रियाएँ की जाती हैं उन्हें भी कक्ष्या कहा जायेगा। इन कक्ष्याओं वाले पुरुष को कक्षीवान् कहा जायेगा। जिनकी अंगुलियों, में, जिनके हाथों में कौशल है और उसके द्वारा विविध प्रकार के शिल्पों को जो करते हैं, ऐसे विद्वानों को कक्षीवान् कहा जायेगा। ऋषि दयानन्द ने ऋग् १-१८-१ के भाष्य में कक्षीवान् का यही अर्थ किया है। यहाँ यह शब्द वणिक् के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसलिये जो वैश्य अपने हाथों से भांति-भांति की चीजों का निर्माण करके उनका व्यवसाय करते हैं, वे कक्षीवान् कहलायेंगे।

मन्त्र में कहागया है कि अश्विनौ की रक्षा में रहकर वैश्यों का कोष मधु बहाने लगता है। अश्विनौ परिवहन-विभाग के राजकर्मचारियों को कहते हैं। कोश खजाने को कहते हैं। वैश्य लोग व्यपार में अपना कोश लगाते हैं। अपना धन खर्च करते हैं। अश्विनौ की उनको रक्षा प्राप्त होती है। इस रक्षा का परिणाम यह होता है कि उनका व्यापार खूब फलता-फूलता है। व्यापार में लगाये हुए उनके कोश से उन्हें खूब मधु अर्थात् फल-लाभ और तज्जन्य सुख-मंगल प्राप्त होता है (जैसे किसी को कोश अर्थात् मधु-मक्खियों के छत्ते से मधु प्राप्त होता है)।

मन्त्र में कक्षीवान् का एक विशेषण स्तोता आया है। स्तोता का अर्थ किसी के गुणों का बखान करने वाला, प्रशंसा करने वाला और प्रार्थना करने वाला होता है। कक्षीवान् को अश्वियों का स्तोता कहा गया है। इस विशेषण की ध्वनि यह है कि जब वैश्यों को अपने काम में किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित हो तो, उन्हें अश्वियों और उनसे उपलक्षित अन्य राजकर्मचारियों से उन्हें दूर करने की प्रार्थना करनी चाहिए और राजकर्मचारियों को इन कठिनाइयों को दूर करना चाहिए।

इस प्रकार इस मन्त्र से वैश्यों के सम्वन्ध में निम्न परिणाम निकलते हैं—

१. वैश्यों को औशिज होना चाहिए। उन्हें नई-नई बातों को सीखने और नये-नये व्यापार-व्यवसायों को करने की इच्छावाला होना चाहिए। इस वृत्ति के बिना वैश्य की उन्नति नहीं हो सकती।
२. वैश्यों को गुरुकुलों में यथोचित समय लगाकर वैश्य के कर्मों से सम्बन्ध रखने वाली विविध विद्याओं को सीखना चाहिए। तदनन्तर ही उन्हें व्यापार, कृषि आदि के कामों में पड़ना चाहिए।
३. वैश्यों को भांति-भांति के शिल्पों द्वारा विविध प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करके उनका भी व्यापार करना चाहिए।
४. वैश्यों को व्यापार में धन का विनियोग करना चाहिए। जो वस्तु वे स्वयं नहीं बनासकते उनको (उनका निर्माण करने वाले वैश्यों से खरीदकर उन्हें) उन का व्यापार करना चाहिए।
५. राज्यकर्मचारियों को वैश्यों की सब प्रकार की रक्षा और सहायता करनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य प्रजा के लिए सत्य, सदाचार आदि आर्यत्व के जिन गुणों का होना आवश्यक है, वे तो सब वैश्यों में भी रहेंगे ही, इसलिए उन्हें यहाँ दिखाना आवश्यक नहीं समझा गया।

वैश्यों के गुणों पर ऋषि दयानन्द—

इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व ऋषि दयानन्द ने शास्त्रों के आधार पर सत्यार्थप्रकाश में वैश्यों के जो गुण लिखे हैं, उन्हे भी देख लेना चाहिए—

"गाय आदि पशुओं का पालन, वर्द्धन करना, विद्या-धर्म की वृद्धि करने-कराने के लिए धन आदि का व्यय करना, अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, वेदादि शास्त्रों को पढ़ना, सब प्रकार के व्यापार करना, कुसीद (अर्थात् एक सैकड़े में चार, छः, आठ, बारह, सोलह वा बीस आनों से अधिक व्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना और न देना, खेती करना ये छः वैश्य के कर्म हैं।"

---

१. मनु १।९० के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[६] शूद्र

वेद के पुरुष-सूक्त में शूद्र की पैर से उपमा दी गई है। जो काम शरीर में पैर का है वही समाज में शूद्र का है। पैर शरीर को ऊपर उठाये रखते हैं। उसे उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाते हैं। स्वयं मिट्टी, कीचड़, धूल आदि में रहते हैं पर शेष शरीर को साफ बचाये रखते हैं। पैरों में बाकी शरीर की सेवा का ही यह एक प्रधान गुण है। और कोई विशेष गुण पैरों में नहीं होता। जो लोग ज्ञान आदि विशेष गुण अपने में नहीं रखते, इसलिये वे समाज में ब्राह्मण-आदि अन्य अंगों की सेवा का ही काम कर सकते हैं, वे शूद्र कहलाते हैं। इसलिए ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि में शूद्र के सम्बन्ध में लिखा है—

"जो विद्या-विहीन, जिसको पढ़ाने से भी विद्या न आ सके, शरीर से पुष्ट, सेवा में कुशल हो, वह शूद्र है।" किसी वंश-विशेष में जन्म लेने के कारण कोई शूद्र नहीं है। राष्ट्र के सब बच्चों को पढ़ाने के लिये गुरुकुलों में भेजा जायेगा। वहाँ जो बच्चे पढ़ने का अवसर दिये जाने पर भी पढ़-लिख नहीं सके, विद्या-विज्ञान की कोई बात नहीं सीखसके और ऐसा काम नहीं कर सकते, जिसमें बुद्धि की, समझ की, कौशल की विशेष आवश्यकता पड़ती हो, उन्हें शूद्र कहा जायेगा। जो लोग ब्राह्मण आदि वर्णों के घर में सेवा का काम करके (अथवा किन्हीं कर्म-संस्थाओं में शरीर से किये जाने वाले भार उठाने आदि के कर्मों को करके) अपना जीवन-निर्वाह और राष्ट्र की सेवा करते हैं, वे शूद्र कहलायेंगे। ये सब पुरुष-सूक्त वर्णित "पद्भ्यां शूद्रो अजायत" द्वारा दी गई पैरों की उपमा से सूचित होते हैं। उसके अतिरिक्त यजुर्वेद के 'तपसे शूद्रम्'। यजुर् (३०-५) वाक्य में भी शूद्र के कर्त्तव्यों की ओर संकेत किया गया है।

इस वाक्य का पूर्णार्थ यह है कि सबके उत्पादक सविता परमात्मा ने "शूद्र को तप के लिये बनाया है।" इससे पहले कि तीन वाक्यों में ब्राह्मण आदि तीन वर्णों के कर्त्तव्यों की ओर संकेत किया गया है। इस वाक्य में चौथे वर्ण शूद्र के कर्त्तव्यों की ओर संकेत किया गया है। तप का शब्दार्थ कष्ट सहना होता है। तप का सम्बन्ध वेद में अन्यत्र ब्राह्मणादि के साथ भी वर्णन किया गया है। ब्राह्मण आदि को भी तपस्वी होने के लिये कहा गया है। ब्राह्मण आदि के साथ जब तप का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध बताया जाता है तब इस का अर्थ शरीर से सम्बन्ध रखने वाले स्थूल कष्टों के अतिरिक्त मन और आत्मा से सम्बन्ध रखने वाले सूक्ष्म कष्टों को सहन करना भी होता है। शान्त, दान्त और विद्यावान् आदि बनने में जो सूक्ष्म प्रकार के मानसिक और आत्मिक कष्ट सहने पड़ते हैं, उनका भी समावेश अभीष्ट होता है। शूद्र के तप में इन सूक्ष्म प्रकार के तपों का ग्रहण नहीं करना होता। यदि इन तपों को भी शूद्र के तप में समाविष्ट कियाजाये तो फिर ब्राह्मण और शूद्र में कोई भेद ही नहीं रहता। शूद्र का ब्राह्मणादि से यह भेद वेद ने स्पष्ट रूप में किया है। इसलिये शूद्र के तप में केवल शरीर के स्थूल कष्टों का ही समावेश करना होगा। शूद्र के जो काम हैं, वे शरीर से ही सम्बन्ध रखते हैं। उसे अपने कामों को करते हुए अपने शरीर को ही कष्ट देना होता है। द्विजों के घरों में बर्तन मांजना, झाड़ू देना, भोजन बनाना, पानी आदि भरना, भार उठाना, सड़कों पर रोड़ी आदि कूटना, तथा इसी प्रकार के दूसरे भी जितने बुद्धि-अनपेक्ष (Unsk lled) काम हैं, वे शूद्र के काम हैं और इनमें शूद्रों को मुख्यतः शरीर का तप करना पड़ता है। यजुर्वेद के 'तपसे शूद्रम्' वाक्य का यही अभिप्राय है।

शूद्र के साथ किसी प्रकार की घृणा का भाव वेद में नहीं है। यह बात पाठकों को हृदयंगम करलेनी चाहिए कि शूद्र भी समाज-शरीर का उसी प्रकार घनिष्ठ और प्यारा अंग है जिस प्रकार हमारे शरीर का घनिष्ठ और प्यारा अंग पैर होता है। शूद्र भी अपने कामों द्वारा समाज-शरीर की सेवा ही कर रहा होता है। इसीलिए वेद में (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की भांति शूद्र वर्ण को भी इन्द्र का शेवधिपा (यजु: ३३-८२, ऋग् ८-५१-९) कहा गया है। इन्द्र (सम्राट्) राष्ट्र अथवा समाज-सुखों के जिस शेवधि खजाने का निर्माण करता है, उसका रक्षक शूद्र भी है। शूद्र भी इन्द्र की आज्ञा में चलता हुआ अपने निर्धारित कर्मों को प्रसन्नता से (मनु के शब्दों में "अनसूयया" १-९१) करताहुआ समाज के सुख बढ़ाने में योग देता है। इस भांति वर्णों का भेद वेद की दृष्टि में विभिन्न प्रकार के कार्यों द्वारा समाज की सेवा के भाव पर अवलम्बित है। उसका आधार जन्म पर आश्रित ऊंच-नीच की भावना कदापि नहीं। वेद में ऐसी हीन भावना के लिए कोई स्थान नहीं है।

शूद्र के गुणों पर ऋषि दयानन्द—

ऋषि दयानन्द ने आर्यशास्त्रों के आधार पर शूद्र के जो गुण लिखे हैं, वे भी इसी प्रकार प्रसंङ्ग में देख लेने चाहिएँ—

"शूद्र को योग्य है कि निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवनयापन करना यही एक कर्म शूद्र का है[1]।"

---

१. मनु० १.९१ के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७] आश्रम-व्यवस्था

□

जिस प्रकार मनुष्य-समाज को वेद ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों विभागों में बाँटा है, उसी प्रकार प्रत्येक नर-नारी के वैयक्तिक जीवन को भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों में विभक्त किया है।

ब्रह्मचर्याश्रम—

ब्रह्मचर्याश्रम में प्रत्येक बालक और बालिका को अपनी रुचि, संस्कार और सामर्थ्य के अनुसार चारों वर्णों में से किसी एक को अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर उसके कर्त्तव्यानुरूप योग्यता-सम्पादन करनी होती है। शरीर, मन, आत्मा की शक्तियों का पूर्ण संचय करके स्वयं को अभीष्ट वर्ण के आदर्शानुसार ढालना होता है। समाज के प्रयेक बालक और कन्या को जीवन के प्रथम भाग में गुरुकुल में आचार्य के पास जाकर ब्रह्मचारी रहना होता है। अथर्ववेद के ग्यारहवें क़ाण्ड के पाँचवें सूक्त में इस बात का अद्‌भुत कवितामय ढंग में स्पष्टतया उल्लेख है कि राष्ट्र के प्रत्येक कुमार और कुमारी को आचार्य के पास रहते हुए ब्रह्मचर्य के जीवन में संसार की सब चिन्ताओं से मुक्त होकर अपने मन और इंद्रियों का पूर्ण संयम करके अपने शरीर को बल से मस्तिष्क को (तृण से लेकर परमात्मा तक के सब पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाली) भांति-भांति की विद्याओं से तथा अत्मा को पवित्र गुणों से भरने की एकमात्र चिन्ता रखनी चाहिए। इसी बात को ऋग्वेद के नवम मण्डल के एकसौ बारहवें सूक्त में बड़ी सुन्दर रीति से दर्शाया गया है कि शिक्षणालयों में विद्यार्थियों की अभिरुचि और शक्ति के अनुसार उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की विद्याओं और कलाओं (arts) को पढ़ाने का प्रबन्ध होना चाहिए। इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी पूर्ण संयम का जीवन व्यतीत करते हुए (चारों में से किसी एक वर्ग को) अपने जीवन के लक्ष्य को निर्धारित कर लेना चाहिए और उस वर्ण से सम्बन्ध रखने वाले किसी क्रियाक्षेत्र को वरण करके उसके द्वारा समाज की सेवा करने के योग्य अपने आप को बनाने के लिए आवश्यक विद्या की प्राप्ति में जुट जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थाश्रम—

इस भांति समाज की सेवा के लिये पूरी तरह अपने आप को तैयार करके समाज की क्रियात्मक सेवा करने के लिये वह गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करता है। गृहस्थाश्रम में अपने गुण, कर्म, स्वभाव की सवर्ण कन्या और सवर्ण वर से विवाह करके स्त्री-पुरुषों को अपने संकल्पित वर्ण के अनुसार राष्ट्र-सेवा के सांसारिक कर्त्तव्यों का जीवन व्यतीत करना होता है। जीवन के प्रथम भाग में ब्रह्मचारी रहकर स्त्री-पुरुषों को जीवन के दूसरे भाग में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये, ऐसा विधान वेदों में अनेक स्थानों पर किया गया है। इस सम्बन्ध में विशेष रूप से ऋग् १०-८५, १८३ और अथर्व १४-१,२ सूक्त देखने योग्य हैं। गृहस्थाश्रम में राष्ट्र के लिये उत्तम सन्तान उत्पन्न करने तथा क्रियात्मक और सशक्त रूप में राष्ट्र की अपने-अपने वर्ण के अनुसार सेवा करने के पश्चात् स्त्री-पुरुषों को अगले आश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

वानप्रस्थाश्रम —

अगला आश्रम वानप्रस्थ है। इस आश्रम में जीवन के तीसरे भाग में आना होता है जहाँ नर-नारी का अपना समय संन्यासाश्रम की तैयारी करने और पहले दो आश्रमों की शिक्षा और अनुभवों के आधार पर जाति के बालक और बालिकाओं को निःशुल्क विद्या पढ़ाने आदि जन-सेवा के कामों में लगाना होता है। जिन नर-नारियों ने ब्रह्मचर्याश्रम में ब्राह्मण-वर्ण का चुनाव किया था, वे तो गृहस्थाश्रम में भी गुरुकुलों में विद्या पढ़ाने का काम कर सकेंगे। अन्य वर्णों के लोग भी वानप्रस्थ में आकर पढ़ाने का काम ही करेंगे। वानप्रस्थाश्रम का विधान देखने के लिये ऋग् १०-१४६ और अथर्व ९-५ सूक्त देखने चाहिए।

संन्यासाश्रम—

जीवन के चतुर्थ भाग में नर-नारियों को संन्यासाश्रम में प्रवेश करना होता है। इस आश्रम में अपने-पराये देश-विदेश के भेद को भुलाकर मनुष्य मात्र को धर्म, सत्य और न्याय का उपदेश करते हुए नगर-नगर और गांव-गांव में विचरना होता है। संन्यासाश्रम में मनुष्यमात्र को अपना कुटुम्बी समझने की भावना उत्पन्न करनी होती है। इस आश्रम में राग-द्वेष, लोभ-मोह, काम-क्रोध, भय-शोक, मान-अपमान आदि सब द्वन्द्वों से ऊपर उठकर सच्चिदानन्द ब्रह्म में अपनी वृत्ति लगाये रखनी होती है। प्राणी-मात्र पर दया और मनुष्य-मात्र को सत्य और धर्म का उपदेश करते हुए विचरना होता है। सन्यासाश्रम में वही प्रवेश कर सकता है जिसने स्वयं को ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्राह्मण बना लिया है अथवा (ब्रह्मचर्य में ब्राह्मण न बनने की अवस्था में) पुनः वानप्रस्थ में जाकर साधना द्वारा अपने को ब्राह्मण बना लिया है। इस प्रकार संन्यास में केवल ब्राह्मण ही जा सकता है। शेष तीन आश्रमों का पालन द्विज-मात्र को करना होगा। संन्यासी संसार भर का उपदेष्टा और गुरु होने का भार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कन्धों पर उठा लेता है। इसीलिये संन्यासी को वैदिक शास्त्रों में जगद्गुरु (World Teacher) कहा जाता है। शास्त्रों में संन्यासी को परिव्राट् सर्वत्र विचरण करने वाला और दिशा-पति (दिशाओं का स्वामी) कहा गया है। क्योंकि उस का यह विधान विशेषतया ऋग् ९-११३ में एवं सामान्यतया अन्यत्र भी किया गया है।

वेद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम सौ वर्ष तक अवश्य जीना चाहिये। सौ वर्ष की आयु को शास्त्रकारों ने मनोवैज्ञानिक आधार पर पच्चीस-पच्चीस वर्ष के चार आश्रमों में बाँट दिया है। जिसके अनुसार व्यक्ति को सामान्यतः प्रत्येक आश्रम में २५ वर्ष तक रहना होगा। आवश्यकता पड़ने पर गृहस्थ-आश्रम की अवधि में ४-५ वर्ष की वृद्धि भी हो सकती है। क्योंकि शास्त्रकारों ने लिखा है कि जब पुत्र के पुत्र हो जाये तब वानप्रस्थ में प्रवेश करे। इसमें कभी-कभी ४-५ वर्ष अधिक लगजाना भी संभव है। इसके बाद प्रत्येक पुरुष को वानप्रस्थ में जाना ही होगा। यह अवसर उसे इसलिए दियाजाता है कि वह अपने को ब्राह्मण बना सके जिससे उसका संन्यास तथा मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होसके अन्यथा मृत्युपर्यन्त वानप्रस्थ में ही रहे।

क्रमिक आश्रम-प्रवेश—

५०-५५ वर्ष की आयु के पीछे गृहस्थाश्रम त्याग देने का यह नियम उन लोगों के लिये है जो वसु-ब्रह्मचारी रहते हैं। इन से भिन्न जो रुद्र (३६ वर्ष का) और आदित्य नामक (४८ वर्ष का) अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहस्थाश्रम में जायेंगे वे गृहस्थ में ६०—६५ और ७५—८० की आयु तक रह सकेंगे। यहाँ हमने पुरुषों की आश्रम-मर्यादा की ओर संकेत किया है, स्त्रियों के लिए उन की शारीरिक रचना की दृष्टि से कुछ भिन्न नियम हैं।

सब लोगों को क्रमपूर्वक प्रत्येक आश्रम का पालन करते हुए संन्यासाश्रमतक जाना चाहिये। यह क्रमिक आश्रम-प्रवेश व्यक्ति के लिये अधिक सरल और सुरक्षित है। अति उत्कट वैराग्यवाले ब्राह्मणलोग ब्रह्मचर्य के पश्चात् अथवा गृहस्थ के पश्चात् सीधे भी संन्यास में जा सकते हैं।

वेदों में इन चारों आश्रमों का विधान है। वेद की शिक्षा के आधार पर मनु आदि शास्त्रकारों ने आश्रमों के नियमों और कर्त्तव्यों का बड़ा सुन्दर और विस्तृत वर्णन किया है। जिन्हें विस्तार से जानना हो तो उन्हें वेद और मनु आदि अन्य आर्य-शास्त्रों के तद्विषयक स्थलों का स्वाध्याय स्वयं करना चाहिये। ऊपर की पङ्क्तियों में आश्रमों के सम्बन्ध में जो लिखा गया है, वह इन ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है उसी का संक्षिप्त आशय-मात्र है। इस सम्बन्ध में इससे अधिक लिखना यहाँ आवश्यक भी नहीं।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८] वर्णाश्रम-मर्यादा और राज्य

□

वर्णों और आश्रमों की इस व्यवस्था का राष्ट्र में ठीक-ठीक पालन हो रहा है अथवा नहीं यह देखना राज्य का काम है। राज्य ही राष्ट्र के सब लोगों से इस वर्णाश्रम-मर्यादा का समुचित पालन कराए। वेद में इस सम्बन्ध में पर्याप्त निर्देश मिलते हैं। उदाहरण के लिए निम्न वेदमंत्र देखिये —

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ऋग् १०-१२५-५

यह मन्त्र राष्ट्री संगमनी सूक्त का है। इस सूक्त में राजसभा का वर्णन है। वह स्वयं कहती है—

"[अहम्] मैं राष्ट्रसभा [एव] ही [स्वयं] स्वयं [इदं] यह बात [वदामि] कहती हूँ कि जो भी कोई [देवेभि] दिव्य भावनाओं वाले विद्वान् पुरुषों द्वारा [उत] और [मानुषेभिः] साधारण मनुष्यों द्वारा [जुष्टं] प्रीति करने योग्य और सेवनीय होती है। [यं] जिस को [कामये] मैं चाहती हूँ [तं-तं] उस-उस को [उग्रं] शक्तिवाला क्षत्रिय [तं] उस-उस को [ब्रह्माणं] ब्राह्मण [तं] उस-उस को [ऋषि] ऋषि और [तं] उस-उस को [सुमेधाम्] अच्छी बुद्धि वाला प्रजा का सामान्य वैश्यजन [कृणोमि] बना देती हूँ।"

मन्त्र के पूर्वार्द्ध का अभिप्राय यह है कि राष्ट्रसभा ऐसी बातें बोलती है ऐसे नियम बनाती और ऐसे निर्णय करती है जो प्रजा के, देवपुरुषों और सामान्य लोगों के लिये भी प्रीतिजनक और सेवनीय होते हैं। जो सब के हितकारी और सब को पसन्द आने वाले होते हैं। मंत्र के उत्तरार्द्ध का यह भाव है कि राष्ट्रसभा ही यह निर्णय करती है कि कौन ब्राह्मण, कौन ऋषि, कौन क्षत्रिय और कौन वैश्य है। (जो ब्राह्मणादि न बन सकेगा वह परिशेष न्याय से शूद्र ही रहजायेगा।) राष्ट्र-सभा ऐसे नियम और व्यवस्था बनादेगी जिनसे ब्राह्मणादि वर्ण का निर्णय हुआ करेगा। जो व्यक्ति राज्यसभा द्वारा निर्धारित योग्यता को प्राप्त कर लेगा वही ब्राह्मणादि कहा जायेगा (जो व्यक्ति राज्यसभा द्वारा निर्धारित वर्णों की योग्यता को प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कर सकेगा, वह केवल जन्म के कारण अपने आप को किसी वर्णविशेष का नहीं कह सकेगा) किसी वर्णविशेष का कहलाने के लिये राज्यसभा द्वारा निर्धारित उस वर्ण की योग्यता सम्पादित करनी ही होगी। इस प्रसंग में निम्न मन्त्र द्रष्टव्य है—

यो दासं वर्णमधरं गुहाकः। ऋग् २-१२-४

अर्थात् जो इन्द्र [सम्राट्] बुद्धि में नीच पुरुष को दास [शूद्र] वर्ण बना देता है। अर्थात् दास/शूद्र वर्ण का व्यक्ति कौन है इस का निश्चय भी सम्राट् करेगा, राज्य करेगा। राष्ट्र में योग्यता का एक निम्नतम मान निश्चित कर दिया जायेगा। जो व्यक्ति उस मान तक भी न पहुंच सकेगा वह शूद्र कहलायेगा।

निम्नतम योग्यता का निर्धारण—

इस प्रकार किसी वर्ण को प्राप्त करने के लिए निम्नतम योग्यता का निर्णय राज्य करेगा। जो व्यक्ति निर्धारित योग्यता को प्राप्त कर लेगा, वह उसी वर्ण का कहा जायेगा। किसी व्यक्ति के वर्ण-निश्चय में उसके माता-पिता का वर्ण कभी निश्चायक न होगा। उस की अपनी सम्पादित योग्यता ही उसके वर्ण की निश्चायक होगी। प्रत्येक व्यक्ति को राज्य-नियमानुसार ही कोई वर्ण प्राप्त हो सकेगा। निश्चित राज्य-नियमानुसार गुरुकुलों—शिक्षणालयों के आचार्य आदि लोग स्नातकों के किसी वर्ण को उद्घोषित करसकेंगे। इस सम्बन्ध में राज्य-नियमों का उल्लंघन करने वाले लोग राज्य की ओर से दण्डित होंगे।

राज्य द्वारा आश्रम-व्यवस्था का परिपालन—

वर्णों की भांति आश्रम-मर्यादा का पालन भी राज्य करायेगा। राष्ट्र के प्रत्येक बालक और बालिका को ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करके, गुरुकुलों में विद्याध्ययन करना होगा। राज्य अपना यह कर्त्तव्य तभी पालन कर सकता है जब वह प्रत्येक प्रजाजन को जीवन के प्रारम्भिक काल में गुरुकुलों में जाकर, बाधित रूप से शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा प्रचलित कर दे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राज्य के द्वारा प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति से ब्रह्मचर्याश्रम का पालन कराया जायेगा। वेद के इसी आशय को ध्यान में रखकर ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखा है—"राजनियम और जाति-नियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रखसकें, पाठशाला में अवश्य भेजदेवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो।"

गृहस्थाश्रम का महान् प्रयोजन—

ब्रह्मचर्य-आश्रम के अनन्तर प्रजा के प्रत्येक नर-नारी को सामान्यत: गृहस्थ में जाना होगा। वैदिक धर्म के अनुसार गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके राष्ट्र के लिए उत्तम सन्तानें उत्पन्न करना प्रजा के प्रत्येक स्त्री-पुरुष का धर्म है। जिस समाज से राष्ट्र के नर-नारी इतना लाभ उठाते हैं, वह समाज अविच्छिन्न रूप से चलता रहे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें उत्तरोत्तर योग्य और कुशल व्यक्तियों की वृद्धि होती रहे, इस बात का ध्यान रखना प्रत्येक नर-नारी का कर्त्तव्य है। इसलिए विवाह करके राष्ट्र को उत्तम सन्तानें बनाकर देना वैदिकधर्म में हर एक स्त्री-पुरुष का आवश्यक कर्त्तव्य कहा गया है। इस में अपवाद उन्हीं नर-नारी के लिये हो सकता है, जो किसी रोगादि के कारण सन्तानें उत्पन्न करने के अयोग्य हैं, या उन विरले नर-नारियों के लिए अपवाद हो सकता है जो आजन्म ब्रह्मचारी रहकर राष्ट्र-सेवा में निरत रहना चाहते हैं। शेष लोगों को ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहस्थ में जाना होगा।

भारतवर्ष के महाभारतोत्तर-कालीन इतिहास में ऐसे सम्प्रदाय और विचारक उत्पन्न हो चुके हैं जो गृहस्थाश्रम को बहुत ऊंची दृष्टि से नहीं देखते रहे। उन के प्रभाव से अब भी ऐसे लोग बहुत मिलते हैं जो गृहस्थाश्रम को अच्छी चीज नहीं समझते हैं। विशेषतः गृहस्थाश्रम को मोक्ष-प्राप्ति या ब्रह्म-साक्षात्कार के मार्ग में भारी बाधक समझा जाता है। गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में ये सब धारणाएँ वेद की शिक्षा के प्रतिकूल हैं। वेद-शास्त्र में गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यकर्मों की जो मर्यादा बांधी गई है, उसका समुचित रीति से पालन करने वाले व्यक्ति के लिए यह आश्रम बन्धन का कारण नहीं, प्रत्युत आत्मा के पवित्र बनाने में सहायता देकर मोक्ष का (ब्रह्म-साक्षात्कार का) साधन बनता है। राज्य का यह कर्त्तव्य होगा कि वह देखे कि जो लोग गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर रहे हैं, वे अपने इस आश्रम के कर्त्तव्य-कर्मों का ठीक प्रकार पालन भी कर रहे हैं वा नहीं। राज्य जहां गृहस्थों से इस आश्रम के कर्त्तव्यों की पालन की समुचित आशा रखेगा वहां गृहस्थों को अपने आश्रम के धर्मों के पालन करने में जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता होगी वह सब सहायता राज्य उन्हें यथेष्ट मात्रा में प्रदान करेगा।

गृहस्थाश्रम के उपरान्त प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति को वानप्रस्थाश्रम में जाना होगा। वानप्रस्थाश्रम पर भी राज्य अपने ढंग का निरीक्षण रखेगा। हमने ऊपर निर्देश किया है कि अथर्ववेद ९.५ सूक्त में वानप्रस्थाश्रम का विधान है। ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि में वानप्रस्थाश्रम के विधान में प्रमाण के लिए इसी सूक्त के प्रथम मन्त्र को दिया है। इस समग्र सूक्त की व्याख्या वेदों के अद्वितीय विद्वान् पं० बुद्धदेव विद्यालंकार के स्वर्ग नामक पुस्तक में पाठकों को देखनी चाहिए। इस सूक्त के दूसरे मन्त्र का पूर्वार्द्ध इस प्रकार है—

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम्। अथर्व ९-५-२

अर्थात् "[अज] हे अजन्मा जीवात्मा [यजमानय] राष्ट्र-यज्ञ का यजन कर-रहे [इन्द्राय] सम्राट् के लिये [भागं] सेवनीय भाग के रूप में [अस्मिन्] इस [यज्ञे] वानप्रस्थाश्रम प्रवेश-यज्ञ में [सूरिम्] विद्वान् [त्वा] तुझको [परिनयामि] मैं लाता हूं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कररहे आत्मा को सम्राट् का भाग (सेवनीय हिस्सा) कहा गया है। वानप्रस्थी भी सम्राट् की, राष्ट्र की सेवा करेंगे। इसलिए वे सम्राट् के भाग हैं। गुरुकुलों में जाकर वानप्रस्थ लोग राष्ट्र के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेंगे और इस प्रकार राष्ट्र की सेवा करेंगे। राष्ट्र के बच्चों को शिक्षित करना राज्य का एक भारी कर्त्तव्य है। वानप्रस्थ लोग इस कर्त्तव्य में राज्य की सहायता करेंगे। राज्य उनसे लाभ उठायेगा। इस प्रकार वानप्रस्थ लोग स्पष्ट ही सम्राट् (इन्द्र) का भाग...सेवनीय वस्तु...हो जाते हैं। जो वानप्रस्थ इन्द्र का भाग हैं, जिनसे राज्य ने राष्ट्र के बच्चों की शिक्षा का काम लेना है, उन पर राज्य का अपने ढंग का निरीक्षण तो रहेगा ही; यह निरीक्षण दो प्रकार का होगा। एक तो राज्य यह देखेगा कि जो लोग वानप्रस्थ में जाकर राष्ट्र के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने में राज्य का हाथ बटा सकते हैं, वे उचित समय पर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर रहे हैं या नहीं। और दूसरे यह कि जो लोग वानप्रस्थ में चले गये हैं वे वहां बच्चों को शिक्षा देने, साधना द्वारा अपनी आत्मा को उन्नत करके संन्यासाश्रम की तैयारी आदि के अपने कर्त्तव्यों का पालन भी साथ-साथ कर रहे हैं या नहीं, यह देखना राज्य का कर्त्तव्य होगा।

वानप्रस्थाश्रम के अनन्तर अपनी साधना से सन्तुष्ट होकर जो लोग संन्यास में प्रवेश करना चाहेंगे (या फिर उत्कट वैराग्य होने की अवस्था में वानप्रस्थ में गये बिना सीधा ब्रह्मचर्य या गृहस्थ से ही जो लोग संन्यास में जाना चाहेंगे) वे संन्यास में जाने के वास्तव में अधिकारी हो गये या नहीं, इसका निर्णय भी अन्तिम रूप में राज्य ही करेगा। ऋषि दयानन्द ने संस्कार-विधि में संन्यासाश्रम के विधान में प्रमाण के रूप में ऋग् ९.११३ सूक्त को उद्धृत किया है। इस सूक्त का देवता सोम है। सूक्त के मन्त्रों के वर्णनों के आधार पर ऋषि ने यहां सोम का अर्थ संन्यासी किया है। इस सूक्त का पहला ही मन्त्र है—

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ ९-११३-१

[शर्यणावति[1]] हिंसक पदार्थों की गति से युक्त इस संसार में [वृत्रहा] सत्कर्मों का आवरण करने वाले पापियों और पापों को मारने वाला [इन्द्रः] सम्राट् [सोमं] चन्द्रमा की तरह शान्तिरस बहाने वाले तुझ संन्यासी का अर्थात् तेरे उपदेशामृत का

१. शराणां हिंसकानां यानं शर्याणम् शर्याणमेव शर्येण शयेण वा। पृषोदरादीनामाकृतिगणत्वात् सिद्धिः। शर्यणास्यादूरभवो शर्यणावान्। मध्वादिभ्यश्चेति मतुप्। मतौ च बह्वचः इति दीर्घः। असंज्ञायामपि छन्दसो मकारस्य वकारः। हिंसकानां यानस्य संचारस्यादूरभवः संचारेण युक्तः संसारः शर्यणावान्। तस्मिन् शर्यणावति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पिबतु] पान करें [आत्मनि] आत्मा में [बलं] बल को [दधानः] धारण करता हुआ और [महत् [महान्] [वीर्य] पराक्रम को, सामर्थ्य को [करिष्यन्] करता रहने की इच्छा वाले [इन्दोः] चन्द्रमा की भांति सबको आनन्दित करने वाले, हे संन्यासी तुम [इन्द्राय] सम्राट् के लिए,…राष्ट्र के कल्याण के लिए [परिस्रव] सर्वत्र विचरण करो"।

इस संसार में अनेक शर हैं,…हिंसक-पुरुष और पदार्थ हैं। वे सर्वत्र गति करते रहते हैं। सब को हिंसा पहुंचाकर, कष्ट देकर पाप के काम करके, राष्ट्र में सत्कर्मों के मार्ग में बाधा खड़ी करते हैं। सम्राट् सत्कर्मों के अवरोधक ऐसे वृत्र-पुरुषों (और उनके पापकर्मों) को मारना चाहता है। पाप का नाश केवल दण्ड से नहीं किया जा सकता। दण्ड के साथ प्रचार भी होना चाहिए। लोगों की वृत्तियों को सन्मार्ग की ओर धर्मोपदेश द्वारा प्रेरित भी किया जाना चाहिए। इस काम में सम्राट् संन्यासियों से सहायता लेता है। वह स्वयं उनके उपदेशामृत का पान करता है और राष्ट्र के लोग उसका पान करें, ऐसी व्यवस्था भी करता है। वह उन संन्यासियों की कि जिनके आत्मा में बल है राष्ट्र में सर्वत्र विचरण की व्यवस्था भी करता है। क्योंकि राष्ट्र में पाप-निवारण रूप जो राजा का कर्त्तव्य है, उसमें संन्यासी अपने धर्म-प्रचार द्वारा उसकी सहायता करता है। मन्त्र में सोम = संन्यासी के उपदेशामृत को अभेद से सोम ही कह दिया गया।

जिस सूक्त का यह मन्त्र है उसमें प्रत्येक मंत्र के अन्त में ये शब्द आते हैं… **इन्द्रायेन्दो परिस्रव** · हे संन्यासी तुम सम्राट् [इन्द्र] के लिए अर्थात् राष्ट्र के कल्याण के लिए सर्वत्र विचरण करो (ऋषि दयानन्द ने इस वाक्य का अर्थ "परमैश्वर्ययुक्त" परमात्मा के लिए ऐसा किया है)।

जब सम्राट् संन्यासियों के उपदेशामृत का पान स्वयं करेगा और राष्ट्र में धर्मोप-देश के लिए उनके सर्वत्र विचरण की व्यवस्था करेगा। तब सम्राट् का यह देखना तो धर्म ही हो जायेगा कि वे संन्यासी लोग आदर्श संन्यासी हैं या नहीं। उपयुक्त प्रकार के धर्मोपदेशक हैं या नहीं। ऐसी अवस्था में जो लोग संन्यास लेना चाहेंगे उन्हें राज्य की स्वीकृति प्राप्त करनी होगी। भारत के इतिहास में कई बार ऐसी व्यवस्था रह भी चुकी है। उदाहरण के लिए आचार्य चाणक्य ने अर्थशास्त्र में स्पष्ट लिखा है कि जो व्यक्ति संन्यास लेना चाहे उसे इसके लिए राज्याधिकारियों से विशेष स्वीकृति प्राप्त करनी होगी। संन्यास के लिए स्वीकृति देने से पहले राज्याधिकारी देखेंगे कि प्रार्थी ने अपने पिछले आश्रम के कर्त्तव्यों का भली प्रकार पालन कर लिया या नहीं और उसमें संन्यासाश्रम के लिए उपयुक्त योग्यता उत्पन्न भी हो चुकी है या नहीं। सब प्रकार से पात्र सिद्ध होने पर ही राज्याधिकारी किसी प्रार्थी को संन्यासी होने की स्वीकृति प्रदान करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार राष्ट्र में वर्णाश्रम-मर्यादा का ठीक-ठीक पालन कराना राज्य का कर्त्तव्य होगा। वेद-प्रतिपादित वर्णाश्रम-व्यवस्था का राष्ट्र में पालन कराना वैदिक राज्य का धर्म होना ही चाहिए। इसीलिए पुराने समय में भारतवर्ष के राजाओं को "वर्णाश्रम-गोप्ता" अर्थात् वर्णों और आश्रमों के धर्म की···कर्त्तव्य कर्मों की रक्षा करने वाला कहा जाता था। वेद के इसी आशय को ध्यान में रखकर ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में लिखा है—

"ये संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे। जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण-कर्म हों, उसे उस-उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खतादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो उक्त चाल-चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र बनना पड़ेगा और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने का उत्साह बढ़ेगा। विद्या और धर्म-प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना। क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को योग्यतापूर्वक कर सकते हैं। क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि वा विघ्न नहीं होता। पशु-पालनादि का अधिकार वैश्यों को ही होना योग्य है क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार से कर सकते हैं। शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्या-रहित होने से विज्ञान-संबंधी काम कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है। इस प्रकार वर्णों को अपने-अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा (राज्य) का काम है"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय [२]

वैदिक समाज एवं अर्थ-व्यवस्था

□

समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता —

एक ओर तो वे लोग हैं जो आकाश को चूमने वाले राजमहलों जैसे विशाल भवनों में रहते हैं और दूसरी ओर वे लोग हैं जिन्हें सिर छिपाने के लिए फूंस की झोंपड़ी भी उपलब्ध नहीं होती। एक ओर तो वे लोग हैं जिनके घर के प्रत्येक द्वार पर एक-एक मोटर खड़ी है। प्रत्येक कमरे में टेलीफोन लगा है, प्रत्येक कमरे में रेड़ियो रखा है, प्रत्येक कमरा मखमल के गद्दोंसे सुसज्जित है। वे स्प्रिंगदार पलंगों पर साईबेरिया के पक्षियों की कोमल पंखों से भरे हुए रेशमी गदैलों और रजाइयों में सोते हैं। दूसरी ओर वे लोग हैं जो आयु-भर पैदल यात्रा करते हैं, जिनकी झोंपड़ियों में गोबर एवं मिट्टी का पोचा भी मुश्किल से लगता है, जिहें पैर फैलाने को टूटी चारपाई भी नहीं मिल पाती, जो जीवन भर भूमि पर ही सोते हैं, जिन्हें रात को सरदी के बचाव के लिए फटी गुदड़ी भी शायद ही मिल पाती है। एक ओर तो वे लोग हैं जिनके ट्रंकों के ट्रंक कीमती से कीमती कपड़ों से भरे रहते हैं, जिन के रात को सोने के समय के वस्त्र अलग, प्रातः उठकर चायपान करने के वस्त्र अलग, दोपहर के भोजन करने के वस्त्र अलग, रात को भोजन पर बैठने के वस्त्र अलग, दफ्तर में पहिनकर जाने के वस्त्र अलग, बाजार में और खेल में जाने के वस्त्र अलग-अलग, आये-गये लोगों से मिलने के वस्त्र अलग रहते हैं। वस्त्र पहनते समय दोनों बाहों में वस्त्र पहनाने वाले नौकर भी अलग-अलग होते हैं। दूसरी ओर वे लोग हैं जिन को ऋतुओं की कठोरता से तन ढकने के लिए, अपनी लज्जा को ढकने के लिए फटे-पुराने कपड़े भी पूरी तरह नहीं जुड़ पाते। एक ओर तो वे लोग हैं जो सोने-चांदी के बर्त्तनों में भोजन करते हैं और दूसरे वे लोग हैं जिन्हें यदि मट्टी का बर्त्तन भी मिल जाये तो अपना बड़ा भाग्य समझते हैं। एक ओर तो वे लोग हैं जो दिन में पांच-पाँच बार राजसी भोजन करते हैं और इतना खाते हैं कि उन्हें सदा अजीर्ण रहता है और दूसरी ओर वे लोग हैं जो भुने चने चबाने के लिये भी तरसते हैं, जिन्हें आयु भर भी कभी पूरा पेट भरकर भोजन नहीं मिला होता, और जिन्हें यह पता ही नहीं कि पेट भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृप्त होकर भोजन करने का आनन्द क्या होता है; जो इन धनियों की फैंकी हुई झूठी पत्तलों पर कुत्ते, बिल्लियों, कौवों की तरह झपटने के लिये तैयार रहते हैं। एक ओर तो वे लोग हैं जो कुत्ते-बिल्लियों को पालकर, उन्हें अपनी गोद में बिठाकर दूध पिलाते और बढ़िया से बढ़िया माल खिलाते हैं और दूसरी ओर वे लोग हैं जो अपने बच्चों को दूध के नाम पर आटा-घुला पानी भी पीने को नहीं दे सकते हैं।

एक ओर तो वे लोग हैं जो चाय-पार्टियों में पानी की तरह पैसा बहाते हैं और दूसरी ओर वे लोग हैं जिन्हें अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये भी कहीं से दो पैसे नहीं जुटा पाते। एक ओर तो वे लोग हैं जिनके लाखों करोड़ों के कारखाने खड़े हैं, दूसरी ओर वे लोग हैं जो टूटी दुकान भी नहीं चला सकते और जिन्हें टोकरी ढोने की भी मजदूरी नहीं मिल पाती। एक ओर तो वे लोग हैं जो हजारों और लाखों एकड़ भूमि के मालिक हैं और दूसरी ओर वे लोग हैं जो एक इन्च भूमि को भी अपना नहीं कह सकते। एक ओर तो वे लोग हैं जो सम्पत्ति में लोटते रहते हैं और दूसरी ओर वे लोग हैं जो परले सिरे की गरीबी से दबे रहते हैं। यह है आज के समाज का भीषण आर्थिक विषमता का नग्न चित्र।

दोनों वर्गों की संख्या में महदन्तर—

धन-वैभव के समुद्र में तैरने वाले लोगों की संख्या कोई बहुत अधिक हो और गरीबी से दबे लोगों को बहुत थोड़ी हो सो बात नहीं है। धरती का दुर्भाग्य यह है कि इन वैभवशाली लोगों की संख्या तुलना में बहुत थोड़ी है और गरीबी तथा भूखे नंगे पन का जीवन बिताने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है। फिर शोचनीय अवस्था यह है कि समृद्धि और सम्पत्ति के स्वामी इन अल्पसंख्यक लोगों की दुकानें, कम्पनियें, कारखाने और जमीदारियें (जहां से धन-वैभव की गंगा बहकर इन के घरों में आती है) चलती हैं—इन में काम करने वाले बहुसंख्यक गरीब नौकरों और मजदूरों के बलपर। दुकानों, कम्पनियों, कारखानों और जमींदारियों के मालिक पूंजीपति लोग अपने यहां काम करने वाले नौकरों और मजदूरों को उन की महनत के बदले में कम से कम वेतन और मजदूरी देने का प्रयत्न करते हैं। बहुत बार तो वेतन इतना कम और मजदूरी इतनी थोड़ी रहती है कि सेवकों और मजदूरों को अपने शरीर और आत्मा के संयोग को स्थिर रखना भी कठिन हो जाता है। यह कहा जा सकता है कि ये धनपति लोग अपने नौकरों का खून चूसकर अपना वैभव खड़ा करते हैं।

जीवन चाहे गरीबी में ही बिताना पड़ता हो, पर इन नौकरों और मजदूरों को करने के लिये कोई काम और रूखा-सूखा खाने के लिये कुछ पैसे तो मिल जाते हैं। समाज की व्यवस्था तो इतनी बिगड़ी हुई है कि लाखों बेचारे ऐसे हैं जिन्हें करने को कुछ काम नहीं मिलता। दर-दर भटकने पर भी कोई काम नहीं खोज पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन लोगों को बेरोजगारी से होने वाले जो कष्ट और विपत्तियां सहनी पड़ती हैं, उन की कल्पना-मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

पतनकारी समाज-व्यवस्था—

समाज की वर्त्तमान व्यवस्था की यह भयंकर बुराई तो है ही कि उस में लाखों और करोड़ों लोगों को घोर गरीबी में रहना पड़ता है और गरीबी के वर्णनातीत कष्ट भोगने पड़ते हैं। उसकी एक घोर बुराई यह है कि गरीबी से तंग आकर हजारों व्यक्ति सचाई और धर्म का रास्ता छोड़ देते हैं। वे जीवन-यापन करने के लिये अधर्म का मार्ग अपनाकर दूसरों को लूटना और ठगना आरम्भ कर देते हैं। हजारों आदमी ठग, लुटेरे, जेबकतरे, चोर और डाकू बन जाते हैं। इतना ही नहीं अनेक बार दूसरों का धन छीनने के लिये लोग उन की हत्या तक कर डालते हैं। ऐसे लोग ही नृशंस और पैशाचिक वृत्ति के बन जाते हैं। साधारण आमदनी वाले दूसरे अनेक लोग भी अधर्म और अन्याय का अवलम्बन कर इसी प्रकार के कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं। इस प्रकार समाज की वर्त्तमान व्यवस्था अधिकांश लोगों को न केवल गरीब ही बनाये रखती है अपितु उन्हें असत्य, अन्याय और अधर्म पर चलने के लिये बाधित कर राक्षस-प्रकृति का भी बना देती है। आज की समाज-व्यवस्था मनुष्य को एक ओर शारीरिक दृष्टि से दुःख में रखती है और दूसरी ओर आत्मिक दृष्टि से पतन के गहरे गड्ढे में गिरा देती है।

धनपतियों के लिये भी पतनकारी—

आज की इस समाज-व्यवस्था में निर्धन और गरीब लोग ही आत्मिक रूप से पतित हों सो बात नहीं। इस व्यवस्था में तो धनपति लोग भी आत्मिक दृष्टि से निरन्तर पतित होते रहते हैं। वे अपने नौकरों और श्रमिकों के साथ अन्याय करते हैं। उनकी आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखते, उनकी उपयोगिता और परिश्रम का जो अनुपात है उसका भी ध्यान कर, उनको बहुत कम पारिश्रमिक देते हैं। वे उनकी योग्यता और परिश्रम का शोषण करते हैं। इस प्रकार वे भी अधर्म और अन्याय पर चल पड़ते हैं और अपनी आत्मा को पतित बनाते हैं। इतना ही नहीं ये धनपति लोग अपने धन को बढ़ाने के लिये वस्तुओं के मूल्य लागत के अनुपात से बहुत अधिक रखना, वस्तुओं को कम तोलना और कम नापना, ग्राहक को यथा सम्भव रद्दी से रद्दी वस्तु अपने स्टाक से देना, चोर-बाजारी करना इत्यादि अन्याय और अधर्म के काम भी करते रहते हैं। ये लोग जरूरतमन्द और निर्धन लोगों को ऋण भी देते हैं। उस ऋण पर बहुत ब्याज लेते हैं। अनपढ़ किसानों और निम्न स्थिति के लोगों को तो ये लोग ऋण देकर उन लोगों का रक्त ही पी लेते हैं। एक बार लिया गया ऋण कभी चुकने ही नहीं पाता। ब्याज का हिसाब रखने में निहायत धोखे और झूठ का व्यवहार करते हैं। ब्याज लगाते-लगाते ऋण की राशि इतनी बढ़ जाती है कि ऋण लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले बेचारे इन किसानों और इन मजदूरों के लिए उसे चुका सकना असम्भव हो जाता है। तब ये धनपति लोग अपना ऋण वसूल करने के लिये इन गरीबों की जमीन-जायदाद और दूसरे सामान को भी कुर्क करवा लेते हैं। इस प्रकार के पतन-कार्य, आसुरी कार्यों को कर अपनी आत्मा को घोर अन्धकार में रखते हैं। यह सब देखकर निःसंकोच कह सकते हैं कि वर्त्तमान समाज-व्यवस्था लोगों को इतना पतित बना देती है।

धन की असीम पूजा —

वर्त्तमान समाज-व्यवस्था का आधार धन है। इस व्यवस्था में धन एक देवता बना हुआ है। उसने ईश्वर का स्थान ले रखा है। धन ही सब कुछ है, उसी की पूजा होती है, वही मनुष्य का उपास्यदेव बन गया तो उस को प्राप्त करने के लिये मनुष्य सभी कुछ करेगा। वह सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म की परवाह किये बिना धनोपार्जन करने के उचित-अनुचित सभी मार्ग अपनायेगा। वह अपने नौकरों और मजदूरों की योग्यता और परिश्रम को भी, उन्हें कम पारिश्रमिक देकर लूटने में संकोच नहीं करेगा और सर्वसाधारण जनता को भी ठगने में नहीं हिचकेगा। उसे तो सत्य से हो, असत्य से हो, धन कमाना है।

आज मनुष्य को जो भी कुछ प्राप्त होता है वह सब धन से ही होता है। हमें खाने को अन्न, पहिनने को वस्त्र, रहने को मकान और शरीर के सुख के दूसरे सब साधन धन से ही प्राप्त होते हैं। हमें समाज में यश और प्रतिष्ठा भी धन से ही प्राप्त होते हैं। जो जितना अधिक धनी है सरकार को जितना अधिक टैक्स देता है, वह उतना ही अधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति समझा जाता है। उसे सभा-सुसाइटियों में, जलसे-जलूसों में और राजदरबारों में आगे कुर्सी मिलती है। उसके ऐबों पर पर्दा डाला जता है। संस्थाओं वाले लोग उसकी चाटुकारिता करते नहीं थकते, थोड़ी सहायता भी मिल जाने पर उसकी प्रशंसा के पुल बांध दिये जाते हैं। आज अपने बच्चों को पढ़ा-लिखाकर योग्य भी वही बना सकता है जिस के पास धन है। धन व्यय करके शिक्षा प्राप्त कर सकने वाले लोग ही राजकीय नौकरियों को प्राप्त कर सकते हैं। इन पदों तक पहुंचने के लिये और भी जो दौड़-धूप करनी पड़ती है उसके लिये भी धन की आवश्यकता रहती है। और तो और शासन और हुकूमत भी धन से ही प्राप्त होते हैं।

आज के प्रजातन्त्र में भी धन का ही बोल-बाला है—

इतना ही नहीं कहा जा सकता है कि प्रजातन्त्रीय शासनपद्धति में राजसत्ता और शासन सर्वसाधारण जनता के ही हाथों में रहता है। यह सब कहने की बात है। आजकल की प्रजातन्त्रपद्धति में तो राजसत्ता और शासन उन्हीं लोगों के हाथ में रहता है जिनके पास धन होता है। आजकल के चुनाव लड़ने में और मतदाताओं से अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए मत प्राप्त करने में धन की एक भारी राशि व्यय करनी पड़ती है। जो व्यक्ति उतना धन नहीं लगा सकता वह असैम्बलियों और पार्लियामेण्ट में नहीं चुना जा सकता। कोई कितना भी योग्य क्यों न हो, जिसके पास धन नहीं है वह राज्य की इन विधान-सभाओं में नहीं पहुंच सकता। कहने को चाहे कुछ भी कहा जाता रहे पर परिस्थिति ऐसी है कि आज की समाजव्यवस्था में प्रजातन्त्रीय शासन-पद्धति में भी विधानसभा और लोकसभा के सदस्य वे ही वन सकते हैं जिनके पास रुपया होता है। खाली योग्यता की पहुंच वहां तक नहीं है। इस प्रकार राज-सत्ता और शासन भी धन वालों को ही मिलता है।

धन-लोलुप-शासक—

फिर एक बात और भी है कि आज की इस दूषित समाज-व्यवस्था में जो लोग राज्याधिकारी बनते हैं उनकी वृत्ति न्याय और धर्म का शासन चलाकर प्रजा का कल्याण करने की नहीं होती। वे तो राजकीय पदों पर भी धन कमाने की दृष्टि से ही जाते हैं क्योंकि इन पदों का वेतन बहुत अधिक रहता है, इनके साथ अन्य अनेक प्रकार की सुख-सुविधाएं लगी रहती हैं और इन पदों पर पहुंचकर वे और भी कई प्रकार से धन कमा सकते हैं। ये राजकर्मचारी भी धनपतियों का ही एक वर्ग होते हैं और उनके साथ मिलकर ये भी प्रजा का रक्त चूसते हैं। इस प्रकार आज का शासक-वर्ग भी धनलोलुप बनगया है।

धन-लिप्सु राष्ट्र और अत्याचार—

धन के इस सर्वग्रासी प्रभाव से प्रभावित होकर धन-लिप्सु लोग अपने देश के लोगों के साथ तो अन्याय और अधर्म का व्यवहार करते ही रहते हैं, उनका यह पापाचार इससे आगे भी बढ़ता है। वे धन के लोभ और लालच के वशीभूत होकर संसार भर की धन-सम्पत्ति को अपने घर में भर लेना चाहते हैं। ये सब धन के लोभी लोग राष्ट्र रूप में संगठित होकर दूसरे दुर्बल देशों पर आक्रमण करके उन्हें अपना दास बनाते हैं। उन्हें जीतने के समय उन पर जो विपत्ति के पहाड़ गिराते हैं, उनकी धन-सम्पत्ति का जो भारी विध्वंस और असीम जन-संहार करते हैं, वह तो करते ही हैं, उन्हें अधीन करने के पश्चात् जो उन पर निरन्तर अत्याचार करते वे वर्णनानीत होते हैं। अपने अधीन राष्ट्रों को वे पनपने नहीं देते। उन्हें पंगु बनाकर रख देते है। वहां के व्यापार को नष्ट करते हैं। उनके कला-कौशल को मिटा देते हैं। उनकी सांस्कृतिक और सभ्यता का उच्छेद करते हैं। उनकी परम्परा से चली आ रही राष्ट्रीय शिक्षा को विध्वस्त कर, उनकी भाषा का विनाश कर, बलात् उन पर अपनी भाषा थोपते हैं, उनका इतिहास बिगाड़ते हैं। अपना गलत इतिहास पाठशालाओं में पढ़ाकर उभरती नई पीढ़ी को प्रभावित कर कि तुम्हारे पूर्वज तो अशिक्षित, असभ्य और जंगली थे, नये शासक ही सभ्य और शिक्षित हैं, यह भावना उत्पन्न कर उन्हें दीन और हीन बनाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यह सब वे इसलिए करते हैं कि पराजित राष्ट्र के लोग स्वतन्त्र होने का यत्न न करें। और अपने इन शासकों को देवता मानकर सदा इनके दास बने रहें। ये धन-लिप्सु राष्ट्र अपने अधीनस्थ राष्ट्रों के लोगों को अपने लिये पानी भरकर और लकड़ी काट-कर लाने वालों की स्थिति में पहुंचा देते हैं। अधीनस्थ राष्ट्रों की जनता का काम केवल खेती करना, अपने शासकों के कारखानों के लिए कच्चा माल तैयार करना और शासकों की मज़दूरी और नौकरी करना-भर रह जाता है। पराधीन राष्ट्र इन धन-लिप्सु राष्ट्रों के कारखानों में तैयार किये गए माल के बिकने के बाजार-मात्र रह जाते हैं। पराधीन देशों की जनता को निम्न स्तर की गरीबी की अवस्था में पहुंचा दिया जाता है। इतना ही नहीं इन धन-लिप्सु राष्ट्रों के गर्वित शासक 'पराधीन राष्ट्र के लोगों में भी आत्मा है, वे भी मानापमान को अनुभव करते हैं' यह समझना ही छोड़ देते हैं। वे पराधीन राष्ट्र के लोगों का पग-पग पर अपमान करते हैं, उनके साथ कुत्ते और बिल्लियों से भी बुरा व्यवहार करते हैं। विजेता राष्ट्रों द्वारा विजित राष्ट्रों पर किये गये अत्या-चारों से एवं अन्यायों की दुःख भरी कहानी से इतिहास भरा पड़ा है। दूर जाने की आव-श्यकता नहीं है। अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में भारत की जो दयनीय-दीन-हीन दशा बना रखी थी उससे हम सब भली भांति परिचित हैं। अपने धन-वैभव को बढ़ाने की लालसा के वशीभूत होकर जब किसी राष्ट्र के लोग दूसरे राष्ट्र को अपने अधीन बनाने चलते हैं तो वे निरे नर-पिशाच बन जाते हैं और जब तक वे राष्ट्र उन के अधीन रहते हैं तब तक उन पर वे पाशविक और राक्षसी अत्याचारों की झड़ी लगाये रहते हैं। धन का लोभ उनकी आत्मा को बिल्कुल मार देता है।

भीषण युद्धों का मूल-कारण धन-लिप्सा—

धन का लोभ एक और काण्ड खिलाता है। धन का लोभ मनुष्यों को ईर्ष्यालु बना देता है। एक की समृद्धि को देखकर दूसरा उससे जलने लगता है और सदा उसकी हानि के प्रयत्न में रहता है। लोगों के दैनिक जीवन में यह ईर्ष्या की वृत्ति काम करती हुई दिखाई देती है। राष्ट्रों के परस्पर सम्बन्धों में भी यही वृत्ति काम करने लगती है। इस ईर्ष्या-वृत्ति के बहुत ही भयंकर परिणाम निकलते हैं। जब एक सबल धन-लिप्सु राष्ट्र किन्हीं दूसरे देशों को गुलाम बनाकर वहां अपने बाजार बना लेता है तो दूसरे सबल धन-लिप्सु राष्ट्रों को भी ईर्ष्या होगे लगती है। ईर्ष्या-वशीभूत होकर यह दूसरा धन-लिप्सु राष्ट्र पहले धन-लिप्सु राष्ट्र के इन विदेशी बाजारों को छीनना चाहता है या उनमें अपना भी हिस्सा रखना चाहता है, जिससे वह अपने देश के कार-खानों का माल वहाँ खपा सके। स्वभावतः पहले धन-लिप्सु राष्ट्र को यह बात स्वी-कार्य नहीं होती। वह अपने भाव को कम कैसे होने दे ? धन के लोभ से उत्पन्न होने वाली ईर्ष्या की यह आग सुलगती रहती है और एक दिन प्रबल होकर क्रोध का रूप धारण कर लेती है और दोनों राष्ट्रों में युद्ध छिड़ जाता है। युद्ध में दोनों राष्ट्रों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपार जन-संहार एवं सम्पत्ति का विनाश होता है । दोनों राष्ट्रों की जनता चली थी अपने को अधिक वैभव और सुख-समृद्धिशाली बनाने, पर लोभ से जलाई गई ईर्ष्या की आग में गिरकर परस्पर युद्ध करके रही सही राष्ट्रसम्पत्ति को भी भस्मसात् कर देती है ।

अनेक बार ऐसा भी होता है कि यह युद्ध केवल दो राष्ट्रों तक ही सीमित नहीं रहता । इनमें युद्ध छिड़ने के थोड़े ही समय पश्चात् धीरे-धीरे धरती के प्रायः सभी राष्ट्र दोनों पक्षों में बंटकर युद्ध में आ कूदते हैं । फिर वह युद्ध केवल दो राष्ट्रों का न रहकर सारे विश्व का युद्ध बन जाता है । पिछला (१९१४-१९१८ का) महायुद्ध इसी प्रकार का एक विश्वयुद्ध था । यह युद्ध आरम्भ में हुआ था अंग्रेजों और जर्मनों के बीच, पर युद्ध आरम्भ होने के थोड़े ही काल पश्चात् धरती के प्रायः सभी बड़े-बड़े राष्ट्र इस युद्ध में कूद पड़े थे । इस विश्वयुद्ध में सारे मानव-समाज को जो कष्ट और विपत्तियां सहनी पड़ी थीं, सभी देशों की जो अपार जन-हानि और धन-हानि हुई थी आँकड़ों को देखकर दिल दहल उठता है । रणचण्डी के उस ताण्डव-नृत्य से घर घर में दुःख और शोकसागर उमड़ पड़ा । इस युद्ध के परिणाम-स्वरूप लाखों-हजारों गांव उजड़ गये, उनके मकान मिट्टी में मिल गये, उनकी कृषि एवं भूमि बरबाद हो गई, लाखों लोग बेघर हो गये, लाखों लोग मारे गये, लाखों पत्नियां विधवा हो गई, लाखों बच्चे अनाथ हो गये, लाखों बहिनें बिना भाइयों के हो गई, लाखों माता-पिता बिना सन्तान के हो गये, लाखों लोगों के हाथ-पैर कट गये, लाखों अन्धे हो गये और मानसिक आघात से लाखों लोग पागल हो गये । यह हुआ था धन-लिप्सा से जलाई गई ईर्ष्या की आग से पैदा हुए उस महायुद्ध का परिणाम !

जो १९३९-४५ में द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ था, उसकी प्रलयङ्कारी भीषणता तो प्रथम विश्व-युद्ध की भीषणता को भी कहीं पीछे छोड़ गई । विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के लोगों को इस युद्ध के कारण वे सभी कष्ट उससे भी कहीं अधिक मात्रा में सहने पड़े जिस मात्रा में प्रथम युद्ध के कारण सहने पड़े थे । इस द्वितीय विश्व-युद्ध में अकेले जर्मनी और रूस के युद्ध-क्षेत्र में ही प्रतिदिन कोई बीस हज़ार सैनिक मारे जाते रहे । अन्य युद्ध-क्षेत्रों की बात इससे अलग थी । जर्मनी ने इंग्लैण्ड पर जो बम्ब बरसाये थे उनसे इंग्लैण्ड के प्रत्येक तीन घरों में से एक घर सर्वथा विध्वस्त हो गया था । इतनी भीषण थी जर्मनी की वह बम-वर्षा ! इंग्लैण्ड और अमेरिका ने जर्मनी पर जो बम-वर्षा की थी वह भी इतनी ही भीषण और संहारकारी थी । अमेरिका ने जापान पर जो बम-वर्षा की थी वह इतनी भीषण थी कि उससे अकेले टोकियो नगर में ८० हजार आदमी मारे गये थे जिनमें २५ हजार तो बच्चे ही थे । टोकियो के लगभग सभी घर विध्वस्त हो गये थे । अमेरिका ने जापान के हीरोशिमा और नागासाकी नगरों पर जो अणुबम गिराये वे इतने घोर संहारकारी थे केवल एक-एक अणुबम से कई-कई लाख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आबादी के ये दोनों नगर सर्वथा विनष्ट हो गये। इस विश्वयुद्ध में लड़ने वाले देशों की जो अपार धन-सम्पत्ति विनष्ट हुई उसकी कोई सीमा नहीं है। इस युद्ध में हुई अग्नि-वर्षा के कारण जहां लाखों आदमी मारे गये वहां करोड़ों लोग उजड़कर बे-घरबार और आश्रयहीन हो गये। इतनी प्रचण्ड थी इस युद्ध की भीषणता[1]। इन दोनों विश्व-युद्धों ने धरती पर कालरात्रि ला दी थी, यह सब उस सर्वग्रासी धन-लोलुपता का ही परिणाम था कि जिसने मनुष्यों को साक्षात् नर-पिशाच बना दिया था।

धन-लिप्सा के दुष्परिणाम—

जब समाज में धन की महत्ता बेहद बढ़ जाती है, जब मनुष्य के लिए धन ही धन सब कुछ हो जाता है, जब सुख-आराम, मान-प्रतिष्ठा और शासन की शक्ति सब कुछ धन से ही प्राप्त होने लगता है और इस प्रकार जब समाज को धन का देवता मानकर उसकी उपासना करने वाला पूंजीवाद-समाज बन जाता है, तब लोगों में धन का यह सीमातीत लोभ दुकानदारों, कम्पनी वालों, कारखाने वालों और जमीदारों को ऐसा क्रूर बना देता है कि अपने नौकरों और श्रमिकों पर, राज्याधिकारियों द्वारा अपनी प्रजा पर तथा राष्ट्रों द्वारा दूसरे राष्ट्रों की प्रजा पर ऐसे-ऐसे घोर अन्याय और नृशंस अत्याचार करवाता है कि सुनने वाले की आत्मा कांप उठती है।

---

१. द्वितीय विश्वयुद्ध में मृत व्यक्तियों की संख्या इस प्रकार है—
कुल मृत व्यक्तियों की संख्या ६५ लाख से १ करोड़ के बीच है। जर्मन पक्ष के मृत व्यक्ति ५२ लाख, मित्रराष्ट्रों के ४५ लाख। जर्मनी की हानि सबसे अधिक हुई। उसके ३२,५०,००० व्यक्ति मरे। जापान के १५ लाख, इटली के १½ से २ लाख, रूमानिया के १ लाख, हंगरी के ७५ हजार और फिनलैण्ड के ५० हजार व्यक्ति मरे। मित्र राष्ट्रों में रूस की हानि सबसे अधिक हुई। उसके ३० लाख व्यक्ति मरे। अमेरिका (U.S.A.) के ३,२५,०००, ब्रिटिश साम्राज्य के ३,७५,००० से ४,००,०००। फ्रांस के १,५७,०००; पोलैण्ड के १,२५,०००, युगोस्लाविया के ७५,०००; यूनान के ५०,०००; बेल्जियम के ७,००० हालैण्ड के ६०००; नार्वे के १०००; और (पलंहावर के बाद से) चीन के २,५०,००० व्यक्ति मरे। इन आंकड़ों में केवल सैनिक मृत्युयें ही हैं। सैनिक तथा नागरिक (Civilian) मृतकों की कुल संख्या २ करोड़ २० लाख ६० हजार है, आहतों की ३ करोड़ ४४ लाख है। इस प्रकार हताहतों की कुल संख्या ५ करोड़ ६४ लाख ६० हजार है।

[गिलिन (J. H. Gillin) तथा (J. P. Gillin) की कल्चरल सोशियोलोजी (Cultural sociology), मैकमिलन, न्यूयार्क १६४८, में पृष्ठ १०६ पर दिए आंकड़ों से]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूंजीवादी व्यवस्था का व्यापक प्रभाव

धन पर आधारित, धन को ही सब कुछ समझने वाली, धन की पूजा करने वाली, यह पूंजीवादी समाज-व्यवस्था आज संसार के सभी देशों में चल रही है। रूस जैसे कुछ थोड़े से राष्ट्रों को छोड़कर धरती के सभी राष्ट्रों की समाज-व्यवस्था पूंजीवादी समाज-व्यवस्था के कारण सभी राष्ट्रों की जनता के एक बहुत बड़े भाग को अभाव और गरीबी का दुःख और कष्टों का जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

पूंजीवादी व्यवस्था को बदलना होगा—

यदि धरती के मानव ने इन अन्याय और अत्याचारों से, तथा इन दुःख और कष्टों से छुटकारा पाना है तो समाज की इस पूंजीवादी व्यवस्था को बदलना होगा, और उसके स्थान पर कोई दूसरी व्यवस्था लानी होगी, समाज का संघटन किसी दूसरे नये आधार पर करना होगा।

साम्यवाद (कम्युनिज्म)—

इस युग में जर्मनी के महान् विचारक कार्लमार्क्स ने पूंजीवादी समाज-व्यवस्था की बुराइयों को अनुभव किया और उसके विरुद्ध आवाज उठाई। योरोप के अनेक विचारक कार्लमार्क्स के अनुयायी बनगये। रूस का महान् नेता लेनिन भी कार्लमार्क्स का अनुयायी बन गया। लेनिन के नेतृत्व में रूस के कम्युनिस्ट लोगों ने सन् १९१७ के अक्टूबर की क्रान्ति द्वारा पूंजीवाद की प्रतीक और जनता पर मनमाना अत्याचार करने वाली जारशाही को भी दफना दिया और समाज की पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था को भी अपने देश से उखाड़ फैंका। कार्लमार्क्स के अनुयायी, रूस के साम्यवादी (कम्युनिस्ट) लोग पूंजीवाद के स्थान पर साम्यवादी व्यवस्था प्रस्तुत करते हैं। उनका वायदा है कि पूंजीवाद की बुराइयों का प्रतिकार एकमात्र साम्यवादी समाज-व्यवस्था की स्थापना से ही हो सकता है। निस्सन्देह साम्यवादी समाज-व्यवस्था पूंजीवादी व्यवस्था से बेहतर है परन्तु उसे सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता। इसका विवेचन आगे के पृष्ठों में करेंगे।

कोई भूखा न मरे—

साम्यवाद कहता है कि अभाव और गरीबी के कारण किसी को कष्ट नहीं मिलना चाहिये। धन के अभाव से कोई भूखा-नंगा नहीं रहना चाहिए। सब को भलीभांति खाने-पीने और पहनने को मिलना चाहिए। यह बात सही है। वर्णाश्रम-पद्धति भी यही बात कहती है। वेद कहता है—"निश्चय ही परमात्मा ने भूख को मृत्यु का साधन नहीं बनाया है[1]।" वेद की सम्मति में प्रजा के किसी भी आदमी को भूख का कष्ट नहीं होना चाहिये। सब को यथेष्ट खाने को मिलना चाहिए। भूख तो उपलक्षण

१:—नवा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुः। ऋग् १०-११७-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र —संकेत मात्र है। अन्न हमारे जीवन की प्रधान आवश्यकताओं में से एक है। अन्न की भांति हमारे जीवन अन्य सब प्रधान आवश्यकतायें भी भली-भांति पूरी हो सकनी चाहियें।

पाँच आलम्बन पदार्थ—

जीवन की प्रधान आवश्यकतायें पांच हैं। १—खाने के लिए पौष्टिक अन्न, २—पहिनने के लिये वस्त्र, जिनसे ऋतुओं की कठोरता से शरीर की रक्षा हो सके; ३—रहने के लिये स्वच्छ, हवादार और रोशनीदार मकान जिन में परिवार के सभी सदस्य आराम से रह सकें। ४—रोगी होने पर उत्तम से उत्तम चिकित्सा का प्रबन्ध ५—बालकों की ऊंची से ऊंची शिक्षा का प्रबन्ध। ये पांचों चीजें मनुष्य-जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इन के बिना मनुष्य न सुख से जी सकते हैं और न किसी प्रकार की उन्नति ही कर सकते हैं। ये पांचों मनुष्य-जीवन के "आलम्बन पदार्थ" हैं। इन पांचों पर मनुष्य का जीवन, सुख और उसकी उन्नति अवलम्बित है। ये पांचों "आलम्बन पदार्थ" राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को मिलने चाहियें और इस रूप में मिलने चाहियें कि उनसे व्यक्ति की आवश्यकता अच्छी तरह पूरी हो सके। ऐसा वेद का स्पष्ट आदेश है। वेद में स्थान-स्थान पर प्रजाजन परमात्मा और अपने राजा से इनकी प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। वेद में राजा का यह कर्त्तव्य बताया गया है कि वह अपनी प्रजाओं को इन पांचों पदार्थों की प्राप्ति कराये, इस प्रकार के वर्णनों से वेद भरे पड़े हैं[1]। यदि किसी रष्ट्र के लोगों को ये पांचों पदार्थ प्राप्त नहीं होते हैं तो निश्चय ही उस राष्ट्र की समाज-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था दूषित है। आज जो संसार के सब लोगों को ये पाँचों पदार्थ भली-भांति प्राप्त नहीं होते, उस का कारण आज की पूंजीवादी व्यवस्था है। आज का समाज और राज्य पूंजीवाद पर खड़ा है और उसके कारण अधिकांश लोगों को ये पांचों पदार्थ आवश्यकतानुसार प्राप्त नहीं होते।

अनुबन्ध पदार्थ—

जीवन के लिए आवश्यक इन पांच "आलम्बन-पदार्थों" के अतिरिक्त मनुष्य की कुछ गौण आवश्यकतायें हैं, जो मनुष्यजीवन में सुख और हर्ष की मात्रा को बढ़ाने के लिए होती हैं। जैसे—टेलीफोन, रेड़ियो, टेलीविजन, मोटर कार इत्यादि खाने-पीने, पहिनने, रहने, चिकित्सा और शिक्षा की आवश्यकताएं पूरी हो जाने के बाद यदि हमारे मकान के चारों ओर अच्छी फुलवारी लगी हो, घर भाँति-भाति की कलाकृतियों से विभूषित हों, इस प्रकार के पदार्थ मनुष्य जीवन के लिए आवश्यक नहीं।

१. इस सम्बन्ध में हमने अपने ग्रन्थ "वेदों के राजनैतिक सिद्धान्त" के शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, गृह-निर्माण और वस्त्र-परिधान आदि प्रकरणों में विस्तार से विचार किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पर मनुष्य-जीवन अवलम्बित नहीं है। इनके बिना भी अपना काम चला सकता है। यदि ये पदार्थ मनुष्य के पास हों तो जीवन में सुख की मात्रा बढ़ जाती है। ये पदार्थ मनुष्य-जीवन की प्रधान आवश्यकताएं (Primary needs) न होकर गौण आवश्यकताएं (Secondary needs) हैं। इन गौण पदार्थों को "अनुबन्ध पदार्थ" कहा जाता है। ये "अनुबन्ध पदार्थ" भी यथा-सम्भव अधिक से अधिक लोगों को प्राप्त हो सकें—इस का प्रयत्न भी राष्ट्र में होना चाहिए। वेद में जीवन की प्रधान पांच आवश्यकताओं की पूर्त्ति की प्रार्थनाओं के अतिरिक्त, जीवन में सुख की मात्रा को बढ़ाने वाली अन्य सामग्री की भी प्रार्थनाएं हैं। राजा के लिए आदेश है कि वह प्रजाओं को यह सामग्री भी प्राप्त करायें[1] "अनुबन्ध पदार्थ" भी सबको मिल सकें तो अच्छा है और इसके लिए प्रयत्न भी होना चाहिए, परन्तु पांचों "आलम्बन पदार्थ" तो प्रत्येक प्रजाजन को अच्छी तरह मिलने ही चाहियें।

पूंजीवाद के आधार —

पूंजीवादी व्यवस्था में इन पदार्थों के राष्ट्र के सर्वसाधारण लोगों को मिल सकने की संभावना नहीं रहती क्योंकि पूंजीवादी व्यवस्था आदमी को लोभी और संचयशील बना देती है। लोभ और संचय की प्रवृत्ति के वशीभूत हुए कुछ थोड़े से लोग, जिन के पास साधन और शक्ति होती है, ऐसा उपाय कर लेते हैं कि जिस राष्ट्र की प्राकृतिक सामग्री से उत्पन्न होने वाला सारा धन-वैभव उन्हीं के पास सिमिट आता है और सर्वसाधारण जनता तक पहुंच नहीं पाता और थोड़े से धन-पति लोग राष्ट्र की प्राकृतिक सामग्री से उपजाने वाले धन-वैभव को अपने हाथों में ही सीमित रखने के लिए सभी प्रकार के अच्छे-बुरे तरीकों का आश्रय लेते रहते हैं।

वर्णाश्रम-व्यवस्था में धन का महत्त्व सर्वोपरि नहीं है—

पूंजीवाद का यह दोष वर्णाश्रम व्यवस्था की पद्धति में नहीं आ पाता। वर्णाश्रम-व्यवस्था में धन की महत्ता को बहुत कम कर दिया गया है। पूंजीवाद में धन की महत्ता सर्वोपरि रहती है। वहां धन ही सब कुछ है। वर्णाश्रम-व्यवस्था में यह बात नहीं है। वहां धन का स्थान कम महत्त्व का है। धन के इस महत्त्व को वर्णाश्रम-व्यवस्था में कई प्रकार से कम किया गया है। इस सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखने योग्य हैं।

वर्णाश्रम-व्यवस्था और त्यागमय जीवन—

वर्णाश्रम-व्यवस्था में त्याग के जीवन पर बहुत अधिक बल दिया गया है। मनुष्य को धन-सम्पत्ति के मोह में न फंसकर, लिप्त न होकर, त्याग-पूर्वक ही उसका

१. हमने अपने ग्रन्थ "वेदों के राजनैतिक सिद्धान्त" के राष्ट्र के सौभाग्य की उन्नति आदि प्रकरणों में विस्तार से विचार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोग करना चाहिये। वर्णाश्रम-पद्धति का यह मुख्य सिद्धान्त है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में उपदेश दिया गया है कि "हे मनुष्य इस जगत् के सब पदार्थों में परमेश्वर रमे हुए हैं, इसलिये तू संसार के पदार्थों का त्यागपूर्वक उपभोग कर, किसी के धन में लोभ-लालच मत कर[1]। वेद के इस उपदेश का भाव यह है कि मनुष्य को सदा यह स्मरण रखना चाहिए कि परमात्मा सर्वव्यापक होकर सब जगह रमे हुए हैं, कोई जगह उनसे खाली नहीं है, वे हमारे प्रत्येक कर्म को देख रहे हैं, इसलिए हमें लोभ में फंसकर दूसरों की सम्पत्ति की ओर लालच-भरी आंखों से नहीं देखना चाहिये और लोभ की इस वृत्ति से पैदा होने वाले अपराधों को न करना चाहिये। लोभ से बचने के लिए हमें धन-सम्पत्ति में लिप्त न होकर उसका त्याग-पूर्वक उपभोग करना चाहिये। इस मन्त्र का दूसरा अर्थ यह भी किया जा सकता है कि "हे मनुष्य इस जगत् के सब पदार्थों में परमेश्वर रम रहे हैं, इसलिए तू उस परमेश्वर द्वारा (त्याग किये हुए अर्थात्) दिये हुए पदार्थों का उपभोग कर, लोभ-लालच मत कर, धन किसका है? अर्थात किसी का भी नहीं।" इस अर्थ में वेद के इस मन्त्र का भाव यह है कि मनुष्य को परमात्मा ने जितना दिया है उसी पर उसे सन्तोष करना चाहिए। उसे धन-सम्पत्ति का लोभ नहीं करना चाहिये, लोभ से पैदा होने वाले अपराध नहीं करने चाहिये, हमारे सब अपराधों को सर्वव्यापक परमात्मा देख रहे हैं, अतः लोभ और उससे उत्पन्न अपराधों से हमें दूर रहना चाहिये, हम धन का लोभ करके पाप क्यों करें? धन किसका है? किसके साथ यह जाता है? यह तो यहीं रह जाता है। यह आज है और कल नहीं है। इसलिए धन के लोभ में फंसकर हमें पाप नहीं करने चाहिये। वैदिक-धर्मियों के सभी शास्त्र त्यागमय जीवन के उपदेशों से भरे पड़े हैं। वेद और शास्त्रों के इन उपदेशों को जो लोग सदा स्मरण रखेंगे, धन-सम्पत्ति में लिप्त न होकर, लोभ की वृत्ति से जो सदा परे रहेंगे और लोभ से दूर रहने के लिए त्याग का जीवन रखेंगे, वे इन सब बुराइयों से दूर रहेंगे जो पूंजीवादी लोगों में आ जाती हैं। ऐसे लोगों के लिये धन ही सब कुछ नहीं रह जायेगा। धन उनके लिए बहुत गौण हो जायेगा।

वर्णाश्रम-व्यवस्था दान पर बल देती है—

वर्णाश्रम-पद्धति में दान पर बड़ा बल दिया गया है। वेद में दान के सम्बन्ध में सूक्त के सूक्त[2] आते हैं जिनमें बड़े कवितामय ढंग से उपदेश दिया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी धन-सम्पत्ति का कुछ न कुछ अंश दूसरे मनुष्यों के कल्याण के लिए दान करते ही रहना चाहिये। अथर्ववेद में एक जगह कहा गया है कि "हे मनुष्य!

---

१. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ यजु. ४०।१।

२. उदाहरण के लिये देखो ऋग् १०।१०७, ११७, तथा १५१ सूक्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू सौ हाथों से धन कमा और हजार हाथों से उसका दान कर[1]।" वेद के इस कविता-मय वर्णन का भाव यह है कि मनुष्य को अत्यन्त प्रयत्न और पुरुषार्थ से धन-सम्पत्ति का उपार्जन करना चाहिये और अपनी उपार्जित सम्पत्ति का अधिकांश भाग लोकोपकार में दान देना चाहिये।

वेद के इस प्रकार के उपदेशों का आधार वैदिकधर्मियों के मनुस्मृति[2] आदि सभी धर्मशास्त्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी के लिए दान करना एक आवश्यक कर्त्तव्य बताना है। प्राचीन समय में नवस्नातक को आचार्य लोग विदाई के समय अनेक सुन्दर उपदेश दिया करते थे। (आजकल की भाषा में इस उपदेश को दीक्षान्त-भाषण या कनवोकेशनल ऐड्रेस [convocational address] कहा जा सकता है।) तैत्तिरीय उपनिषद् में प्राचीन काल का एक दीक्षान्त-भाषण उपलब्ध है। उसमें आचार्य अपने स्नातकों को और-और आदेशों के साथ एक आदेश यह भी देता है कि उन्हें गृहस्थाश्रम में जाकर दान अवश्य करना चाहिये। दान पर बल देते हुए आचार्य कहता है—"श्रद्धा से दो, अश्रद्धा से दो, शोभा के लिए दो, लज्जा से दो, भय से दो, प्रतिज्ञा से दो[3]। किसी भी कारण से दो, दो अवश्य। दान पर इतना अधिक बल उपनिषद् में दिया गया है। हमारे धर्मशास्त्रों के अनुसार दान ब्राह्मणादि वर्णों के लोगों का एक आवश्यक धर्म है जिसमें कभी नागा नहीं होनी चाहिये। महाभारत आदि ग्रन्थों में इस प्रकार के उपदेश भी आते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आय का कम से कम दशवां भाग दान अवश्य करना चाहिये[4]।

---

१. शतहस्तः समाहर सहस्रहस्तः संकिर। अथर्व० ३।२४।५

२. मनु. १. ८८, ८९, ९० में ब्राह्मणादि वर्णों के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए दान सब वर्णों का एक आवश्यक कर्त्तव्य बताया गया है।

३. श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। तै० उ० ७।११।१—४।

४. गामेकां दशगुर्दद्याद् दश दद्याच्च गोशती।
शतं सहस्रगुर्दद्यात् सहस्रं बहुगोधनः॥ महाभारत, अनुशासन पर्व ११३.१२
अर्थात् "दस गौवों वाला व्यक्ति एक गौ दान में दे, सौ गौवों वाला दस गौवें दान में दे, हजार गौवों वाला सौ गौवें दान में दे और अधिक गौवों वाला व्यक्ति हजार गौवें दान में दे।" गोधन का दान तो उपलक्षण है। प्राचीन समय में गौ को मूल्यवान् धन समझा जाता था। श्लोक का भाव यह है कि मनुष्य को अपनी सम्पत्ति का दशवां भाग दान करते रहना चाहिये। शिव-धर्म में लिखा है कि—"तस्मात् त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत्, भागद्वयं तु धर्मार्थमनित्यं जीवितं यतः।" अर्थात् "मनुष्य को चाहिए कि वह अपने धन के पाँच भाग कर ले। तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तो हमें त्याग का जीवन बिताना है, दूसरा धन के लोभमें पड़कर उसके पीछे पागल होकर नहीं दौड़ना है और फिर जो कुछ धन-सम्पत्ति हमने कमाई भी है उसमें से एक वड़ा हिस्सा सदा दान करते रहना चाहिए। वर्णाश्रम-व्यवस्था को मानने वाले वैदिक धर्मियों का यह एक आवश्यक धर्म है। जो लोग वेद और शास्त्रों के इस उपदेश को मानकर दान करना अपना धर्म समझेंगे उनमें धन का अनुचित मोह और लोभ नहीं पैदा होगा, और वे लोभ के वशीभूत होकर, उस प्रकार की बुराइयाँ न करेंगे जिस प्रकार की बुराइयाँ पूंजीपति लोग करते हैं।

वर्णाश्रम-व्यवस्था में सम्पत्ति का विनिमय—

हम जो कुछ कमायें वह हमें स्वार्थी बनकर स्वयं अकेले ही नहीं खा जाना चाहिए। हमें अपनी धन-सम्पत्ति का उपभोग दूसरों के साथ मिलकर करना चाहिए। वेद में परमात्मा उपदेश देते हैं कि "हे मनुष्यो, तुम्हारे पीने के स्थान समान हों, तुम अन्न का सेवन मिलकर करो, मैं तुम्हें प्रेम के बन्धन में बांधता हूं, तुम मिलकर प्रभु की उपासना करो और इस प्रकार मिलकर रहो जिस प्रकार रथ के पहिए की नाभि में अरे मिलकर रहते हैं[1]। वेद के इसी प्रसङ्ग में परमात्मा पुनः कहते हैं—"हे मनुष्यो मैं तुम सबको मिलकर पदार्थों के सेवन द्वारा मिलकर चलने वाले, समान मन वाले और एक समान भोजन वाले वनाता [2]।" वेद के इन उपदेशों में भगवान् की स्पष्ट आज्ञा है कि किसी भी राष्ट्र के लोगों को और असल में सारी धरती के लोगों को— परस्पर प्रेम से मिलकर रहना चाहिए और अपने भोजन का तथा भोजन से उपलक्षित अपनी धन-सम्पत्ति का उपभोग स्वार्थी बनकर स्वयं अकेले ही नही करना चाहिए प्रत्युत सबके साथ मिलकर करना चाहिए अर्थात् इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए हमें अपनी सम्पत्ति का दान करते रहना चाहिए। वेद में एक दूसरे स्थान पर कहा है— "जो व्यक्ति अकेला खाता है वह भोजन नहीं खाता, वह केवल पाप खाता है[3]"

इस प्रकार वेद की सम्मति में भोजन और उससे उपलक्षित धन-सम्पत्ति का स्वार्थी बनकर स्वयं अकेले उपभोग करते रहना निरा पाप है। वेद-प्रति-

---

भाग अपनी जीविका के लिए रख ले और दो भाग धर्म के कामों में दान कर दे (क्योंकि जीवन सदा रहने वाला नहीं है)"। इस श्लोक के अनुसार तो व्यक्ति को अपनी आय का $\frac{2}{3}$वां भाग दान में लगाना चाहिए।

१. समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।। अथर्व० ३-३०-६
इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या हमारी पुस्तक "वेदोद्यान के चुने हुए फूल" में देखिये।

२. सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्। अथर्व० ३-३०-७

३. केवलाघो भवति केवलादी। ऋग् १०-११७-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादित वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धतिमें वेदके इन सिद्धांतों को स्वीकार करना आवश्यक है। जो लोग वेद के इन सिद्धान्तों को स्वीकार करेंगे वे स्वार्थी बनकर अपनी धन-सम्पत्ति का अकेले उपभोग करने को पाप मानेंगे उनमें लोभ और स्वार्थ पर आश्रित वे बुराइयाँ नहीं उत्पन्न होंगी जो पूंजीपतियों में पाई जाती हैं। वे तो सम्पत्ति के अकेले उपभोग के पाप से बचने के लिए वेद के दान-सम्बन्धी उपदेश को मानकर सदा उसका दान करते रहेंगे जिससे सब-सबके साथ मिलकर उसका उपभोग किया जा सके।

पाँच यम और पांच नियम—

वेद और तदनुकूल धर्मशास्त्रों में मनुष्य के चरित्र को ऊँचा, पवित्र और धर्मिष्ठ बनाने के लिए अनेक उपदेश दिए गए हैं और तदर्थ अनेक कर्त्तव्य बताए गए हैं। इन सब कर्त्तव्योपदेशों का सार दस यम-नियमों में आ जाता है।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पांच नियम[1] कहलाते हैं। अपने मन और शरीर को तथा चारों ओर की परिस्थितियों को स्वच्छ और निर्मल रखना "शौच" है। अपने जीवन को चलाने के लिए आवश्यक ज्ञान-विज्ञान और धन-सम्पत्ति आदि प्राप्त करने के लिए यथोचित परिश्रम करने के अनन्तर हमें जितनी भी सफलता मिलजाए उसपर सन्तुष्ट और प्रसन्न रहना "सन्तोष" है, सदा अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए उद्यत रहना, कर्त्तव्य के पालन के मार्ग में जो कष्ट और विघ्न-बाधाएं आयें उनसे न घबराकर उनको सहना और उनका सामना करना, जीवन को सदा कष्टसहिष्णु बनाना और भोगविलास एव ऐशो-इशरत से दूर रखना, तथा गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों को सहने की आदत रखना 'तप" है। सत्य और धर्म का उपदेश देने वाले तथा विद्या-विज्ञान की वृद्धि करने वाले, वेदादि अच्छे-अच्छे ग्रन्थों को पढ़ते रहना, जिससे मन में सदा अच्छे विचार ही उत्पन्न हों, तथा अपना आत्मनिरीक्षण करके बुरे विचारों और आदतों को छोड़ते रहना और अच्छे विचारों और आदतों को ग्रहण करते रहना "स्वाध्याय" है। ईश्वर की उपासना करना, अपने आप को ईश्वर के अर्पण करदेना, सब प्राणियो को ईश्वर की सन्तान समझना और उनके कष्टों को दूर करने के लिए उद्यत रहना "ईश्वरप्रणिधान" है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम[2] कहलाते हैं। मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा न दना और जो प्राणी कष्ट में पड़े हों उनके पास जाकर उनके कष्ट दूर करना "अहिंसा" है। मन से न्याययुक्त सही बात ही सोचना, तथा मन, वचन और कर्म में एकता रखना "सत्य" है। अपने परिश्रम से

---

१. शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। योगदशन २.३२

२. तत्राहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। योगदशन २.३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो धन-सम्पत्ति कमाई जाए केवल उसी का उपभोग करना, दूसरे की धन सम्पत्ति को बिना उसकी स्वीकृति और आज्ञा के कभी काम में न लाना तथा मन में लोभ के विचारों को उत्पन्न न होने देना "अस्तेय" है। जननेन्द्रिय को वश में रखना, सोच-समझकर सन्तान उत्पन्न करने के अतिरिक्त कभी भी अपने वीर्य को शरीर से बाहर न होने देना, इसके लिए सभी इन्द्रियों को वश में रखकर मन को वश में रखना, मन में कभी शृंगारिक विचारों और कामवासना को उत्पन्न न होने देना "ब्रह्मचर्य" है। धन-सम्पत्ति का संग्रह न करना, यथासम्भव कम से कम धन-सम्पत्ति और दूसरे दुनियावी सामान अपने पास रखना "अपरिग्रह" है।

यम-नियमों की अनिवार्यता—

ये दसों यम और नियम केवल साधु-सन्तों और योगी-महात्माओं के लिए ही नहीं हैं। वर्णाश्रम-धर्म के अनुसार राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन का पालन अनिवार्य है। मनुस्मृति[1] आदि धर्मशास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राजा और प्रजा सब के लिए इन यम-नियमों का पालन आवश्यक है। इस पद्धति में ये यम और नियम राष्ट्र-वासियों के चरित्र का आवश्यक अंग माने गए हैं। वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति में शिक्षा-संस्थाओं में इनके पालनपर विशेष बल दिया गया है। जिससे कि ये सभी राष्ट्रवासियों के चरित्र का अंग बन सकें। इनमें भी नियमों की अपेक्षा अहिंसा आदि पांच यमों के पालनपर विशेष बल दिया गया है[2]। शास्त्रों में इन यम-नियमों की विस्तृत व्याख्यायें की गई हैं। वर्त्तमानकाल में ऋषि दयानन्द ने भी इन के पालन पर विशेष बल दिया है, सत्यार्थप्रकाश में वर्णित अपनी शिक्षा-पद्धति में इनका विशेष स्थान रखा है। महात्मा गांधी ने तो इनपर बहुत ही बल दिया है और इन की विस्तृत व्याख्यायें की हैं। हमने अति संक्षिप्त शब्दों में यहां इनका भावार्थ दे दिया है। जो लोग इन यम और नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करेंगे, उनमें वे बुराइयाँ पैदा नहीं हो सकतीं जो पूंजीवादी पद्धति में पलने वाले, भोग और विलास के पीछे पड़े रहने वाले लोगों में उत्पन्न हो जाती हैं।

अपरिग्रह—

ऊपर वर्णित पांच यमों में एक यम अपरिग्रह का है। यहां अपरिग्रह के अर्थ को थोड़ा विस्तार से समझ लेना चाहिए। यह शब्द संस्कृत के तीन पदों अ, परि

---

१. अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्यमब्रवीन्मनुः॥ मनु १०.६३

२. यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥ मनु ४.२०४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ग्रह से मिलकर बना है। ग्रह का अर्थ होता है चीजों को पकड़ के अपने पास रखना और परिग्रह का अर्थ होता है चारों ओर से, सब तरफ से चीजों को समेटकर अपने पास रखना। इधर से भी बटोर, उधर से भी बटोर, जहां से बटोरा जा सके बटोर, और जितना बटोरा जा सके उतना बटोर। इस मनोभावना के वशमें होकर चीजों के संग्रह का नाम परिग्रह है। परिग्रहशील व्यक्ति बहुत लालची हो जाता है। उसके पास जितना भी हो वह उसे थोड़ा ही लगता है। वह अधिक से अधिक संग्रह करना चाहता है। उसकी आवश्यकतायें बहुत बढ़ जाती हैं। वह अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए छटपटाता रहता है। और छटपटाहट के परिणामस्वरूप वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किसी भी उपाय का अवलम्बन करने के लिए उद्यत हो जाता है। उसे सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म किसी की चिंता नहीं रहती। वह धोखा-धड़ी झूठ-फरेब अन्याय और अत्याचार सभी का सहारा लेकर अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्त्ति के सामान जुटा लेना चाहता है। आज के पूंजीवादी लोग और पूंजीवाद की पद्धति पर चलने वाले राष्ट्र इसी प्रकार के परिग्रहशील व्यक्ति और राष्ट्र हैं। उनकी इस परिग्रहशीलता की वृत्ति के कारण आज के अधिकांश मनुष्यों को जो कष्ट, जो यन्त्रणायें और यातनायें भोगनी पड़ रही हैं, उन्हें सभी जानते हैं। किसीसे कुछ छुपा हुआ नहीं है।

"परिग्रह" का उलटा होता है "अपरिग्रह" मनुष्य को संसार की चीजों को अपने पास इकट्ठा करने के पीछे पागल होकर नहीं दौड़ना चाहिये। उसे अपने पास सांसारिक धन-सम्पत्ति और सामग्री का बहुत कम संग्रह करना चाहिये। उसे धन-सम्पत्ति और सामग्री का उतना ही संग्रह करना चाहिये जितना अपने कर्त्तव्य-कर्मों को ठीक से पूरा करने के लिए नितान्त आवश्यक हो। व्यक्ति अपने लिए अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में से जो वर्ण चुनता है और जिस आश्रम में वह है, उस वर्ण और आश्रम के कर्त्तव्य-कर्मों को भली-भांति पूरा करने के लिए जितनी सामग्री अपेक्षित है उतनी ही सामग्री अपने पास संग्रह करे, न उससे कम और न उससे अधिक। भोग-विलास और ऐशो-इशरत की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर उसे अपनी आवश्यकतायें बहुत अधिक नहीं बढ़ानी चाहिएं। और न उनकी पूर्ति के लिए व्यर्थ छटपटाते ही रहना चाहिए। उसे अपनी आवश्यकतायें यथा-सम्भव कम से कम रखनी चाहिए। वह सामग्री संग्रह करने में पागल होकर भटकता न रहे। न ऐसा हो कि सामग्री के अभाव में वह अपने कर्त्तव्यों को पूरा न कर सके। अपने कर्त्तयों को भली-भाँति पूरा करने के लिए कम से कम सामग्री संग्रह करना "अपरिग्रह" है। अपरिग्रह का यह सिद्धान्त वर्णाश्रम-व्यवस्था के मुख्य सिद्धान्तों में प्रमुख है। जो लोग इस प्रकार के अपरिग्रही रहेंगे वे धन-सम्पत्ति का संग्रह करने के लिए उस प्रकार के दूषित आचरण नहीं करेंगे जिस प्रकार के दूषित आचरण पूंजी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादी लोग प्रायः करते हैं ।

चार वर्ण और चार आश्रम—

जीवन को सादा, तपस्वी और सच्चरित्र बनाने, धन-सम्पत्ति का बहुत संग्रह न करने तथा उसका भी परोपकार में दान करते रहने, वेद-शास्त्रों के इन उपदेशों पर बल देने के अतिरिक्त, वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति में धन के महत्त्व को एक अन्य प्रकार से कम किया गया है। इस पद्धति में व्यक्ति के जीवन को चार आश्रमों में और सारे समाज को चार वर्णों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने चुने हुए वर्ण के और उस-उस आश्रम के नियमों तथा कर्त्तव्य-कर्मों का पालन करेगा। जो **ब्राह्मण वर्ण** को अपने लिए चुनेंगे, उन्हें अपना जीवन विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञानों की उन्नति, आविष्कार और प्रचार में, तथा जनता को सत्य और धर्म का उपदेश देने में, लगाना पड़ेगा। इन्हें साँसारिक धन-सम्पत्ति कमाने के पीछे नहीं पड़ना होगा। इन्हें त्याग और तपस्या का अत्यन्त सादगी का जीवन विताना होगा। जनता या राज्य से मिलने वाली जीवन-निर्वाहार्थ न्यूनतम आवश्यक दक्षिणा पर संतुष्ट रहना होगा।

जो लोग **क्षत्रिय वर्ण** को अपने लिए चुनेंगे उन्हें अपना जीवन अन्याय-अत्याचार से जनता को बचाने, तथा राष्ट्र की रक्षा में लगाना पड़ेगा। वे राष्ट्र के पुलिस, सेना और प्रवन्ध सम्बन्धी (Administrative) विभागों में काम करेंगे। जीवन-निर्वाह के लिए जो न्यूनतम आवश्यक दक्षिणा राज्य की ओर से उन्हें मिलेगी, उसी पर उन्हें सन्तुष्ट रहना होगा। क्षत्रिय वर्ग को भी धन-सम्पत्ति कमाने तथा उसके संग्रह में न लगना होगा। **शूद्र वर्ण** के लोग तो किसी राष्ट्र में बहुत ही कम होंगे। किसी भी सुव्यवस्थित राष्ट्र में ऐसे बुद्धिहीन शूद्र लोगों की संख्या अति न्यून रहेगी। ये शूद्र भी धन-सम्पत्ति कमाने का काम न करेंगे। यदि किसी में धन-सम्पत्ति कमाने की योग्यता होगी तो वह शूद्र ही नहीं रहेगा वैश्य बन जायेगा। रहे वैश्य। जो लोग अपने लिए **वैश्य वर्ण** का चुनाव करेंगे वे ही विविध प्रकार की धन-सम्पत्ति कमाने का काम कर सकेंगे। इस प्रकार चारों वर्णों में से केवल वैश्यों का ध्यान विशेष रूप से धन-सम्पत्ति कमाने की ओर रहेगा।

आश्रम-व्यवस्था द्वारा अंकुश —

अब लीजिए आश्रमों को। **ब्रह्मचर्य आश्रम** विद्यार्थी-जीवन का आश्रम है। कम से कम २४ वर्ष की आयु तक बालक और १६ वर्ष की आयु तक बालिकायें, ब्रह्मचारी रहते हुए इस आश्रम में विविध विद्या-विज्ञान सीखते हैं और अपनी रुचि और स्वाभाविक योग्यता के अनुसार ब्राह्मणादि वर्णों में से किसी एक वर्ण के योग्य अपने को बनाते हैं। यह तैयारी का आश्रम है। इस आश्रम में बालकों को अपने शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाना, मन को विविध प्रकार के विद्या-विज्ञानों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरना, और आत्मा को सत्य, न्याय, दया, संयम, नियम-पालन आदि की उदात्त भावनाओं से युक्त करना होता है। इस आश्रम में बालक-बालिकायें क्रियात्मक रूप में धन-सम्पत्ति कमाने के कार्य से सर्वथा दूर रहते हैं। ब्रह्मचर्य के पश्चात् **गृहस्थ-आश्रम** में व्यक्ति को धन-सम्पत्ति कमाने का कार्य करना होता है। गृहस्थ-आश्रम में भी विविध प्रकार की धन-सम्पत्ति कमाने का कार्य वैश्यवर्ण के लोगों को ही करना होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र वर्ण के लोग गृहस्थ-आश्रम में भी धन-सम्पत्ति का संग्रह नहीं करेंगे। वे तो जनता या राज्य की ओर से जीवन-निर्वाहार्थ दी गई न्यूनतम दक्षिणा पर ही संतुष्ट रहेंगे। गृहस्थाश्रम के पश्चात् **वानप्रस्थ-आश्रम** आता है। पच्चीस-तीस वर्ष तक गृहस्थ का जीवन व्यतीत करके प्रत्येक व्यक्ति को वानप्रस्थ-आश्रम में जाना होता है। वानप्रस्थाश्रम में धन-सम्पत्ति कमाने का काम बन्द कर देना होता है। यह कार्य वानप्रस्थ लोग अपनी सन्तान को सौंप आते हैं। वानप्रस्थ-आश्रम में व्यक्ति को ब्रह्मचर्य आश्रम की भाँति ही त्याग, तपस्या और संयम का जीवन बिताना होता है। वानप्रस्थ व्यक्ति गुरुकुलों में चला जाता है और वहाँ राष्ट्र के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने में अपना समय लगाता है। इससे बचे हुए समय को भी स्वाध्याय, चिन्तन और आत्मिक उन्नति में बिताता है। वानप्रस्थ आश्रम के पश्चात् **संन्यास आश्रम है**। यह आश्रम सब लोगों के लिए नहीं है। जो लोग पहले तीन आश्रमों में तैयारी करके अपने को ब्राह्मण बना लेते हैं उन्हें ही संन्यास-आश्रम में जाने का अधिकार है। पहले तीन आश्रम सब वर्ण वालों के लिए हैं किन्तु संन्यास-आश्रम केवल ब्राह्मणों के लिए है। संन्यास-आश्रम में तो साँसारिक सभी चीजों का परित्याग कर दिया जाता है। इस आश्रम में व्यक्ति को पूर्ण त्यागी, तपस्वी, संयमी और निर्लेप होकर, प्राणी-मात्र का मित्र बनकर, संसार के लोगों को सत्य और धर्म का उपदेश देते हुए विचरना होता है। इस आश्रम में धन-सम्पत्ति कमाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

इस प्रकार वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति में केवल वैश्य-वर्ण के लोग ही गृहस्थ आश्रम में जाकर विविध प्रकार की धन-सम्पत्ति कमाने का कार्य करते हैं। वैश्यों को भी वानप्रस्थ में जाकर यह धन-सम्पत्ति कमाने का काम छोड़ देना होता है। शेष ब्राह्मणादि तीन वर्णों के लोग धन-सम्पत्ति कमाने के पीछे जाते ही नहीं। इन ब्राह्मणादि तीन वर्णों के लोगों को गृहस्थ-आश्रम में जो जनता या राज्य की ओर से दक्षिणा के रूप में थोड़ी-बहुत सम्पत्ति मिलती भी थी तो उसको भी वानप्रस्थ आश्रम में जाकर लेना बन्द कर देते हैं। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में व्यक्ति अपनी आवश्यकतायें न्यूनतम कर लेता है और गृहस्थ-जनता से मिलने वाली भिक्षा और दान पर अपना निर्वाह करता है। वर्णाश्रम-व्यवस्था के सांचे में ढलकर अपना जीवन बिताने वाले लोगों की धन-विषयक मनोवृत्ति, पूंजीवादी पद्धति में पलने वाले लोगों से सर्वथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न प्रकार की होती है। वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति में पला व्यक्ति सोचता है कि जब ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में धन-सम्पत्ति से दूर रहकर त्याग, तपस्या और सादगी का जीवन बिताना होता है और फिर वानप्रस्थ में प्रवेश के समय उसे इस धन-सम्पत्ति का भी सर्वथा त्याग कर देना है, तब धन के लोभ और मोह-ममता में पड़कर अर्थ कमाने के लिए असत्य, अन्याय एवं अधर्म का आश्रय क्यों ले ? धन कमाने में सहायक नौकरों और मजदूरों की योग्यता और श्रम का शोषण कर उन पर अत्याचार क्यों करे ? क्यों न उन्हें अपना सहयोगी समझकर उनके श्रम का यथोचित पारिश्रमिक उन्हें दे ? वर्णाश्रम-व्यवस्था के साँचे में ढला व्यक्ति इस प्रकार के विचारों वाला बन जाता है। और उसमें दोष स्वतः नहीं आ पाते जो पूंजीवादी पद्धति में पलने वाले व्यक्ति में सहज आ जाते हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति में धन का महत्त्व बहुत कम कर दिया गया है। जिस कारण व्यक्ति धन-संग्रह के लिए आसक्त नहीं होता और न उसके लिए सत्य, न्याय तथा धर्म का मार्ग छोड़ने के लिए उद्यत ही होता है। धर्मपूर्वक जितना धन कमाया जा सके उतना ही कमाता है और उसे भी परोपकार में खर्च करता है। पूंजीवादी पद्धति से वर्णाश्रम पद्धति का यह महान् अन्तर है।

वर्णों का चुनाव—

वर्णाश्रम-व्यवस्था पर आधारित समाज-व्यवस्था के सम्बन्ध में आगे विचार करने से पहले हमें वर्णों का वास्तविक स्वरूप समझ लेना चाहिए। वर्ण शब्द **वृञ्** धातु से बनता है जिसका अर्थ होता है वरण अर्थात् चुनाव करना। इस वर्ण पद का शब्दार्थ होता है—'जिसका वरण किया जाये, जिसका चुनाव किया जाये'[1]।' ब्राह्मणादि वर्ण इसलिये कहे जाते हैं कि व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार उनका वरण-चुनाव करता है। संस्कृत में ब्रह्मचारी या विद्यार्थी के लिए वर्णी शब्द का भी प्रयोग होता है। जिसका अर्थ है, वर्ण वाला अर्थात् जिसने अपने लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों में से किसी एक वर्ण को चुना है। ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य-आश्रम में ब्राह्मणादि में से किसी एक वर्ण को अपने लिए चुन लेता है और अपने आप को उसके योग्य बनाने की तैयारी करता है। जिससे गृहस्थ आश्रम में जाकर वह उस वर्ण के कर्त्तव्य-कर्मों को भली-भांति पालन कर सके। इसलिए ब्रह्मचारी को "वर्णी" कहा जाता है।

व्रत-ग्रहण-पूर्वक विद्याध्ययन

ब्रह्मचारी के लिए संस्कृत में एक शब्द और प्रयुक्त होता है, वह शब्द है **व्रती**। व्रती का शब्दार्थ होता है—जिसने व्रत अर्थात् प्रतिज्ञा (Pledge) ले रखी है। ब्रह्मचारी-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य में से किसी एक वर्ण को अपनी रुचि

---

१. वर्णो वृणोतेः। निरुक्त २।३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शक्ति के अनुसार अपने लिए चुनलेता है और जीवनभर उस वर्ण के कर्त्तव्य-कर्मों को निभाने का व्रत लेता है। इसीलिए वह व्रती कहलाता है। वैदिक वर्णाश्रम-व्यवस्था में प्रत्येक विद्यार्थी को अपने अध्ययनकाल में ब्राह्मणादि में से किसी एक वर्ण का आवश्यक रूप से चुनाव करना होगा, उसके अनुकूल विद्या-विज्ञान सीखकर अपने को योग्य बनाना होगा और जीवनभर उस वर्ण के कर्त्तव्य-कर्मों का पालन करने का व्रत (Pledge) लेन होगा[1]।

---

१. वैदिक मर्यादा में प्रत्येक व्यक्ति के सोलह संस्कार होते हैं। इन संस्कारों में से एक संस्कार उपनयन-संस्कार भी है। उपनयन-संस्कार ब्रह्मचारी रहकर विद्या पढ़ने के लिए गुरुकुल में जाने के समय किया जाता है। उपनयन के समय विद्यार्थी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य में से किसी एक वर्ण को चुनकर उस वर्ण के कर्तव्य-कर्मों के अनुकूल विद्या-विज्ञानों को पढ़ने का निश्चय करता है। उपनयन-संस्कार की मुख्य विधि तो तीनों वर्णों के लिए समान है। परन्तु दण्ड, मेखला, वस्त्र और यज्ञोपवीत की बनावट आदि अवान्तर बातों के विषय में तीनों वर्णों के लिए अलग-अलग विधान हैं। उपनयन-संस्कार दो बार होता है। एक तो गुरुकुल में जाने से पहले अपने माता-पिता के घर में और दूसरा आचार्य के पास जाकर गुरुकुल में (देखो सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास)। अपने घर में माता-पिता द्वारा बालक का उपनयन कराये जाने का अभिप्राय यह होता है कि बालक के माता-पिता स्वयं जिस वर्ण के हैं, उनका बालक कमसे कम उस वर्ण का तो बने ही, ऐसी आशा वे रखते हैं। फिर गुरुकुल में जाकर दूसरी वार उपनयन कराये जाने का भाव यह है कि बालक ने सोच-विचारकर स्वयं निश्चय कर लिया है कि वह किस वर्ण का ब्रह्मचारी बनना चाहता है। जब तक एक-एक बालक स्वयं निश्चय न कर लेगा कि वह किस वर्ण का ब्रह्मचारी बनना चाहता है, तब तक गुरुकुल में आचार्य द्वारा उसका उपनयन नहीं होगा वह यों ही गुरुकुल में रहकर पढ़ता रहेगा और अपने लिए वर्ण के चुनाव की तैयारी करता रहेगा। बालक द्वारा अपने वर्ण का निश्चित चुनाव कर लिए जाने पर आचार्य उसका उपनयन करेगा। ब्राह्मण बनना चाहने वाले बालक को ५ से १६ वर्ष की आयु तक अपने वर्ण का निश्चय कर लेना चाहिए। क्षत्रिय बनना चाहने वाले बालक को छठे वर्ष से लेकर बाईसवें वर्ष की आयु तक अपने वर्ण का निश्चय कर लेना चाहिए। और वैश्य बनना चाहने वाले बालक को आठवें वर्ष से लेकर चौबीसवें वर्ष को आयु तक अपने वर्ण का निश्चय कर लेना चाहिए (मनु० २.३६ से ३९)। जो ब्राह्मण नहीं बन सकता है, वह क्षत्रिय बने तथा जो ब्राह्मण और क्षत्रिय में से कोई भी नहीं बन सकता, वह वैश्य बने। जो इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य-समाज के तीन महान् शत्रु—

ब्राह्मणादि में से किसी एक वर्ण को अपने लिए चुनकर उसके कर्त्तव्य-कर्मों को पालन करने का यह व्रत किस लिए लिया जाता है ? मनुष्य-समाज के तीन बड़े शत्रु हैं जिन के कारण मनुष्य पीड़ित रहते हैं। वे हैं —१—**अभाव**, २—**अज्ञान**, ३—**अन्याय**।

अभाव-दुःख—

यदि राष्ट्र में लोगों की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए आवश्यक सामान उत्पन्न नहीं होता तो आवश्यक सामान के अभाव से राष्ट्र के लोग पीड़ित रहेंगे। यदि राष्ट्र में अन्न का अभाव होगा तो लोगों को भूख का कष्ट सहना पड़ेगा। यदि राष्ट्र में वस्त्र का अभाव होगा तो लोगों को नंगे रहकर ऋतुओं की कठोरता के कष्ट सहने पड़ेंगे। यदि राष्ट्र में मकानों का अभाव होगा तो भी लोगों को ऋतुओं की कठोरता के कष्ट सहने पड़ेंगे। यदि राष्ट्र में औषधियां नहीं बनतीं तो उनके अभाव में लोगों को रोगों के कष्टों से पीड़ित रहना पड़ेगा। ये सब अभावजनित कष्ट हैं।

अज्ञान-दुःख—

राष्ट्र में प्राकृतिक सामग्री तो बहुत है पर लोगों को उस प्राकृतिक सामग्री से भाँति-भांति की आवश्यकता पूर्त्ति व निर्माण का ज्ञान नहीं, इसलिए कष्ट में रहते हैं। यह कष्ट उनके अज्ञान के कारण है। वस्तु हमारे पास है हम उसका उपयोग करना

तीनों में से किसी वर्ण की भी योग्यता प्राप्त करने के योग्य नहीं होगा वह जड़-बुद्धि बालक शूद्र रह जायेगा। किसी घर में जन्म होने के कारण कोई व्यक्ति शूद्र नहीं होता। अति मन्द-बुद्धि होने के कारण पढ़ने-लिखने की दिमागी योग्यता न होने से ही कोई व्यक्ति शूद्र बनता है। ब्राह्मण माता-पिता का बालक भी शूद्र हो सकता है और शूद्र माता-पिता का बालक भी ब्राह्मण बन सकता है। वर्ण-व्यवस्था जन्म पर निर्भर नहीं करती। वह गुण, कर्म और स्वभाव पर निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में शास्त्रों से अनेक प्रमाण दिए जा सकते हैं। अति प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्मानुसार ही होती थी। पौराणिक हिन्दुओं में जो जन्म पर आश्रित वर्ण-व्यवस्था मानी जाती है, वह मध्य-युग में भ्रांति से चल पड़ी और भ्रांति पर आधारित इस जन्म की वर्ण-व्यवस्था से हिन्दुओं की उन्नति में बहुत बाधा पहुंचती रही है। अस्तु ! उपनयन-संस्कार की जो व्यवस्था शास्त्रों में पाई जाती है उसका मर्माशय इतना ही है कि प्रत्येक बालक को अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार किसी-न-किसी वर्ण का चुनाव करके तदनुकूल विद्याध्ययन और कर्त्तव्य-कर्म करने का व्रत लेना चाहिए। व्रत (Pledge) लेकर विद्याध्ययन करने-कराने का यह सिद्धान्त शिक्षा के क्षेत्र में वर्णाश्रम-व्यवस्था पद्धति की निराली देन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जानते अतः पीड़ित होते हैं। गेहूं होने पर भी रोटी निर्माण का अज्ञान भूख से पीड़ित करेगा। तैयार भोजन भी हमारे पास है पर हमें भोजन करने के नियमों का ज्ञान नहीं। हम बार-बार खाते रहते हैं और भूख से अधिक खाते रहते हैं तो अजीर्ण हो जायेगा और उससे उत्पन्न होने वाले रोग हमें लग जायेंगे। हमें इन रोगों का कष्ट भोगना पड़ेगा। इस प्रकार के कष्ट **अज्ञान**-जनित कष्ट हैं।

अन्याय-दुःख—

हमें सामान तैयार करने का ज्ञान है, ज्ञान से हमने सामान तैयार कर लिया परन्तु कुछ अन्यायी और अत्याचारी लोग हमारे सामान को जबरदस्ती छीनकर ले गए तो उनसे इस अन्याय के कारण भी हमें कष्ट होगा। हमें खेती करनी आती है उससे बहुत अन्न हमने पैदा किया परन्तु कुछ अन्यायी लोग बलप्रयोग द्वारा सारा अन्न छीनकर ले जाते हैं तो उनके अन्याय के कारण भूख का कष्ट सहना पड़ेगा। यह कष्ट अन्याय के कारण है। अन्याय, बलप्रयोग करके ही नहीं किया जाता, चतुराई, झूठ, धोखा, ठगी करके भी किया जाता है। किसी प्रकार से हो, अन्यायी लोग अन्याय करके लोगों को पीडित करते हैं। ये सब कष्ट **अन्यायजनित** कष्ट हैं।

ब्राह्मणों का व्रत—

ब्राह्मण वे लोग हैं जो प्रजा के **अज्ञान** को दूर करने का **व्रत** लेते हैं। ये लोग सत्य के परिशोध में लगे रहते हैं। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाली सचाइयों का पता लगाकर विभिन्न प्रकार के विद्या-विज्ञानों का ये लोग आविष्कार करते हैं। और उस अपने विद्या-विज्ञान का ये लोग निःस्वार्थ भाव से प्रजा में प्रचार करते हैं क्योंकि जनता के अज्ञान को दूर करना इन्होंने अपना धर्म बना रखा है। कोई ब्राह्मण अपनी रुचि के अनुसार किसी विद्या-विज्ञान के अध्ययन और अध्यापन में लगजाता है और कोई किसी के। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के विद्या-विज्ञानों का अध्ययन और अध्यापन इनका क्षेत्र रहता है। इस लिए धर्म के सच्चे रहस्य का पता लगाना और उसका प्रचार करना ब्राह्मणों का कर्त्तव्य रहता है। ये लोग धर्म के तत्त्वों को स्वयं अपने जीवन में ढालते हैं और जनता में उनका प्रचार करते हैं। इनका जीवन पूर्ण सत्य-निष्ठ, संयमी, तपस्वी और सादा रहता है। ऊपर वर्णित यम-नियमों को अपने जीवन में ढालने का विशेष प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार अपने जीवन को आदर्श बनाकर ये लोग अपने जीवन और प्रचार द्वारा जनता के चारित्रिक स्तर को उन्नत करते रहते हैं। अपनी विद्या को ये लोग बेचते नहीं। विद्या-दान का कोई मूल्य नहीं ठहराते। उन्हें श्रद्धा से जितना कोई दे दे, उसे ही ले लेते हैं। जो दक्षिणा दे सके उसे भी पढ़ाते हैं और जो न दे सके उसे भी पढ़ाते हैं। पढ़ाने में भेद नहीं करते। निष्काम भाव से सबको विद्या-दान करते हैं। इस प्रकार जनता के भांति-भांति के अज्ञानों को दूर करने के लिए विविध-विद्या-विज्ञानों की उन्नति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कार और प्रचार में लगे रहने का जो लोग व्रत ले लेते हैं और अपना सारा जीवन निष्काम भाव से इसी काम में खपा देते हैं उन्हें ब्राह्मण कहते हैं।

आर्य-शास्त्रों के अनुसार राज्य के न्यायालयों के न्यायाधीश और राज्य के मंत्री भी ब्राह्मण लोगों को ही बनाया जायेगा। क्योंकि तप, त्याग, सादगी, सत्य और धर्म का जीवन बिताना ब्राह्मणों का विशेष व्रत रहता है। क्योंकि धन-सम्पत्ति के संग्रह से ब्राह्मण लोग दूर रहते हैं, उनका जीवन विशेष रूप से अपरिग्रह का होता है। उन्होंने कोई अपनी जमीन-जायदाद नहीं बनानी होती है। इस लिए ब्राह्मण लोग निःस्वार्थ भाव से सही-सही न्याय करेंगे और निःस्वार्थ भाव से प्रजा के हित के लिए सही राजनीति बनायेंगे और उस का सही पालन करेंगे। इस लिए न्यायाधीश और मन्त्री ब्राह्मणों को बनाया जाता है। आर्य लोगों में राज-मन्त्री का आदर्श (ब्राह्मण) चाणक्य हैं। भारतवर्ष के चक्रवर्त्तिसम्राट् का मन्त्री होते हुए भी स्वयं फूंस की झोंपड़ी[1] में रहा करता था।

क्षत्रियों का व्रत—

जो लोग अन्याय से प्रजा की रक्षा करने का व्रत लेते हैं उन्हें क्षत्रिय कहा जाता है। ये लोग जहां अन्य विद्याओं का अध्ययन करेंगे, वहां राजनीति और शस्त्रास्त्रों के बनाने और उनके चलाने की विद्याओं का विशेष अभ्यास करेंगे। अपने अन्दर शारीरिक बल को बढ़ाने का भी ये लोग विशेष प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार अन्याय के विरुद्ध लड़ने के योग्य अपने को ये लोग बना लेंगे। ये क्षत्रिय लोग राज्य की पुलिस, सेना और प्रबन्ध-सम्बन्धी (administrative) विभागों में, जहां वीरता और शारीरिक शक्ति की अपेक्षया अधिक आवश्यकता होती है, काम करेंगे। ब्राह्मण-मन्त्रियों द्वारा निर्धारित नीतियों के अनुसार चलकर राज्य का शासन चलाना क्षत्रियों का काम होता है। राज्य-शासन का यह काम इस प्रकार किया जायेगा कि कोई किसी पर अन्याय न कर सकेगा। कोई किसी को ठग न सकेगा। कोई सबल निर्बल को सता न सकेगा। इस प्रकार अन्याय से प्रजा की रक्षा करना क्षत्रियों का व्रत और धर्म होगा। क्षत्रिय लोग धन-सम्पत्ति कमाने के पीछे नहीं पड़ेंगे। राज्य द्वारा जो वेतन या दक्षिणा उन्हें मिलेगी उसीपर वे सन्तुष्ट रहेंगे। निष्काम भाव से प्रजा की रक्षा करके अपने व्रत का पालन करना ही उनका उद्देश्य होगा। क्षत्रिय लोग अपने व्रत के पालन में अपना रुधिर बहाने और सिर कटाने के लिए भी सहर्ष उद्यत रहेंगे।

वैश्यों का व्रत—

जो लोग प्रजा को आवश्यक सामग्री का अभाव न होने देंगे ऐसा व्रत लेने

१. उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिरवनतपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्॥
मुद्राराक्षस ३।१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले वैश्य कहलायेंगे। वैश्य लोग अन्य विद्याओं को पढ़ने के अतिरिक्त राष्ट्र की भौतिक सम्पत्ति (material wealth) को बढ़ाने वाली विद्याओं का विशेष रूप से अध्ययन करेंगे। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कोई वैश्य कृषि की विद्या सीखेगा, कोई पशु-पालन की विद्या सीखेगा, कोई व्यापार-विषयक विद्याओं को पढ़ेगा, कोई उद्योग (Industry) सम्बन्धी विद्या को सीखेगा और कोई किसी प्रकार कला-कौशल (arts and crafts) से सम्बन्धी विद्या का अध्ययन करेगा। ये लोग राष्ट्र के लोगों के जीवन में काम आने वाली भांति-भाँति की चीजों का निर्माण करेंगे और व्यापार द्वारा उन चीजों को जनता तक पहुंचायेंगे। इस प्रकार भांति-भांति की चीजों का निर्माण और व्यापार करके जनता के अभाव-जनित कष्टों को दूर करना और राष्ट्र की भौतिक सम्पत्ति (material wealth) को बढ़ाना इन वैश्यों का व्रत होगा।

राष्ट्र की भौतिक सम्पत्ति को बढ़ाने का यह कार्य वैश्य लोग, निष्काम भाव से राष्ट्र की सेवा की भावना से अपना व्रत और धर्म समझकर करेंगे।

राष्ट्र के ब्राह्मणों ने निष्काम भाव से प्रजा में विद्या-विज्ञानों, सत्य, न्याय और धर्म के प्रचार का व्रत लिया है। क्षत्रियों ने निष्काम भाव से अन्याय से प्रजा की रक्षा करने का व्रत लिया है। कोई ऊंची योग्यता न होने के कारण शूद्रों ने शेष तीनों वर्णों के लोगों की सेवा का व्रत लिया है।

ब्राह्मण और क्षत्रिय धन-सम्पत्ति कमाने में अपना समय नहीं लगा सकते क्योंकि वैसा करने से राष्ट्र के लिये अत्यन्त उपयोगी उन कार्यों की हानि होगी जिन्हें वे कर रहे हैं। शूद्र में धन-सम्पत्ति कमाने की योग्यता ही नहीं है। वह तो सेवा ही कर सकता है। इसलिये वैश्य लोग यह व्रत लेते हैं कि अज्ञान से राष्ट्र की रक्षा का व्रत लेनेवाले ब्राह्मणों की, अन्याय से रक्षा का व्रत लेनेवाले क्षत्रियों की और सेवा का व्रत लेनेवाले शूद्रों की पालना का काम निष्काम भाव से हम करेंगे। अपने राष्ट्र के ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्रों को धन-सम्पत्ति के अभाव का कष्ट न होने देंगे। यह व्रत लेकर वैश्यलोग अपनी धन-सम्पत्ति से शेष ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की भी पालना करते हैं।

केवल धन-सम्पत्ति कमाने वाले को वैश्य नहीं कहते। धन-सम्पति तो डाकू भी इकट्ठी कर लेता है। वह वैश्य नहीं। वह दस्यु है, दण्डनीय है। वैश्य वह है जो धर्मपूर्वक धन-सम्पत्ति कमाता है और कमाई हुई सम्पत्ति को राष्ट्र के लोगों के भले के लिये खर्च कर देता है, ऐसा करना अपना व्रत और धर्म समझता है। वर्णाश्रम धर्म के रंग में रंगाहुआ वैश्य अपने नौकरों और मजदूरों का पेट नहीं काटेगा। प्रत्युत उन्हें अधिक से अधिक वेतन देगा। क्योंकि वह तो अपने व्रत के अनुसार कमाता ही एक प्रकार से उनके लिये ही है। सच्चा वैश्य राज्य को दिये जाने वाले करों (Taxes) को छिपायेगा नहीं, वह राज्यों द्वारा लगाये गये सब करों को पूरा-पूरा देगा। क्योंकि वह जानता है कि उसके इन करों से प्राप्त धन से राष्ट्र के क्षत्रिय आदि की पालना हो रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। और फिर वह तो अपने व्रत के अनुसार कमाता ही उनकी पालना के लिये है। अपने नौकरों को अच्छा वेतन देने और राज्य के करों को चुकाने के बाद जो धन उसके पास बचा रहता है, उसका भी दान करता रहता है। कहीं विद्यालय, औषधालय, अनुसन्धानालय और कहीं अनाथालय खुलवा देता है। यदि नई संस्था-निर्माण एवं संचालन में स्वयं को अक्षम पाता है तो पहले से खुली संस्थाओं में अधिक-से अधिक सहायता करता है। अपने नगर के छात्रों की सहायता करता है। ब्राह्मणों की सहायता करता है। वानप्रस्थ और संन्यासी लोगों की सहायता करता है। विधवाओं की और अनाथों की सहायता करता है। क्योंकि वह तो अपने व्रतानुसार कमाता ही इनकी सहायता के लिये है। वह जो कुछ कमाता है उसमें उसका अपना हिस्सा तो बहुत थोड़ा होता है। उसका अधिक भाग राष्ट्र के लिये कमाया जाता है। जो लोग इस प्रकार अभाव के कष्टों से राष्ट्र के लोगों की रक्षा करने का व्रत ले लेते हैं उन्हें वैश्य कहा जाता है।

चारों वर्ण राष्ट्र के न्यासरक्षक (ट्रस्टी) हैं—

इस प्रकार वर्णों का चुनाव करके उनके कर्त्तव्य-कर्मों को जीवन भर पालन करने का व्रत लेकर जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बनेंगे उनका अपना कुछ नहीं होगा। उनका सब राष्ट्र के लिये होगा। उनका ज्ञान, बल और धन की सब शक्ति राष्ट्र के भले में खर्च होगी। वे तो अपनी इन सब शक्तियों के साथ उस प्रकार का ममत्व रखेंगे जिस प्रकार का ममत्व किसी न्यास (ट्रस्ट= (Trust) के न्यासरक्षक (ट्रस्टियों) का उस न्यास की सम्पत्ति के साथ होता है। वे स्वयं को एक प्रकार से न्यासरक्षक समझकर ही अपनी इन सब शक्तियों को राष्ट्र के लोगों की भलाई में लगायेंगे। वर्णाश्रम-पद्धति के अनुसार इस प्रकार के वर्गों की दीक्षा और व्रत लेनेवाले लोगों में पूंजीवाद की पद्धति की कोई बुराई नहीं आ सकती।

शिक्षा-विषयक अनूठा सिद्धान्त—

वर्णाश्रम-पद्धति शिक्षा के क्षेत्र में यह "वर्णों के चुनाव और व्रत" का एक अनूठा और अत्यन्त मूल्यवान् सिद्धान्त देती है। इस सिद्धान्त को क्रिया में लाने से ही संसार के कष्ट वास्तव में दूर हो सकते हैं। प्राचीन भारत में इस सिद्धान्त के अनुसार ही शिक्षणालयों में शिक्षा दी जाती थी। तभी भारत में **रामराज्य** रहता था। आज तो संसार के शिक्षा-शास्त्री इस सिद्धान्त को जानते तक नहीं।

वर्णों का शक्ति-सन्तुलन—

पीछे हमने कहा था कि आज की पूँजीवादी समाज-व्यवस्था में तो धन इतना सर्वेसर्वा बना हुआ है कि सब कुछ धन से ही मिलता है। शारीरिक सुख, मान-प्रतिष्ठा और राज्य-शासन भी धन से ही प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णाश्रम-व्यवस्था में तीनों उपलब्धियें धनियों के हाथ न रह पायेंगी। उनका उचित विनिमय एवं विनियोग होगा। ब्राह्मण को 'गौरव' क्षत्रिय को 'शासन' वैश्य को 'ऐश्वर्य' प्रदान किया जाएगा।

ब्राह्मण की दक्षिणा 'गौरव'—

वर्णाश्रम-पद्धति में ब्राह्मण को मान-प्रतिष्ठा अथवा गौरव सबसे अधिक मिलेगा। किसी भी सभा-समाज में, उत्सव-समारोह में, और राज-दरबार में सबसे प्रथम और प्रतिष्ठित स्थान ब्राह्मणों को दिया जायेगा। ब्राह्मण के आ-जाने पर राजा भी अपना आसन छोड़कर खड़ा हो जायेगा और उसका अभिवादन और सत्कार करेगा। शास्त्रों में लिखा है कि सड़क पर राजा की सवारी जा रही हो, और दूसरी ओर सामने से गुरुकुल से पढ़कर निकला नया स्नातक, कोई श्रोत्रिय ब्राह्मण अथवा कोई संन्यासी आ रहा हो, तो राजा को चाहिये, उनके जाने के लिए मार्ग छोड़ दे। आज तो सर्वथा इसके विपरीत है। बेचारे स्कूल-मास्टरों की कोई भी प्रतिष्ठा नहीं। उनका वेतन कम होने के कारण उन्हें सम्मान के योग्य नहीं समझा जाता। उन्हें सबसे पीछे की कतार में खड़ा होना पड़ता है। वर्णाश्रम-व्यवस्था में अध्यापक की ब्राह्मण की, सबसे अधिक प्रतिष्ठा है। धनी लोगों को जहां-कहीं भी वे जायेंगे, ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बाद तीसरी पंक्ति में ही बैठने की जगह मिलेगी। राज्य के नियम इस प्रकार के रहेंगे।

ब्राह्मण के लिये सम्मान विषतुल्य है—

राष्ट्र एवं समाज का कर्त्तव्य है कि ब्राह्मण को सम्मान दे। दूसरी ओर ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि वह सम्मान की कामना भी न करे। शास्त्रों में लिखा है कि ब्राह्मण सम्मान से विष की तरह बचकर रहे[1]। पर समाज अपने कल्याण के लिये ब्राह्मणों को सबसे अधिक मान और सत्कार दे। ब्राह्मण बनना बड़ा कठिन है। बहुत थोड़े लोग ब्राह्मण बन सकते हैं। ब्राह्मणों का मान और सत्कार होते देखकर नवयुवकों को ब्राह्मण बनने की इच्छा होगी। और उनके द्वारा राष्ट्र में विद्या-विज्ञान और धर्म का प्रचार होकर समाज का कल्याण होगा। सम्मान के अभाव में आज कोई भी स्कूल मास्टर नहीं बनना चाहता। विवशतः यदि कोई स्कूल-मास्टर बन भी गये तो धन कमाने का अवसर मिलते ही स्कूल की नौकरी छोड़कर भाग जाते हैं।

क्षत्रिय को शासन-प्रभुता—

वर्णाश्रम-व्यवस्था में राज्य-शासन की प्रभुता 'क्षत्रिय वर्ण' के हाथ में रहेगी। क्षत्रिय राजनीति के ज्ञाता ब्राह्मणों के निर्देश में चलकर ही इस प्रभुता का, शासन-सत्ता का, प्रयोग करेंगे। राज-सत्ता से मिलने वाली प्रभुता वैश्यों के हाथ में नहीं जाने दी

---

१. सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्यैव चाकांक्षेदवमानस्य च सर्वदा ॥ मनु० २।१६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेगी। क्षत्रियों को मान और प्रतिष्ठा ब्राह्मणों के पश्चात् दूसरी कोटि पर मिलेगी।

वैश्यों को ऐश्वर्य—

"वैश्य" लोगों को धन-सम्पत्ति से मिलने वाले सुख और ऐश्वर्य अन्य वर्गों से अधिक मिलेगे। वैश्य लोग, ब्राह्मणों से ज्ञान सीखकर, और क्षत्रियों की रक्षा में रहकर ही राष्ट्र की समृद्धि के लिए भौतिक सम्पत्ति को पैदा करें। उनकी यह बड़ी भारी सेवा होगी। इसलिए वैश्यों को यह अधिकार होगा कि वे धन-सम्पत्ति से प्राप्त होने वाले ऐश्वर्यों को अन्य वर्णियों से अपेक्षाकृत अधिक भोगें। उन्हें मान और प्रतिष्ठा ब्राह्मण और क्षत्रियों से कम तीसरी कोटि की प्राप्त होगी। वे अपनी धन-सम्पत्ति का अपने ही लिये निर्बाध उपयोग न कर सकेंगे, निर्वाह के लिए न्यूनतम आवश्यक राशि से अधिक एक निश्चित विशेष राशि का उपयोग वैश्य लोग कर सकेंगे। उससे अधिक सब सम्पत्ति पीछे दिखाई गई रीति से राष्ट्र के उपयोग में लगा देनी होगी। इस प्रकार वर्णाश्रम-व्यवस्था में वैश्यों के हाथ में मान-प्रतिष्ठा, राज्य-शासन, और सम्पत्ति सब न रहकर सम्पत्ति-ऐश्वर्य अन्य वर्गों से कुछ अधिक रहेंगे।

इस प्रकार तीनों वर्णों की शक्ति का सन्तुलन करके वर्णाश्रम-पद्धति में पूंजीवादी (एक ही वर्ग के हाथ में सारी शक्तियें आ जाने भारी रूप) दोष से, समाज की रक्षा कर ली गई है। ब्राह्मण वर्ग के हाथ में ज्ञान और प्रतिष्ठा की, क्षत्रिय वर्ग के हाथ में राज्य-शासन की और वैश्यवर्ग के हाथ में धन-सम्पत्ति की शक्ति है। और फिर तीनों का अत्यन्त परस्पर सहयोग, सन्तुलन और सामञ्जस्य है। तीनों वर्ग, अपनी शक्तियों को परस्पर के कल्याण के लिए लगाने का व्रत लेकर उस व्रत के अनुसार ही चलते हैं। सब, सब को कुछ देते भी हैं और लेते भी हैं जिससे सारा राष्ट्र सुखी रहता है। गीता के शब्दों में **"परस्परं भावयन्तःश्रेयःपरमवाप्स्यथ।"** वाली उक्ति चरितार्थ होती है।

सम्पत्ति-हरण—

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है—यदि कोई धनपति अपने व्रत का पालन न करे, अपनी सम्पत्ति का राष्ट्रहित में व्यय न करे, अपने सेवकों को भी पर्याप्त वेतन न दे, राज्य के करों को भी पूरा न दे, दान भी न दे और सारी सम्पत्ति का अपने ही भोग-विलास में व्यय करता रहे तो ऐसे सम्पत्ति का दुरुपयोग करने वाले व्यक्ति का वर्णाश्रम-व्यवस्था में क्या उपाय है? इसका स्पष्ट और सरल उत्तर यह है कि ऐसे व्यक्ति को अनुशासित किया जाए। इसके दो उपाय होंगे। एक शम, दूसरा दम।

व्यक्ति का नैतिक कर्त्तव्य—

वर्णव्यवस्था का सिद्धान्त लोगों की सच्चरित्रता और सद्भावना पर अवलम्बित है। उसमें यह स्वीकार किया गया है कि राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति व्रतनिष्ठ है। व्रतपालन उसका कर्त्तव्य है। वह तो अपने प्राणों की वलि देकर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने व्रत की रक्षा करना धर्म समझता है। इसलिये व्रत के बन्धन में बंधा हुआ वैश्य भी अपनी सम्पत्ति का दुरुपयोग क्यों करेगा ? यही नहीं अन्य वर्णों के व्यक्ति भी अपने कर्त्तव्यों का ठीक पालन करेंगे। प्रथमत: ऐसे उदाहरण बहुत कम होंगे कि व्यक्ति अपने अधिकारों का दुरुपयोग करेगा। इस पर भी जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करेगा उसे दण्डित किया जाएगा। वेद में कहा है—"जो व्यक्ति नहीं देता है, सम्राट् उससे दिलवाता है[1]।" जो ब्राह्मण विद्या-दान नहीं करेगा या विद्या-दान करने में पक्षपात करेगा, राजा उसे दण्ड देगा। जो क्षत्रिय, जो राजकर्मचारी, न्याय पर नहीं चलेगा और प्रजा की रक्षा नहीं करेगा, राजा उसे दण्ड देगा। इसी भाँति जो वैश्य अपनी सम्पत्ति को राष्ट्र के कल्याण के कामों में नहीं लगा रहा होगा, राजा उसकी सम्पत्ति को राष्ट्र के कल्याण के कामों में लगवायेगा, राजा उसकी सम्पत्ति को छीन लेगा।

एक विभाजक रेखा (सदुपयोगवाद)—

पूंजीवादी पद्धति में किसी की सम्पत्ति छीनी नहीं जा सकती। जब कि वर्णाश्रम-व्यवस्था में दुरुपयोग होते ही सम्पत्ति छीनी भी जा सकेगी। यही वह विभाजक रेखा है जो स्पष्टतया दोनों व्यवस्थाओं को एक-दूसरे से पृथक् करती है। जिस प्रकार पौराणिक हिन्दु-समाज-व्यवस्था जन्म पर आधारित है, उसी प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था भी जन्म पर आधारित है। हिन्दु समाज-व्यवस्था में कोई व्यक्ति इसलिये ब्राह्मण है कि वह ब्राह्मण के घर जन्मा है। कोई व्यक्ति इसलिये शूद्र रहेगा कि वह शूद्र के घर जन्मा है। पूंजीवादी पद्धति में कोई व्यक्ति पिता की सम्पत्ति का इसलिए अधिकारी है कि वह उसके घर जन्मा है। पुत्र होने के कारण पिता की सम्पत्ति उसी की है। यह उसका चाहे जिस प्रकार उपयोग करे। उससे उसकी सम्पत्ति छीनी नहीं जा सकती। पूंजीवाद का यह सिद्धान्त, वैदिक व्यवस्था में मान्य नहीं है। वैदिक धर्म में जिस प्रकार वर्णों की व्यवस्था गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित है, उसी प्रकार सम्पत्ति का स्वामित्व भी सदुपयोग पर आधारित है। सम्पत्ति उसी की है, जो उसका सदुपयोग करे। यह सदुपयोग वाद ही वर्णाश्रम पद्धति को पूंजीवादी पद्धति से पृथक् करता है।

पुत्र-परिवर्तन का सिद्धान्त—

ऋषि दयानन्द आधुनिक समय के वर्णाश्रम-व्यवस्था के सबसे बड़े समर्थक और प्रचारक हैं। वह इस सम्बन्ध में और आगे जाते हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने महान् ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में यह प्रतिपादन करते हुए कि वर्णव्यवस्था जन्म के आधार पर नहीं, गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर होती है और यह भी लिखा है कि गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित वर्णों में सन्तानों का परिवर्तन भी हो जाना चाहिये।

---

१. सम्राट् आदित्सन्तं दापयति (यजु० ९.३४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् यदि ब्राह्मण के घर में गुण-कर्म-स्वभाव से वैश्य बालक उत्पन्न हो जाए और वैश्य के घर में गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मण बालक पैदा हो जाय तो ब्राह्मण के वैश्य पुत्र को वैश्य की सन्तान बना दिया जाए और वैश्य के ब्राह्मण पुत्र को ब्राह्मण की सन्तान बना दिया जाना चाहिए । इस प्रकार चारों ही वर्णों में गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर सन्तानों का परिवर्तन हो जाना चाहिये । राजसभा और विधानसभा को इस प्रकार के नियम बना देने चाहियें ।

ऋषि दयानन्द के सन्तान-परिवर्तन के इस सिद्धान्त में एक यह भी गहरा तत्त्व निहित है कि ब्राह्मणपरिवार में गुण-कर्म-स्वभाव से वैश्य बालक उत्पन्न हो गया और उसी की सन्तान रहा तो उस वैश्य बालक को अपने ब्राह्मण पिता का पढ़ने-लिखने का सामान, पुस्तकालय, परीक्षणशाला तथा परीक्षण शाला के यन्त्र आदि सम्पत्ति के रूप में मिलेंगे जो कि उस बालक के किसी भी काम के नहीं हैं । वह उनसे कुछ भी उपयोग नहीं ले सकेगा । उसके पास वह सब सामान नष्ट हो जायेगा । यदि वह सब सामान किसी ब्राह्मण बालक को मिलेगा तो वह उसकी सहायता से विद्या-विज्ञान की और अधिक उन्नति करेगा और राष्ट्र को लाभ पहुँचायेगा । इसी प्रकार एक व्यापार करने, कारखाना चलाने अथवा खेती करने वाले वैश्य के घर में गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मण बालक को अपने वैश्य पिता की सब सम्पत्ति मिलेगी । पर वह सब सम्पत्ति इस ब्राह्मण बालक के लिए किसी भी काम की नहीं है । वह व्यापार नहीं कर सकेगा, कारखाना नहीं चला सकेगा और खेती भी नहीं कर सकेगा । उन्हें बिगाड़ देगा और घाटा उठायेगा और राष्ट्र को जो उस व्यापार, कारखाने और खेती से लाभ हो सकता था वह न हो पायेगा, उससे राष्ट्र वञ्चित रहेगा । यदि किसी वैश्य-बालक को यही सम्पत्ति मिल जाती तो वह उसको और उन्नत करता और उससे राष्ट्र को और अधिक लाभ मिलता । कम से कम पहले जितना लाभ तो मिलता ही रहता । ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तानुसार सन्तानों का परिवर्तन हो जाने से ब्राह्मण के घर में विद्या-विज्ञान की उन्नति का काम चलता रहेगा और वैश्य के घर में राष्ट्र की भौतिक सम्पत्ति की वृद्धि का काम चलता रहेगा तथा दोनों की सेवा आदि के लिए सन्तान भी प्राप्त रहेगी ।

ऋषि दयानन्द की सन्तान-परिवर्तन वाली बात सुनकर आज लोगों को अचम्भा लगता है और इसे सर्वथा असम्भव समझा जाता है । वस्तुतः इस में अचम्भित होने और असम्भव समझने की कोई बात नहीं है । ऐसी सब बातें जनता की शिक्षा पर निर्भर करती हैं । शिक्षा और प्रचार द्वारा जनता में किसी भी प्रकार की प्रथायें डाली जा सकती हैं । आज हम कन्याओं का परिवर्तन करते ही हैं—हमारी कन्या विवाहित होकर दूसरे घर चली जाती है, दूसरे की कन्या विवाहित होकर हमारे घर आ जाती है और हमारी बन जाती है । सभी सास और श्वसुर विवाहित होकर आई इन कन्याओं को अपनी पुत्री मानते हैं । आज भी दूसरे के बालक को दत्तक लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना पुत्र बना लेने की प्रथा है। कहते हैं बर्मा आदि कई देशो में विवाह होने पर लड़का उसी प्रकार अपनी वधू के घर में चला जाता है जिस प्रकार हमारे यहाँ विवाहित होकर कन्या वर के घर में चली जाती है। दक्षिण भारत के अनेक प्रदेशों में कन्या के आधार पर वंश चलता है। ट्रावनकोर राज्य में राजगद्दी राजा की कन्या के पुत्र को मिला करती थी। इस प्रकार की सब प्रथायें जैसी चाहे वैसी चलाई जा सकती हैं। इसी प्रकार गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर सन्तान-परिवर्तन की पद्धति जनता में शिक्षा और प्रचार द्वारा ही चलाई जा सकती है।

पर हमने तो यहाँ उक्त मन्तव्य का उल्लेख इसलिए किया है कि ऋषि दयानन्द की सम्मति में सम्पत्ति पर अधिकार उसके सदुपयोग के आधार पर होना चाहिये न कि जन्म पर। सन्तान बदलने के सिद्धान्त में जन्म के आधार पर सम्पत्ति मिलने की बात तो सर्वथा जाती रहती है। जब सन्तान बदली जा सकती है तो सम्पत्ति तो बदली ही जा सकती है। सम्पत्ति तो एक से लेकर दूसरे को दी ही जा सकती है। इस प्रकार इस युग में वर्ण व्यवस्था के महान् समर्थक और प्रचारक ऋषि दयानन्द भी दुरुपयोग करने की अवस्था में सम्पत्ति छीन लिये जाने के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं।

श्रमाधिकार और स्वामित्व—

सम्पत्ति के अधिकार का एक अन्य आधार भी माना जाता है, और वह आधार है श्रम। जिसने श्रम करके सम्पत्ति को पैदा किया है, सम्पत्ति उसकी है। पूंजीवाद जन्माधिकार के साथ सम्पत्ति के श्रमाधिकार को भी मानता है। साम्यवादी (कम्युनिस्ट) लोग सम्पत्ति के जन्माधिकार को तो नहीं मानते, परन्तु श्रमाधिकार को मानते हैं। इसलिये वे कहते हैं कि कारखानों और खेतों में पैदा होने वाली सम्पत्ति क्योंकि उन में काम करने वाले मजदूरों के परिश्रम से तैयार होती है, इसलिये उस पर मजदूरों का अधिकार होना चाहिये। कारखाने का पूंजीपति मालिक और जमीदार जो कि कारखाने और खेत में कुछ भी काम नहीं करते उनका वहाँ पैदा होने वाली सम्पत्ति पर कुछ अधिकार नहीं होना चाहिये। पर केवल श्रम के आधार पर संपत्ति पर अधिकार मानने का यह सिद्धान्त भी ठीक नहीं है। एक व्यक्ति अपने परिश्रम से कमाई संपत्ति को सड़क पर रख फूंक दे और अपने परिश्रम से अर्जित मकान को फूंक दे तो क्या उसे ऐसा करने का अधिकार है? यदि है तो क्या उसका अनुकरण राष्ट्र के सब लोगों को करने दिया जायेगा? क्या ऐसा करने वाले व्यक्ति को पागल न समझा ज़ायेगा? किसी व्यक्ति को अपने परिश्रम से कमाई हुई सम्पत्ति, के साथ भी मनमाना व्यवहार नहीं करने दिया जा सकता। यदि अपने परिश्रम से कमाई सम्पत्ति को भी व्यक्ति किसी ऐसे कार्य में लगा रहा हो, जिससे राष्ट्र के लोगों को किसी न किसी रूप में कष्ट पहुंचता है अथवा राष्ट्र के सार्वजनिक हित की हानि होती है तो वह सम्पत्ति उससे छीन ली जाएगी। सम्पत्ति उसे अपने पिता से मिली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो चाहे उसने अपने परिश्रम से उपार्जित की हो, उस पर व्यक्ति का अधिकार तभी तक है जब तक व्यक्ति उस का सदुपयोग करता है। दुरुपयोग करने की अवस्था में सम्पत्ति छीन ली जायेगी।

सम्पत्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व—

पूंजीवादी पद्धति में सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व (private ownership of property) के सिद्धान्त को माना जाता है। व्यक्ति को जो सम्पत्ति अपने पिता से उत्तराधिकार में मिली है वह भी उसकी निजी सम्पत्ति है और जो सम्पत्ति उसने अपने परिश्रम से कमाई है वह भी उसकी निजी सम्पत्ति है। वह अपनी इस सारी सम्पत्ति को उत्तराधिकार रूप में अपनी सन्तान को दे सकता है। फिर उत्तराधिकार में दी गई वह सम्पत्ति उसकी सन्तान की निजी सम्पत्ति हो जायेगी। सम्पत्ति पर कमाने वाले का व्यक्तिगत स्वामित्व रहने से—एक भारी लाभ तो यह होता है ही कि ममत्व के कारण व्यक्ति कमा रहा है और यह मेरी है, इस भावना के कारण—व्यक्ति सम्पत्ति को उत्पन्न करने में और उसे बढ़ाने में अत्यधिक परिश्रम करता है।

वर्णाश्रम-व्यवस्था में भी सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। वेद में भांति-भांति की धनसम्पत्ति कमाने के लिए मनुष्यों को आदेश दिया गया है। अपना सुख-मङ्गल बढ़ाने के लिए भगवान् से की जाने वाली वैदिक प्रार्थनाओं में उपासक धन प्राप्ति की प्रार्थनायें भी बार बार करता है। वेद का उपासक अपने परमात्मा और अपने राजा से यह भी प्रार्थना करता है कि "हम पिता से उत्तराधिकार में मिलने वाली धन-सम्पत्ति के स्वामी बनें"[1]। मनुष्यों को भांति-भांति की धन-सम्पत्ति कमाने सम्बन्धी दिये गए वेद के इन आदेशों और प्रार्थनाओं से यह स्पष्ट परिणाम निकलता है कि व्यक्ति द्वारा कमाई सम्पत्ति उसकी निजी है, जिसका वह अपने जीवनकाल में तो उपयोग कर ही सकता है, साथ ही वह उत्तराधिकार में अपनी सन्तान को भी दे सकता है।

व्यक्तिगत स्वामित्व पर प्रतिबन्ध—

वर्णाश्रम-व्यवस्था में सम्पत्ति का यह व्यक्तिगत स्वामित्व निर्बाध एवं निष्प्रतिबन्ध नहीं है, पूंजीवाद में यह व्यक्तिगत स्वामित्व निर्बाध एवं निष्प्रतिबन्ध है, जिसके कारण आज की समाज-व्यवस्था में वे सब दोष आ रहे हैं जिनकी ओर लेख के आरम्भ में संकेत किया गया है। वर्णाश्रम-व्यवस्था में सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व पर कई तरह के प्रतिबन्ध हैं। जिनका उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। इन प्रतिबन्धों के कारण ही वर्णाश्रमधर्मी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का कभी दुरुपयोग नहीं करेगा।

---

१. ईशानस्य पितृवित्तस्य रायः। ऋग् १.७३.९
रयिर्न यः पितृवित्तः। ऋग १.७३.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अपनी सम्पत्ति को राष्ट्र के हित में ही व्यय करेगा। इन प्रतिबन्धों के कारण ही वर्णाश्रम-व्यवस्था में दिया गया सम्पत्ति के निजत्व का अधिकार उन बुराइयों का कारण नहीं बनेगा जिन बुराइयों का कारण पूंजीवादी पद्धति में बना रहता है।

वर्णाश्रम-व्यवस्था के आध्यात्मिक प्रतिबन्ध—

वर्णाश्रम-व्यवस्था में सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व पर लगाये गये प्रतिबन्धों की एक विशेषता है। ये प्रतिबन्ध जहां सम्पत्ति के दुरुपयोग और उसकी बुराइयों को रोकते हैं, वहां ये प्रतिबन्ध ऐसे भी हैं जिनसे व्यक्ति का आत्मा उन्नत होता है—वह श्रेष्ठ पुरुष बनता है। इन प्रतिबन्धों के परिणामस्वरूप व्यक्ति ऊँचा उठकर स्वेच्छा से अपनी सम्पत्ति का प्रयोग राष्ट्र की जनता के कल्याणार्थ करता है। और यदि कभी कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का दुरुपयोग करेगा तो, जैसा ऊपर कहा गया है, वेद की आज्ञानुसार उसकी सम्पत्ति छीन ली जायेगी। सम्पत्ति छिन जाने के भय से किसी व्यक्ति को राष्ट्र के कल्याण में अपनी सम्पत्ति व्यय करने के "व्रत" को तोड़ने का साहस नहीं होगा। दुरुपयोग करने पर सम्पत्ति छिन जाने का भय सामान्यतः अप्रत्यक्ष रूप से लोगों पर अपना प्रभाव रखेगा। यह भय लोगों के मन की पृष्ठभूमि में बहुत नीचे दवा पड़ा रहेगा। लोग, प्रत्यक्ष यही समझकर अपनी सम्पत्ति को राष्ट्र के हित में व्यय करेंगे कि यह उनका "व्रत" और "धर्म" है। और इस प्रकार राष्ट्र के हित में अपनी सम्पत्ति का व्यय करते रहने से उन के आत्मा को एक ऊँचा आध्यात्मिक सन्तोष होगा कि वे एक अच्छा और पवित्र काम कर रहे हैं। प्रत्यक्ष रूप में तो यह दण्ड कभी-कभी किसी को देना पड़ेगा। जैसे चोरी पर दण्ड मिलने का कानून होने से लोग चोरी करने से रुके रहते हैं। प्रत्यक्ष में तो चोरी करने पर दण्ड कम लोगों को देना पड़ता है। अधिकांश लोगों के मनों पर तो दण्ड का यह भय अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालता है। यह भय उनके मनकी पृष्ठभूमि में दबा पड़ा रहता है। प्रत्यक्षतः तो अधिकांश लोग यही समझकर चोरी करने से बचे रहते हैं कि चोरी करना अच्छा काम नहीं है। और उनके आत्मा को सन्तोष रहता है कि वे चोरी से बचे रहकर अच्छा और पवित्र काम कर रहे हैं। इस प्रकार वर्णाश्रम-व्यवस्था व्यक्ति की सम्पत्ति को राष्ट्र के हित में तो ले लेती है, पर इस पद्धति में व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को स्वयं प्रसन्नता से देता है और उसे देते हुए वह अपने आपको ऊँचा उठता हुआ गौरवान्वित अनुभव करता है। इस दृष्टि से वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति एक आध्यात्मिक (spiritual) पद्धति भी है।

साम्यवाद के भौतिक प्रतिबन्ध—

साम्यवाद (communism) और उसी की एक अन्य शाखा समाजवाद (socialism) भी सम्पत्ति पर प्रतिबन्ध लगाते हैं, जिससे कि उस के द्वारा होने वाले दोषों का परिहार किया जा सके। परन्तु ये प्रतिबन्ध केवल भौतिक हैं जो कानून पर आधारित हैं। इन प्रतिबन्धों से व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उससे उसकी सम्पत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलात् छीनी जा रही है। व्यक्ति अनुभव करता है कि वह निर्बल है, इस लिए उसे दबाया जा रहा है। उसकी यह अनुभूति उसके आत्मा पर बुरा प्रभाव डालती है। वह एक प्रकार की उदासीनता एक प्रकार की हीनता, एक प्रकार का घुटन अनुभव करता है। वह अन्दर ही अन्दर असन्तुष्ट एवं खिन्न रहता है। वह पसीने से कमाई हुई सम्पत्ति को छीन लेने वाले राज्यप्रबन्ध और समाज-व्यवस्था की निन्दा करने लगता है और उन्हें गालियाँ देने लगता है। उसकी यह मनोदशा और उनका प्रतिकार कर सकने में अशक्यता और भीरुता उसकी आत्मा को हीन बना देती है। उसका आत्मसन्तोष और आत्मगौरव जाता रहता है। सम्भवतः इसका कारण उनका जड़वादी दर्शन है। जिसमें आत्मोन्नति को कोई स्थान नहीं। इस दृष्टि से वर्णाश्रम-व्यवस्था सर्वोपरि और सर्वोत्तम है कि जिसमें भौतिक धन-सम्पत्ति के साथ-साथ मनुष्य के आत्मोन्नति का भी ध्यान रखा जाता है।

साम्यवाद में व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं—

साम्यवाद सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व (private ownerghip of Property) को स्वीकार नहीं करता। साम्यवाद में सम्पत्ति किसी व्यक्ति की न होकर, उस समाज या राष्ट्र की होती है जिस का वह होता है। व्यक्ति समाज की उस सम्पत्ति में से केवल अपने जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सम्पत्ति का उपभोग कर सकता है। जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सम्पत्ति से अधिक सम्पत्ति को न कोई संग्रह ही कर सकता है और न उत्तराधिकार में अपनी सन्तानों को ही दे सकता है। उत्पत्ति के सब साधन, जमीन और कारखाने आदि, तथा उनसे उत्पन्न होने वाली सारी सम्पत्ति राष्ट्र की होती है। व्यक्ति खेतों और कारखानों आदि में जो काम करता है— बह इसलिये नहीं कि वे उसके अपने निजी हैं और उनसे उसने कोई अपनी निजी सम्पत्ति पैदा करनी है। वह खेतों और कारखानों आदि में राष्ट्र के नौकर या सेवक के रूप में ही काम करता है किन्तु उनमें पैदा होने वाली सब सम्पत्ति राष्ट्र की होती है। राष्ट्र का सेवक होने के नाते व्यक्ति राष्ट्र की उस सम्पत्ति में से अपने जीवन-निर्बाह के लिए आवश्यक सम्पत्ति का उपभोग भर कर सकता है। इसी लिये १९१७ की क्रांति के पश्चात् रूस में जब साम्यवादी लोगों का शासन प्रारम्भ हुआ तो जहाँ उन्होंने यह व्यवस्था बना दी थी कि जमीन और कारखाने तथा अन्य उत्पत्ति के साधन किसी व्यक्ति के नहीं होंगे और न उनसे उत्पन्न सम्पत्ति ही किसी व्यवित की होगी। वह सारे राष्ट्र की होगी। वहां व्यवितयों को आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति संग्रह के प्रलोभन से रोकने के लिए उन्होंने यह व्यवस्था भी बना दी थी कि कोई भी व्यक्ति बैंक में रुपया जमा नहीं कर सकता, और न अपने जमा किए हुए रुपये को ही अपनी सन्तान को उत्तराधिकार में दे सकता है। इस प्रलोभन से रोकने के लिए शुरू में उन्होंने यह व्यवस्था भी बनाई थी कि किसी को नगद रुपये के रूप में वेतन ही न दिया जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी कर्मचारी को उसके कामके बदले में परचियें मिल जाती थीं। उन पर्चियों को देकर व्यक्ति दुकानों से उनके बदले में अपने खाने-पीने आदि का आवश्यक सामान ले आता था। न किसी को नकद रुपया मिलेगा, न कोई उसे व्याज पर चढ़ा सकेगा, न व्यापारादि में लगा सकेगा। न उससे कोई निजी लाभ ही उठा सकेगा, न उसका कोई और दुरुपयोग कर सकेगा; और न कोई उसे वैंकों में जमा ही कर सकेगा, फिर अपनी सन्तानों को उत्तराधिकार में देने का प्रश्न ही कहाँ उठेगा ? न होगा बांस और न वजेगी बांसुरी। साम्यवादी लोगों का सम्पत्ति के निजाधिकार विषयक सिद्धान्त यह है— उनके विचार में सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व को सर्वथा नष्ट किये बिना पूंजीवाद के दोषों और हानियों से छुटकारा नहीं हो सकता।

व्यक्तिगत स्वामित्व और मनोवैज्ञानिक तथ्य—

साम्यवादी व्यवस्था में एक कमी है जिसकी ओर साम्यवाद का ध्यान ही नहीं गया। सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व के सिद्धान्त में एक मनोवैज्ञानिक सच्चाई है, वह है व्यक्ति की अहंकार और ममत्व की भावना से लाभ उठाना। प्रत्येक व्यक्ति में अहंकार और ममत्व की 'मैं और मेरा" की भावना पाई जाती है, और प्रबल, रूप में पाई जाती है। इस भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति अपने, तथा अपनों के लिए बड़े से बड़ा परिश्रम करने और बड़े से बड़ा कष्ट उठाने के लिए उद्यत रहता है। जब कोई व्यक्ति किसी काम को अपने तथा अपने लिए लाभदायक समझकर करता है तो उसे सफल बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ता, दिन-रात एक कर देता है।

हम प्रतिदिन देखते हैं कि जो लोग वेतन लेकर काम करते हैं, वे उस काम को सफल बनाने के लिए भरपूर प्रयत्न नहीं करते। वे दफ्तर के समय पर काम करने जाते हैं और दफ्तर का समय हो जाने पर काम करना बन्द करके अपने घर चले जाते हैं। उसके आगे-पीछे उन्हें उस काम में कभी कोई रुचि नहीं होती। सेवा के निश्चित घण्टों में भी ईमानदारी से दिल लगाकर काम नहीं करते। गपशप में वहुत सा समय बिता देते हैं। क्योंकि उस कार्य के प्रति इन लोगों में ममत्व की अपने पन की भावना नहीं होती, उस काम में पूरा ध्यान और पूरी शक्ति नहीं लगती। परिणामतः काम कम होता है और व्यय अधिक होता है, न केवल राष्ट्र के लोगों की आवश्यक पूर्ति का सामान कम मात्रा में पैदा होता है, घाटिया किस्म का पैदा होता है और अधिक महंगा होता है अपितु राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। राष्ट्र की साख मारी जाती है।

दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि जो लोग किसी काम को अपना समझकर करते हैं, वे उस काम को सफल बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ते, दिन-रात एक कर देते हैं। उन्हें सोते-जागते उस काम को सफल बनाने की ही चिन्ता रहती है। वे उसमें अपने समय का एक-एक क्षण और अपनी शक्ति का एक-एक बूंद लगा देते हैं। ममत्त्व की इस भावना का परिणाम यह होता है कि काम अधिक होता है, अच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है, कम समय में होता है, कम व्यय में होता है। फलतः राष्ट्र के लोगों की आवश्यकता-पूर्ति का सामान अधिक मात्रा में, बढ़िया और सस्ता उत्पन्न होता है। उससे राष्ट्र के उपभोक्ताओं की आवश्यकतायें भी भली भाँति पूरी होती हैं और राष्ट्र की सामूहिक वस्तुसामग्री भी अधिक और बढ़िया रहती है। जिसके फलस्वरूप राष्ट्र का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का पलड़ा सदैव भारी रहता है, अन्य देशों में उसकी सदैव साख बनी रहती है।

वर्णाश्रम-व्यवस्था और व्यक्तिगत स्वामित्व—

वर्णाश्रम-व्यवस्था में सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व को स्वीकार किया गया है। व्यक्ति को किसी भी सम्पत्ति को अपनी समझकर कमाने का अधिकार है। वह अपनी संगृहीत सम्पत्ति को उत्तराधिकार में अपनी सन्तान को भी दे सकता है। वर्णाश्रम-व्यवस्था में अहंकार और ममत्व की इस मनोभावना से राष्ट्र के सामूहिक हित में लाभ उठाया गया है। सम्पत्ति पर ममत्व की भावना व्यक्ति को प्रेरित करती है कि वह अपना सारा ध्यान, साधन, शक्ति एवं समय कार्य के सफल बनाने में केन्द्रित करदे। जिसका परिणाम यह होगा कि चीजें अधिक मात्रा में बनेंगी, बढ़िया बनेंगी कम समय में बनेंगी, सस्तो बनेंगी। इससे राष्ट्र के उपभोक्ताओं की आवश्यकतायें भी अधिक अच्छी तरह पूरी हो सकेंगी और सामूहिक रूप से भी राष्ट्र का वैभव बढ़ेगा।

साम्यवाद के आदर्श में भी ढील—

सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व और अधिकार सर्वथा न रहने देने का साम्यवाद का यह आदर्शवाद रूस में भी अपने शुद्ध रूप में स्थिर न रह सका। प्रारम्भ में रूस में साम्यवादी लोग, जैसा ऊपर बताया गया है, किसी कर्मचारी को वेतन नहीं देते थे, उसे उसके काम के बदले में परिचियें दी जाती थीं जिन्हें स्टोरों (Stores) या दुकानों पर देकर कर्मचारी उनके बदले में वहां से अपनी आवश्यकता का, खाने, पीने, पहनने आदि का सामान ले सकते थे। कोई व्यक्ति बैंक में रुपया जमा नहीं कर सकता था। राष्ट्र की सम्पत्ति पर सबका समान अधिकार समझा जाता था।

कम्युनिज्म व्यक्ति के ममत्व-लाभ से वञ्चित--

जब सब को बराबर काम करना है, काम किसी भी प्रकार का हो, मूल्य सबका बराबर है, जब काम के बदले में सबको बराबर प्रतिफल मिलता है, और जब किसी भी वस्तु पर किसी भी रूप में अपनापन रहना नहीं तो ऐसी अवस्था में व्यक्ति को अपनी सारी शक्ति लगाकर, मर-खपकर, दिन रात एक करके, काम करने की क्या आवश्यकता है? कर्मचारियों में यह भावना पैदा होने का फल यह होता है कि काम अधिक मात्रा में नहीं होता और वस्तुयें उत्तम नहीं बनतीं।

आदर्शवाद व्यावहारिक न रहा—

रूस में भी यही हुआ। कर्मचारी आशा के अनुरूप काम नहीं करते थे। काम थोड़ा होता था और अच्छा नहीं होता था। वस्तुओं का निर्माण अधिक मात्रा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होता था, और वस्तुएं बढ़िया नहीं बनती थीं। इसलिये रूस के साम्यवादी नेताओं को व्यवहार में अपने आदर्शवाद को कुछ ढीला करना पड़ा। इन्हें एक प्रकार से पूँजीवादी पद्धति के साथ बहुत कुछ समझौता करना पड़ा। उन्हें कर्मचारियों को वेतन देने की रीति फिर बनानी पड़ी एवं वेतन भी कम और अधिक मात्रा में दिया जाने लगा। कम कुशल कर्मचारी को कम वेतन और अधिक कुशल कर्मचारी को अधिक वेतन दिया जाने लगा। अपेक्षया कम महत्त्वपूर्ण काम करने पर कम वेतन और अधिक महत्त्वपूर्ण काम करने पर अधिक वेतन मिलने लगा[१]। आज रूस में कर्मचारियों को मिलने वाले कम वेतन और अधिक से अधिक वेतन की मात्रा में बड़ा अन्तर है। रूस में कम से कम और अधिक से अधिक आमदनी का अनुपात लगभग एक और ८०[२] का है। वहां मजदूरों को सामान्यतया ४०० से ५०० रूबल उसकी तुलना में विशेषज्ञ और महत्त्वपूर्ण काम करने वाले को ३० से ४० हजार रूबल तक का भी वेतन देने की व्यवस्था है। इन दोनों सीमाओं के बीच में कर्मचारियों को उनकी योग्यता और काम के महत्त्व के अनुसार मिलने वाले वेतनों की मात्रा में पर्याप्त मिलता है। इतना ही नहीं कर्मचारियों से अधिक काम कराने के लिए आज के रूस में कर्मचारियों से ठेके[३] पर भी काम लिया जाता है जो कि विशुद्ध पूँजीवादी व्यवस्था है तथा अच्छा और अधिक काम करने पर कर्मचारियों को पुरस्कृत भी किया जाता है, उन्हें लाभांश (बोनस) भी दिया जाता है। रूस के लोग सरकारी बांड भी खरीद सकते हैं। जिन पर ७ या ८ प्रतिशत तक का ब्याज बैंकों से मिलता है। अब वहां कर्मचारी अपने वेतन में से रुपया बचाकर बैंक में भी अपना हिसाब रख सकते हैं। जिससे वे समय आने पर अपने रुपये का अभीष्ट उपयोग कर सकें। आज रूस की अर्थ-व्यवस्था बहुत अंश में लाभ और लाभ के पूँजीवादी सिद्धान्त को अपनाकर चल रही है[४]। अपने बचाये रुपये को उत्तराधिकार में देने की सुविधा भी दे दी गई है। यह अवश्य है कि रुपया अपनी इच्छानुसार केवल अपने तथा अपने बच्चों की सुख-सुविधा तथा उनके शिक्षण आदि पर ही व्यय किया जा सकता है। उस रुपये को सम्पत्ति के उत्पादन में नहीं लगाया जा सकता। इस प्रकार रूस में शासक वर्ग साम्यवादी आदर्श को ढीला कर उसे व्यावहारिक रूप दे रहा है। कर्मचारियों की आमदनी में भिन्नता की, एक सीमित अंश में सम्पत्ति

---

१. Soviet Communism : A New Civilization by Sidnery and Beatrice Wedile.

२. Socialism Reconsidered by M. R. Masani.

३. Soviet Communism : A New Civilisations by Sidney and B. Wedile.

४. Socialism Reconsidered by M. R. Masani.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर व्यक्तिगत स्वामित्व की बात स्वीकार करनी पड़ी। क्योंकि साम्यवाद के आदर्श का पूर्णत: पालन करने की अवस्था में व्यक्ति के अहंभाव और ममत्व को कोई स्थान नहीं था। और अहंभाव और ममत्व के अभाव में कोई भी व्यक्ति किसी भी काम में अपनी पूरी शक्ति नहीं लगा सकता।

अपने आदर्शवाद में रूस के साम्यवादियों द्वारा इस प्रकार की कुछ ढीलें बाधित होकर करनी पड़ीं। ये अब भी रूस में सर्वसाधारण लोग, अपने को सर्वथा स्वतंत्र अनुभव करते हुए पूरा काम नहीं करते। उनके द्वारा उत्पन्न की गई सम्पत्ति उनकी नहीं होती। वे कारखाने आदि के राज्य द्वारा नियुक्त प्रबन्धकों के नौकर-मात्र होते हैं। अभी तो इतना ही हुआ है कि उन्हें वेतन योग्यतानुसार, कम-अधिक मिलने लगे हैं। तथा खर्च में बचे रुपये को बैंकों में रख सकने और अपनी सम्पत्ति को उत्तराधिकार में दे सकने आदि की कुछ सुविधायें दी जाने लगी हैं।

वर्णाश्रम-व्यवस्था में व्यक्ति के अहंभाव और ममत्व का ध्यान रखकर उसका पूरा लाभ उठाया गया है। इस दृष्टि से भी आश्रमपद्धति साम्यवाद के आदर्शवाद से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उपयोगी है।

प्रतिस्पर्धा का तत्त्व—

सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व के सिद्धान्त के आधार पर जब सम्पत्ति कमाई जाती है तो उसमें एक और तत्त्व निविष्ट रहता है। वह तत्त्व होता है प्रतिस्पर्धा (Compe.ia ion) का प्रत्येक कमाने वाला दूसरों से अधिक सम्पत्ति कमाना चाहता है; और इसके लिए वह घोर परिश्रम करता है। इस प्रतिस्पर्धा की भावना का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति सम्पत्ति पैदा करने में अपना सारा समय और सारी शक्ति लगा देता है क्योंकि वह औरों से आगे बढ़ना चाहता है। फलत: काम अधिक होता है, अच्छा होता है, कम समय में होता है और कम पैसे में होता है। जो वस्तुएं बनती हैं वे मात्रा में अधिक बनती हैं, उत्तम बनती हैं कम व्यय में बनती हैं अतएव सस्ती बनती हैं। परिणाम-स्वरूप ऐसे व्यक्ति की एवं उसके माल की अपेक्षया अधिक मांग रहती है। और वह सम्पत्ति कमाने के क्षेत्र में औरों से आगे बढ़ जाता है। वस्तुयें मात्रा में अधिक, उत्तम तथा सस्ती होने से राष्ट्र के उपभोक्ताओं की आवश्यकतायें भी अच्छी तरह पूरी होती हैं। और उससे राष्ट्र की सामूहिक सम्पत्ति की भी वृद्धि होती है वर्णाश्रम-व्यवस्था में इस प्रतिस्पर्धा की भावना का आदर कर उसका राष्ट्र के हित में लाभ उठाया गया है परन्तु वर्णाश्रम-व्यवस्था में सम्पत्ति कमाने की, यह प्रतिस्पर्धा पूंजीवादी प्रतिस्पर्धा की भाँति भोग-विलास की पूर्ति और दूसरों के उत्पीड़न में काम नहीं आती। वर्णाश्रम-व्यवस्था के सांचे में ढला हुआ वैश्य-व्यवसायी राष्ट्रहित में अपनी सम्पत्ति को दान दे देता है, क्योंकि वह यह व्रत लेकर ही सम्पत्ति कमाने निकलता है। उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिस्पर्धा इसलिये होती है कि अधिक से अधिक सम्पत्ति कमाकर उसे राष्ट्रहित में लगाये। वह तो एक प्रकार से राष्ट्र का न्यासरक्षक होकर राष्ट्रहित में राष्ट्र के लोगों को सुख पहुंचाने की दृष्टि से ही सम्पत्ति कमाने की प्रतिस्पर्धा में पड़ता है। वर्णाश्रम-व्यवस्था की इस स्वस्थ प्रतिस्पर्धा से राष्ट्र को जो लाभ मिलता है साम्यवाद उससे भी वंचित रहता है।

व्यक्ति की योग्यता और रुचि में भेद—

वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति इस बात को भी खुले रूप में स्वीकार करती है कि सब मनुष्य अपनी अभिरुचियों, योग्यता, परिश्रम, शक्ति और स्वभाव आदि की दृष्टि से समान नहीं होते। किसी की रुचि कैसी होती है और किसी की कैसी। किसी में किसी प्रकार की योग्यता होती है और किसी में किसी प्रकार की। एक प्रकार की योग्ता में भी किसी में कम योग्यता होती है और किसी में अधिक, कोई कम परिश्रम कर सकता है और कोई अधिक; तथा किसी का स्वभाव किसी प्रकार का होता है और किसी का किसी प्रकार का। वेद में इसी बात को दोनों हाथों की कार्यशक्ति के भेदक उपमा देकर समझाया है—मनुष्य के दोनों हाथ देखने में तो एकसमान होते हैं, तो भी उनमें काम करने की शक्ति एकसमान नहीं होती, एकही गाय की दो बच्छिएं एक जितना दूध नहीं देतीं, दो जोड़िये भाइयों में भी एक जैसा बल और पराक्रम नहीं होता, एक ही वंश के दो व्यक्ति एकजैसे उदार नहीं होते और एक जितना दान नहीं करते[1]। दूसरे स्थान पर वेद कहता है—हे उषा! तुम भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले जीवधारियों को अपने-अपने काम-धन्धे देखने-भालने के लिए रात्रि के पीछे अन्धकार से बाहर कर देती है। किसी को क्षत्रिय के यशस्वी काम करने के लिए, किसी को ब्राह्मण के यज्ञादि के काम करने के लिए, किसी को धन कमाने के, वैश्य के काम करने के लिए और किसी को चल-फिरकर शूद्र के काम करने के लिए[2]। इस प्रकार वेद की सम्मति में मनुष्यों की रुचि, योग्यता, परिश्रम करने की शक्ति और स्वभाव सब भिन्न-भिन्न होते हैं।

हमें व्यक्ति की रुचि, योग्यता, काम करने की शक्ति और स्वभाव आदि को ध्यान में रखकर ही उसे कोई काम देना चाहिये और उसी के अनुसार उसे उसके परिश्रम का प्रतिफल भी देना चाहिये साम्यवाद में व्यतियों के इसी रुचि-भेद, योग्यता-भेद और स्वभाव-भेद को ध्यान में नहीं रखा जाता। वहां तो सब समान हैं। एक ही लाठी से हांके जाने वाली व्यवस्था चलती है। सारी सम्पत्ति

---

१. समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्ट; सं मातराचिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् सन्तौ न समं पृणीतः॥ ऋ० १०-११७-९

२. क्षत्राय त्वं श्रवसे महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै।
विसदृशा जीविताभिप्रेक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥ ऋ० १-११३-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र की, व्यक्ति जो भी कुछ पैदा करता है सब राष्ट्र का, जो जितना परिश्रम कर सके उतना परिश्रम उसे करना ही चाहिये। सब के परिश्रम का मूल्य बराबर हैं। परिश्रम के प्रतिफल के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र की सम्पत्ति में से खाने, पीने, पहिनने आदि के लिए यथेष्ट मिल जायेगा। साम्यवाद का आदर्श इतना ही है।

वर्णाश्रम-व्यवस्था इस आदर्शवाद को स्वीकार नहीं करती। वहाँ तो व्यक्तियों की रुचि और योग्यता-भेद को स्वीकार किया जाता है। कोई काम राष्ट्र के लिए अधिक महत्त्व का होता है तो कोई कम महत्त्व का। राष्ट्र के राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री का या शिक्षा-संस्थाओं में अध्यापन करने वाले उपाध्यायों का और अनुसंधानशालाओं में नये-नये आविष्कार करने वाले वैज्ञानिकों का काम एक टोकरी ढोने वाले मजदूर के काम की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व का है। इसी प्रकार और-और कामों के महत्त्व का भी तारतम्य है। राष्ट्र की रक्षा के और राष्ट्र में शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के प्रचार के काम दूसरे कामों की अपेक्षा अधिक महत्त्व के हैं। किसी भी व्यक्ति को उसके काम का जो पारिश्रमिक या प्रतिफल दिया जाये—वह उसकी योग्यता, उसके काम के महत्त्व और उसकी रुचि को ध्यान में रखकर दिया जाना चाहिये।

पूर्ण साम्य मनुष्य-स्वभाव के विपरीत है—

लोगों की योग्यता, रुचि और काम के महत्त्व को ध्यान में रखकर उन्हें यथोचित पारिश्रमिक या दक्षिणा न दी जाएगी तो लोगों में काम करने की प्रेरणा नहीं रहेगी। इस प्रेरणा के न होने से राष्ट्र को उनकी योग्यता और शक्ति का पूरा लाभ न मिल सकेगा। परिणामत: न राष्ट्र समृद्ध होगा और न जनता सुखी होगी। रूस में साम्यवादियों के आगे भी यह कठिनाई आई और उन्हें साम्यवाद के आदर्श को त्यागकर पूंजीवादी पद्धति की भी कुछ बातें अपनानी पड़ीं। रूस में साम्यवाद व्यावहारिक रूप में नहीं चल सका। साम्यवादी दल के प्रमुख लोगों को राज्य के प्रमुख अधिकारियों को जो सुविधायें और अधिकार प्राप्त हैं वे सुविधायें और अधिकार सर्वसाधारण को प्राप्त नहीं। मनुष्यों की योग्यता, रुचि और प्रवृत्ति-भेद को ध्यान में रखे विना यदि सब के साथ सर्वथा समान बर्ताव किया जायेगा तो साम्यवाद का यह आदर्श अधिक देर नहीं चल सकेगा। क्योंकि यह मनुष्य-स्वभाव के विपरीत है। वर्णाश्रम-पद्धति में साम्यवाद के सिद्धान्त को पूर्णत: स्वीकार नहीं किया गया। उसमें मनुष्यों की योग्यता, रुचियों प्रवृत्ति और कार्यशक्ति के मौलिक भेद को स्वीकार किया गया है। उसी पर वर्णाश्रम-व्यवस्था का सुदृढ़ भवन खड़ा है। जिसका सुखद परिणाम राष्ट्र और समाज को प्राप्त होता है।

शिक्षा में अवसर की पूर्ण समानता—

वर्णाश्रम-पद्धति में शिक्षा-प्राप्ति के अवसर समान हैं। राष्ट्र के सब लोगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करने का अवसर समान रूप से मिलेगा। ऋषि दयानन्द ने अपने महान् ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में शिक्षा-विषयक विचार देते हुए लिखा है कि **इसमें राज-नियम और जाति-नियम होना चाहिये कि पांचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके, पाठशाला में अवश्य भेजे देवे। जो न भेजे वह दण्डनीय हो**[1]। वर्णाश्रम-पद्धति में जाति के प्रत्येक बालक को अनिवार्य रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जायेगा। चाहे ब्राह्मण का बालक हो और चाहे शूद्र का, चाहे राजा का लड़का हो और चाहे रंक का, सब के लिए गुरुकुलों में जाकर पढ़ना अनिवार्य होगा[2]। ब्रह्मचर्याश्रम का सारा समय, लड़कों की अवस्था में कम से कम २४ वर्ष की आयु तक और लड़कियों की अवस्था में कम से कम १६ वर्ष की आयु तक गुरुकुलों में रहकर पढ़ने लिखने में राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे को बिताना होगा। और वह सारी ऊँची से ऊँची शिक्षा प्रत्येक बालक को निःशुल्क दी जायेगी। पढ़ने वाले आचार्य और गुरु लोग विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लेंगे ।

शिक्षा की अनिवार्यता—

विद्यार्थियों को भोजन, वस्त्र भी जनता या राज्य की ओर से मिलेगा। प्राचीन समय में भारतीय लोगों ने निःशुल्क शिक्षा का समाधान भिक्षा-वृत्ति द्वारा किया था। प्रत्येक गृहस्थ विद्यार्थियों को भिक्षा देना अपना कर्त्तव्य समझता था। हर गृहस्थ माता यह सोचती थी कि मेरा बालक भी तो किसी द्वार पर जाकर भिक्षा माँग रहा होगा जैसे मेरे बालक को कोई और माता भिक्षा दे रही है, वैसे ही मुझे भी दूसरी के बालक को भिक्षा देनी चाहिए। इस प्रकार सब विद्यार्थियों को भिक्षा द्वारा प्रतिदिन उत्तम भोजन मिल जाता था। आवश्यकता होने पर वस्त्रादि का प्रबन्ध भी भिक्षादि से हो जाता था। ब्रह्मचारियों और उनके गुरुओं की सब आवश्यकताएँ पूर्ण करना गृहस्थ अपना धर्म समझता था। निर्धन से निर्धन बालक भी बिना कुछ व्यय किये ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकता था। अपने को योग्य बनाकर इच्छित अधिकारी बन सकता था और इच्छित पद पर पहुँच सकता था।

---

१. सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास।

२. मनु के अनुसार यदि ब्राह्मण सोलह वर्ष की आयु तक क्षत्रिय बालक बाईस वर्ष की आयु तक और वैश्य-बालक चौबीस वर्ष की आयु तक गुरुकुल में पढ़ने न जा सका तो वह पतित हो जाता है और उसकी व्रात्य संज्ञा हो जाती है। उस पतित व्रात्य के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। यों सामान्यतया आठवें वर्ष तक ब्राह्मण-बालक को ग्यारहवें वर्ष तक क्षत्रिय-बालक को और बारहवें वर्ष तक वैश्य-बालक को अवश्य गुरुकुल में पढ़ने चला जाना चाहिये॥
— मनु० २। ३६-४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा में वानप्रस्थाश्रम का योगदान—

शिक्षा को निःशुल्क रखने में वानप्रस्थाश्रम का बड़ा योगदान होता था। वानप्रस्थ लोग गृहस्थ में दुनिया देख चुके होते थे, भोग चुके होते थे। वे गृहस्थ का त्याग करके वानप्रस्थ में तप और त्याग का जीवन व्यतीत करते थे। अब वे गुरुकुलों में पढ़ाने का काम करते थे। उनकी आवश्यकताएँ बहुत कम होती थीं। विद्यार्थी भिक्षा में जो भोजन, वस्त्र लाते थे उसी में उनका भी निर्वाह हो जाता था। उन्हें आजकल के अध्यापकों और उपाध्यायों की भाँति बड़े-बड़े वेतन लेने की आवश्यकता न होती थी। परिणामतः शिक्षा निःशुल्क होती थी।

गृहस्थ ब्राह्मण-शिक्षक, उनकी आजीविका—

अब रहे ग्रहस्थ ब्राह्मण जो पढ़ाने का काम करते थे, केवल उन्हीं की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रश्न शेष रह जाता था। विद्यार्थियों द्वारा लाई गई भिक्षा से और वैश्यों द्वारा दी गई दक्षिणा से उनकी आवश्यकताएं सहज पूरी हो जाती थीं और ये गृहस्थ ब्राह्मण भी तो स्वभावतः त्यागी, निर्लोभी और तपस्वी होते थे। उनकी भी आवश्यकताएं स्वल्प होती थीं। इसके अतिरिक्त राज्य की ओर से भी नियमित सहायता मिलती रहती थी। गुरुकुलों का काम इस प्रकार भली भाँति चलता रहता था। परिणामतः शिक्षा सर्वथा निःशुल्क होती थी।

महंगी शिक्षा के दुष्परिणाम—

पूँजीवादी व्यवस्था में शिक्षा अत्यन्त महंगी है। फलतः अच्छे धनी व्यक्ति अथवा उच्च वेतनभोगी राजकर्मचारी लोग अपने बच्चों को ऊँची शिक्षा दिला सकते हैं। और उनके बच्चों को ऊँची शिक्षा प्राप्त करने का अवसर सुलभ होने से सब सुविधायें और सारे पद उन्हीं के बालकों को मिलते रहते हैं। इस प्रकार राष्ट्र के सारे अधिकारों और सारे पदों पर छोटे से वर्ग का एकाधिकार बना रहता है। जहाँ वर्गहीन समाज बनाने का दावा किया जाता है वहाँ भी यह "विशिष्ट वर्ग" अधिकार किये ही रहता है—धनियों का नहीं तो राज-कर्मचारियों का। सर्वसाधारण व्यक्ति इन सब सुविधाओं और पदों से वंचित रहते हैं। क्योंकि शिक्षा के महंगी होने के कारण ऊँची शिक्षा ले सकने का सब को अवसर उपलब्ध नहीं होता।

निःशुल्क शिक्षा के व्यापक परिणाम—

शिक्षा के निःशुल्क होने से ये सुखद परिणाम होंगे कि राष्ट्र का प्रत्येक बालक ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर अभीष्ट अधिकार एवं पद प्राप्त कर सकेगा। प्रत्येक बालक को शिक्षाप्राप्ति के समान अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। किसी भी वर्ग के किसी बालक के साथ कभी कोई पक्षपात न हो सकेगा। जन्मजात, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन, राजा-रंक, ब्राह्मण-शूद्र आदि वर्गभेदों का स्वतः उन्मूलन हो जाएगा। महर्षि दयानन्द ने उक्त आशय को अभिलक्ष्य करके निम्नलिखित आदेश दिया है **"सब को तुल्य वस्त्र खान-पान आसन दिये जायँ, चाहे वह राजकुमार वा चाहे राजकुमारी हो चाहे दरिद्र की सन्तान हो।"**

साम्यवादी दर्शन का आधार—कार्लमार्क्स और लेनिन के साम्यवाद का दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिकवादी है। साम्यवादी दर्शन भौतिक प्रकृति के अतिरिक्त और किसी पदार्थ की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। उसके मन्तव्यानुसार इस सारे प्रपञ्च का मूल कारण प्रकृति ही है। प्रकृति ही अपने स्वयं के आन्तरिक नियमों के अनुसार चलती हुई जगत् के विविध रूपों में प्रकट होती रहती है। प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के विभिन्न अनुपातों में मिलते रहने से ही जगत् के विविध पदार्थ बनते रहते हैं। प्रकृति को चलाने वाला और उसके परमाणुओं को विभिन्न अनुपातों में मिलाकर उनसे संसार के पदार्थों को बनाने वाला कोई परमात्मा नहीं है। बिना किसी की प्रेरणा के प्रकृति स्वयं ही जगत् के विभिन्न पदार्थों के रूप में परिणत होती रहती है।

साम्यवादी लोग जीवात्मा की सत्ता को भी स्वीकार नहीं करते। उनका भौतिक वादी दर्शन कहता है कि जैसे अग्नि के संयोग से जल में उष्णता उत्पन्न हो जाती है, जैसे पोटाशियम फैरोसाइनाइड के हल के पीले रंग के घोल में फैरिक क्लोराइड का हलके पीले से रंग का घोल मिला देने से गहरा नीला रंग बन जाता है। जैसे कैडमियम नाइट्रेट के नीरंग घोल में सोडियम सल्फाइड का नीरंग घोल मिला देने से उसका पीला रंग बन जाता है। जैसे मर्क्यूरिक क्लोराइड के श्वेत रंग के घोल में सोडियम आयोडाइड का श्वेत रंग का घोल मिला देने से रंग लाल-नारंगी बन जाता है। जैसे सोडा कास्टिक के हलके नीरंग घोल में फिनाल्फ्थ का हलका नीरंग घोल मिला देने से उसमें सुन्दर गहरा गुलाबी रंग बन जाता है। उसी प्रकार प्राकृतिक परमाणुओं के एक विशेष प्रकार के संयोग से शरीरों में चेतनता दिखाई देने लगती है। जिसे वैदिक दर्शन जीवात्मा का नाम दे देते हैं। भौतिकवाद के अनुसार जीवात्मा की एक स्वतन्त्र पदार्थ के रूप में कोई सत्ता नहीं है। जीवात्मा प्राकृतिक परमाणुओं के एक संयोग-विशेष का परिणम मात्र है। प्राकृतिक परमाणुओं का वह संयोग-विशेष जब तक बना रहता है तब तक हमारे शरीरों में चेतना प्रतीत होती रहती है। जब परमाणुओं का वियोग हो जाता है तो हमारे शरीर में चेतना की प्रतीति होनी बन्द हो जाती है। जिसे हम मृत्यु का नाम दे देते हैं और भूल से समझ बैठते हैं कि हमारे भीतर कोई जीवात्मा नाम का स्वतन्त्र पदार्थ था जो हमारे शरीर को छोड़कर चला गया है। "वस्तुतः कोई जीवात्मा नाम का स्वतन्त्र पदार्थ है ही नहीं जो मृत्यु के समय हमारे शरीर को छोड़ जाता हो।

जब साम्यवादियों के मत में प्रकृति ही प्रकृति है, प्रकृति से भिन्न न कोई आत्मा है और न कोई परमात्मा तो उनके मत में परलोक, पुनर्जन्म और कर्मफल आदि के प्रश्न ही नहीं रहते। और इन पर आधारित धर्म की सत्ता उपहासास्पद है। इसी लिए साम्यवादी लोग धर्म का प्रत्यक्ष खण्डन करते हैं। इस प्रकार साम्यवाद का दर्शन नास्तिकवाद का दर्शन है और वह पूर्ण रूप से भौतिकवादी है।

साम्यवाद का भौतिक आधार और उसका परिणाम—

साम्यवाद मनुष्य-समाज की समस्याओं के लिए भी भौतिकवादी दृष्टि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोण अपनाता है। साम्यवाद केवल मनुष्य के भौतिक पहलू को ही देखता है। केवल मनुष्य के शरीर को ही देखता है। और इसी लिए वह केवल मनुष्य की शारीरिक खाने-पीने-पहनने आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही बल देता है। वह यह भुला ही देता है कि शरीर के अतिरिक्त मनुष्य कुछ और भी है, कि उसकी शारीरिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त और भी कुछ आवश्यकताएँ हैं। साम्यवाद मनुष्य के आत्मिक पहलू को नहीं पहचानता। मनुष्य की आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं देता। पूंजीवादी पद्धति में राष्ट्र के सब लोगों की शारीरिक आवश्कताओं की पूर्ति भली भाँति नहीं होती। उसमें अधिकांश लोग पीडित और शोषित रहते हैं। साम्यवाद उसका उपाय तो करता है, परन्तु जो साधन प्रयोग में लाता है वे निरे भौतिक हैं। साम्यवाद कहता है "सब की सम्पत्ति छीन लो, किसी के पास निजी सम्पत्ति मत रहने दो, सारी सम्पत्ति राष्ट्र की बना दो। इस काम में बल-प्रयोग करना पड़े तो वह भी करो। जो लोग इसका विरोध करें उनकी बात मत सुनो। उनका बोलना बन्द कर दो। और जो बोले उनको दण्डित करो। वध अपेक्षित हो वह भी कर दो। भौतिक दृष्टिकोण का परिणाम था कि १९१७ की क्रान्ति के पश्चात् जब साम्यवादियों के इसी रूस में साम्यवादी समाज-व्यवस्था का आरम्भ किया गया और तदनुसार वहाँ के जमींदारों की भूमियें छीनी जाने लगीं, और उन्होंने इसका विरोध किया तो लाखों को मौत के घाट उतार दिया गया। अनुमान लगाया गया है कि इस प्रकार समाप्त किये गये जमींदारों की सख्या ४० लाख से ७० लाख के बीच होगी[१]। और इस गड़बड़ के फलस्वरूप खेती के ठीक न होने से जो अकाल पड़ते रहे उनमें लगभग ५० लाख आदमी भूखों मर गए। साम्यवाद के इसी भौतिक दृष्टिकोण का ही एक परिणाम यह है कि रूस में और उसके अनुयायी अन्य देशों में साम्यवादी विचारों के विरुद्ध किसी को अपनी सम्मति प्रकट करने का कोई अधिकार नहीं। जो उनके विरुद्ध अपने विचार प्रकट करता है, उसे कठोर दण्ड दिया जाता है—जेल में डाल दिया जाता है, हत्या भी कर दी जाती है। अनुमान लगाया गया है कि रूस में साम्यवादी लोगों के द्वारा ५० लाख से १०० लाख के बीच अपने से भिन्न राजनीतिक विचार रखने वाले लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया[२]। अपनी सत्ता को बद्धमूल करने के लिए बौल्शेविक लोगों ने कुल मिलाकर लगभग १५० लाख रूसी लोगों की हत्या की या भूखों मार दिया[३]। इसी भांति चीन के साम्यवादियों ने १९४९ से १९५६ तक कोई २ करोड़ चीनी लोगों की हत्या की और २ करोड़ ३० लाख लोगों को जेलों में डाल रखा है, जहाँ उनसे कठोर श्रम लिया जाता है[४]। उनके

---

१. socialism Reconsidered by M. R. Masani
२. „ „ „
३. Readeres Digest July 1956
४. „ „

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी भौतिकवादी दृष्टिकोण का परिणाम है कि साम्यवादी लोग दूसरे देशों में अपने विचारों को फैलाकर वहां की सरकारों को गिराकर, उसके स्थान में साम्यवादी सरकारें स्थापित करने के काम में सब प्रकार के अच्छे-बुरे उपायों का अवलम्बन करते हैं। बड़ी से बड़ी रिश्वत भी देते हैं, असत्य प्रचार का सहारा भी लेते हैं, तोड़-फोड़ भी कराते हैं, शासन में रुकावटें भी डालते हैं। इस भौतिक दृष्टिकोण की नीति पर चलने वाला व्यक्ति स्वयं भी अपने आत्मिक गुणों को खोकर पशुत्व की कोटि में पहुंच जाता है और जिन पर उस नीति का प्रयोग करता है उन्हें भी आतंकित कर, दब्बू और पतित बना देता है। साम्यवादी लोग यह नहीं करते कि मनुष्य के आत्मिक पहलू पर ध्यान दें और अपनी समाज-व्यवस्था बनाते समय ऐसे उपायों का अवलम्बन लें कि जो मनुष्य को पतित न करके ऊँचा उठाने वाले हों। वे यह नहीं करते कि पूंजीवाद के दोषों से समाज की रक्षा करने के लिए, लोगों की आत्माओं को जगाकर उनकी उदात्त भावनाओं को जगाकर समाज की समस्याओं को हल करें। साम्यवाद की भौतिकवादी पद्धति में जब किन्हीं समस्याओं को हल किया जाता है तो उसमें बहुत अधिक हठ और दुराग्रह होता है, कलह और विद्वेष उभरता है, ईर्ष्या भडकती है, असहिष्णुता जागती है, रक्तपात होता है, हत्यायें की जाती हैं, खून की नदियाँ बहती हैं, अशान्ति का सागर उमड़ता है और सब से अधिक बुराई यह होती है कि व्यक्तियों की स्वतन्त्रता छीन ली जाती है। उन्हें बोलने की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। वे अपने को स्वतन्त्र अनुभव कर कोई काम नहीं कर सकते। उनका स्वतन्त्र विकास नहीं होने दिया जाता। उनके आत्मा को मार दिया जाता है। वहाँ के मनुष्य, मनुष्य नहीं रह पाते, भेड़-बकरियों की भाँति दब्बू और भीरु हो जाते हैं। और उन्हें भेड-बकरियों की तरह ही डण्डे से हांका जाता है। साम्यवादी देशों में लोगों की भूख-प्यास की समस्या तो हल की जाती है, परन्तु उनकी बौद्धिक स्वतंत्रता छीन ली जाती है। पूंजीवादी पद्धति में लोगों को पूंजीपतियों का गुलाम रहना पड़ता है तो साम्यवादी पद्धति में दल के द्वारा नियुक्त प्रबन्धकों की अधीनता में रहना पड़ता है। पूंजीवादी पद्धति में कुछ तो स्वतन्त्रता की सांस ली भी जा सकती है, साम्यवादी पद्धति में तो उसका नाम शेष भी नहीं रहता। यह है साम्यवाद के भौतिकवादी दृष्टिकोण का घोर दुष्परिणाम।

साम्यवाद और नैतिकता—

साम्यवाद के भौतिकवादी मन्तव्यों का सीधा परिणाम यह होगा कि मनुष्य में सत्य, न्याय, दया, उदारता और आत्म-त्याग आदि ऊँचे चारित्रिक गुणों के प्रति आस्था नहीं रहेगी ; धीरे-धीरे मनुष्य का नैतिक पतन हो जाएगा। आज भी साम्य-वादी लोग अपनी नीति चलाने और अपना काम निकालने के लिए सभी तरह के अच्छे-बुरे साधनों को काम में ले आते हैं। आज भी साम्यवादी लोगों में जो सत्य,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय, दया, उदारता और आत्म-त्याग आदि गुण दृष्टिगोचर होते हैं, उसका कारण भी साम्यवाद के आगमन से पहले धार्मिक सम्प्रदाय और आस्तिक दर्शनों द्वारा किया हुआ प्रचार है। जिससे वहाँ की जनता में इन गुणों के प्रति आस्था विद्यमान है। समय पाकर नास्तिक और भौतिकवादी मन्तव्यों का पूर्ण प्रभाव हो जाने पर साम्यवादी लोगों में इन गुणों के प्रति कोई भी आस्था न रहेगी। यह तो धर्म की और आस्तिक दर्शनों की ही कृपा है कि जो साम्यवादी लोगों में भी ये चारित्रिक गुण यत्र तत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

वर्णाश्रम-व्यवस्था का आध्यात्मिक आधार—

साम्यवाद की तुलना में वर्णाश्रम-पद्धति आध्यात्मिकतावादी है। यह पद्धति प्रकृति के साथ-साथ जीवात्मा को भी स्वीकार करती है और परमात्मा को भी। यह पद्धति जीवात्मा और परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करने के परिणामस्वरूप लोक-परलोक, पुनर्जन्म और कर्मफल आदि के आस्तिक सिद्धान्तों को भी मानती है। जीवात्मा और परमात्मा की सत्ता को, पुनर्जन्म को, और कर्मफल की व्यवस्था को युक्तियों से सिद्ध किया जा सकता है और ऐसी प्रवल युक्तियों से सिद्ध किया जा सकता है जिनका ये भौतिक वादी नास्तिक लोग भी खण्डन नहीं कर सकते। वर्णाश्रम-व्यवस्था मनुष्य को केवल शरीर मात्र नहीं अपितु शरीर और आत्मा का मेल मानती है। वहां उसके आत्मा पर भी ध्यान रखती है। इसलिये वर्णाश्रम-व्यवस्था में जहाँ मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया जाता हैं, वहाँ आत्मोन्नति की ओर भी ध्यान दिया जाता है। मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति ऐसे उपायों का अवलम्बन करके नहीं करनी चाहिये कि जिनके अवलम्बन से मनुष्य का आत्मा पतित हो। कोई समाज-व्यवस्था वनाते हुए हमारी नीति ऐसी होनी चाहिये कि उसका प्रयोग करने वाले लोगों का आत्मा भी मनुष्यत्व से गिरकर पशुत्व की कोटि में न चला जाए और जिन लोगों पर उस नीति का प्रयोग किया जाये उन का आत्मा भी पतित न होने पाये। दोनों का आत्मा पवित्र और ऊँचा रहना चाहिये। हमें लोगों के आत्मा को जागृत करके, उनके उदात्त और ऊँचे आत्मिक गुणों को उद्बुद्ध करके, उनके सहयोग से समाज की समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करना चाहिये। भौतिक बल-प्रयोग का सहारा समाज की समस्याओं को सुलझाने में कम-से-कम लिया जाना चाहिये। वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का उपाय करने के लिए भी मनुष्य के आत्मिक गुणों का सहयोग लेती है। इस पद्धति में व्यक्ति को वर्णों और आश्रमों की मर्यादा में से ढालकर उनके कर्त्तव्यों और व्रतों का पालन कराके उनके आत्मा को जागृत किया जाता है। फिर इस जागृत आत्मा के सहयोग से समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था की जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में हठ-दुराग्रह का स्थान नहीं रहता, कलह और विद्वेष नहीं उभरता, ईर्ष्या नहीं भड़कती, खून की नदियाँ नहीं बहतीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हत्यायें नहीं करनी पड़तीं, अशान्ति नहीं रहती, राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्त्तव्य और धर्म समझकर राष्ट्र के लोगों को सुखी बनाने में प्रसन्नता पूर्वक सहयोग देता है। अपना सर्वस्व समाज को सुखी और समृद्ध बनाने में अर्पण करने में तत्पर रहता है। वर्णाश्रम व्यवस्था में किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता को छीनने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्णों और आश्रमों की मर्यादा में से ढालकर व्यक्ति के आत्मा को ऐसा ऊँचा बना दिया जाता है कि वह स्वेच्छा से अपना सब कुछ राष्ट्र के हित में अर्पण करने लगता है। वह यह अनुभव नहीं करता कि उसे दबाकर उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे कुछ लिया जा रहा है। वह यह अनुभव करता है कि मैं धर्म समझकर स्वेच्छा से अपना सर्वस्व राष्ट्र के हित में अर्पण कर रहा हूं। वर्णा-श्रम-व्यवस्था की इस पद्धति का अवलम्बन करने से राष्ट्र की सारी जनता के कष्टों का निवारण भी हो जाता है और घर-घर में शान्ति और सन्तोष की गंगा बहती रहती है। यह है वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति के आध्यात्मिक पद्धति होने का स्वर्गीय परिणाम।

जीवन का अन्तिम लक्ष्य : ब्रह्मानन्द की प्राप्ति—

जब तक हम इस संसार में रहते हैं तब तक शारीरिक कष्टों का निवारण चाहते हैं। वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति इन कष्टों के निवारण के उपाय बताती है। परन्तु यह संसार ही सब कुछ नहीं है। वर्णाश्रम-व्यवस्था के दर्शन-शास्त्रों में मनुष्य-जीवन का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति माना गया है—शरीर के प्राकृतिक बन्धन से छूटकर परमात्मा का सीधा साक्षात्कार कर सकना। परंद्रष्टा परमात्मा को सत्-चित् के साथ-साथ आनन्द गुणयुक्त भी माना जाता है। सच्चिदानन्द परमात्मा में आनन्द गुण विशिष्ट है। वहाँ दुःख का लेश भी नहीं है। दुःख और परमात्मा का वैसा ही विरोध है जैसे अन्धकार और प्रकाश का। दोनों एकसाथ रह ही नहीं सकते। परमात्मा के स्वरूप के विचार में दुःख का विचार सोचा ही नहीं जा सकता। परमात्मा में इतना अधिक, इतना असीम आनन्द है कि परमात्मा को आनन्दस्वरूप कहा जाता है। वेद में कहा है वह परमात्मा निष्काम, धीर, अमृतमय, स्वयम्भू, रससे परिपूर्ण आनन्द से तृप्त है। उसके आनन्द में कहीं भी किसी प्रकार की कमी नहीं है[1]। जब हमें परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है तो उस साक्षात्कार के परिणामस्वरूप परमात्मा का आनन्द हमारे आत्मा में भी संक्रान्त हो जाता है। परमात्मा के साक्षात्कार से हम आनन्दवान् बन जाते हैं। जैसे चुम्बक की समीपता में कच्चा लोहा भी चुम्बक बन जाता है वैसे ही परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर परमात्मा की उस अनुभूति से उनका आनन्द-गुण हमारे आत्मा में भी संक्रान्त हो जाता है। हमारा आत्मा उस आनन्द में मस्त

१. समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥
मैत्रायणी उपनिषद् ४.९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर झूमने लगता है। वह आनन्द इतना महान् और उत्कृष्ट होता है कि उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उपनिषद् के ऋषियों के शब्दों में इस प्रकार वर्णन करेंगे कि "परमात्मा के साक्षात् आनन्द का वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता वह तो स्वयं ही अन्तःकरण से अनुभव करने की वस्तु है।" ऋषि दयानन्द और रामकृष्ण परमहंस आदि जिन अनेक योगी, महात्माओं और सन्तों ने समाधि में परमात्मा के साक्षात्कार का आनन्द अनुभव किया है, सभी ने उस आनन्द की अनुपमता के विषय में इसी प्रकार के उद्‌गार प्रकट किये हैं।

जो व्यक्ति पीछे वर्णित शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान पाँच नियमों तथा अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपिग्रह पाँच यमों का व्यापक और पूर्ण रूप से पालन करने लगते हैं तो व्यक्ति का अन्तःकरण निष्पाप, निष्कलंक और निर्मल बन जाता है। उस निष्पापता और निर्मलता का फल यह होता है कि जब हम परमात्मा के चिन्तन में बैठते हैं तो हमारा मन पूर्ण रूप से परमात्मा में एक हो जाता है। हमारी समाधि लग जाती है। उस एकाग्रता समाधि की अवस्था में परमात्मा हमारे आत्मा में ज्ञानरूप से भासने लगता है। आत्मा में परमात्मा के उस भासने का फल यह होता है कि परमात्मा का आनन्द हमारे आत्मा में भी प्रविष्ट हो जाता है, हम संसार की चिन्ताओं और क्लेशों से मुक्त होकर एक अद्‌भुत और अवर्णनीय आनन्द की अवस्था में पहुंच जाते हैं।

यम-नियम आदि के व्यापक और पूर्णतया आचरण में लाने का दूसरा फल यह होता है कि जब मृत्यु के समय हमारा शरीर छूटता है तो हम सीधे परमात्मा की गोद में चले जाते हैं। हमारा मोक्ष हो जाता है और हम आनन्द के समुद्र में तैरने लग जाते हैं और एक बहुत अधिक लम्बे समय तक इसी मोक्ष[1] की—इसी परमात्मा के निरन्तर साक्षात्कार से प्राप्त होते रहने वाले आनन्द की अवस्था में बने रहते हैं।

हम सभी सुखी रहना चाहते हैं और पूर्ण रूप से सुखी रहना चाहते हैं। ऐसा पूर्ण सुखी बने रहना चाहते हैं कि हमारे सुख की अवस्था में स्वप्न में भी दुःख का कोई लेश न रहे। ऐसा पूर्ण सुख इस संसार में तो हो नहीं सकता। यहां तो कोई न कोई दुःख और क्लेश लगा ही रहेगा। पूर्ण सुख-प्राप्ति की हमारी स्वाभाविक इच्छा, मोक्ष-

---

१. ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के बन्ध और 'मोक्ष' प्रकरण (नवम समुल्लास) में प्राचीन शास्त्रों के आधार पर मोक्ष की अवधि सौ ब्राह्म वर्ष मानी है। सौ ब्राह्म वर्ष ३६ हजार सृष्टि और प्रलयों के काल के बराबर होते हैं। एक सृष्टि और प्रलय का काल ८ अरब ६४ करोड़ मानव वर्ष होता है। इस प्रकार मुक्ति का काल ३११०४०००००००००० (इकत्तीस नील, दस खर्ब, चालीस अर्ब) मानव वर्ष होता है। इतने लम्बे समय मोक्ष में ब्रह्मानन्द का उपभोग करने के पश्चात् मुक्तात्मा पुनः संसार में लौट आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल में पूरी हो सकती है। इसलिये वर्णाश्रम-पद्धति के दर्शन-शास्त्र में मोक्ष-प्राप्ति को मनुष्य-जीवन का परम लक्ष्य माना गया है।

वर्णाश्रम-पद्धति में यम-नियमों का पालन एवं योगानुष्ठान, शिक्षा का आवश्यक अङ्ग माना गया है। ब्रह्मचारी को अपने विद्यार्थी-काल में यह सब सीखना है फिर आगे भी सभी आश्रमों में इनका पालन करना होता है। वर्णाश्रम-पद्धति में यम, नियम सच्चरित्रता की कसौटी हैं। एक जन्म या अनेक जन्मों में इनका उग्र रूप से पालन करके जब जीव पूर्ण निष्पाप और निर्मल हो जाता है तो एक समय ऐसा आता है, कि जब मृत्यु-बन्धन से छूटकर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म की आध्यात्मिक पद्धति, जहाँ सामाजिक-व्यवस्था को ठीक बनाती है, वहां हमें ब्रह्म-साक्षात्कार और मोक्ष का आनन्द प्राप्त करने के योग्य भी बनाती है। साम्यवाद की अपेक्षा वर्णाश्रम-पद्धति में यह एक और बड़ी विशेषता है जो पूंजीवाद की पद्धति में भी अलभ्य है, क्योंकि पूंजीवाद भी व्यवहार में भौतिकवादी ही है, उसका ध्यान भी केवल शरीर के भौतिक सुखों की ओर ही रहता है।

समाज-व्यवस्था के तीन पहलू—

वर्णाश्रम-पद्धति पर आधारित वैदिक समाज-व्यवस्था का अवलम्बन करने से किसी भी राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं का समाधान किस प्रकार से हो सकती है यह हमने ऊपर के पृष्ठों में देखा। समाज-व्यवस्था के तीन प्रधान पहलू होते हैं। पहली—**आर्थिक-व्यवस्था,** दूसरी—**शिक्षा-व्यवस्था,** तीसरी—**राज्य-व्यवस्था।** शिक्षा-व्यवस्था का उद्देश्य ऐसे मनुष्य तैयार करना है कि जो समाज की आर्थिक-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था को भलीभाँति चला सकें। हमने वैदिक समाज-व्यवस्था पर विचार करते हुए उसकी आर्थिक-व्यवस्था पर विचार करके देखा और प्रसंगोपात्त बीच-बीच में शिक्षा-व्यवस्था पर भी हल्का सा दृष्टिपात करके देखा। समाज की आर्थिक-व्यवस्था और शिक्षा-व्यवस्था को भली-भांति चलाना राज्य-व्यवस्था पर निर्भर करता है। यदि राज्य-व्यवस्था दोषपूर्ण होगी तो आर्थिक और शिक्षा की व्यवस्थायें भी दोषपूर्ण रहेंगी। इसलिये प्रसङ्ग से दो शब्द वैदिक-राज्य के सम्बन्ध में कह देना भी उपयुक्त होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय [३]

वैदिक राज्य-व्यवस्था

वैदिक राज्य-व्यवस्था में वंशानुक्रमिक एकतन्त्र राजा की पद्धति स्वीकार नहीं की जाती। वैदिक राज्य-व्यवस्था प्रजातन्त्र-पद्धति को मानती है। उसमें राजा प्रजा द्वारा चुनाहुआ होना चाहिये। वेद में राजा का अर्थ प्रजाओं द्वारा चुना हुआ राष्ट्रपति होता है। वेद के राजनीति-सम्बन्धी स्थलों में स्थान-स्थान पर यह वर्णन आता है कि राजा प्रजाओं द्वारा चुना हुआ होना चाहिये। उदाहरण के लिए वेद में कहा है—"हे राजन् ! राष्ट्र की सभी दिशाओं में रहने वाली प्रजायें राज्य करने के लिए तुम्हारा आह्वान करें।" "हे राजन्। सब प्रजायें राज्य करने के लिए तुम्हारा चुनाव करें।" "सारी प्रजायें मिलकर हे राजन्; तुम्हारा चुनाव करें।" "हे अग्नि जैसे तेजस्वी राजन् ! राष्ट्र के ये सारे ब्राह्मण लोग तुम्हारा चुनाव कर रहे हैं।" "हे राजन्। राष्ट्र के जो धीवर लोग हैं, जो रथकार लोग हैं, जो लोहे का काम करने वाले कारीगर हैं, जो बुद्धिजीवी लोग हैं, जो रथ और गाड़ियाँ चलाने वाले लोग हैं, और जो गाँवों को चलाने वाले किसान और उनके मुखिया लोग हैं, सब तुम्हारे चुनाव के लिए अपना मत दे रहे हैं।" वेद में इस प्रकार के और भी अनेक स्थल हैं जहां राजा के चुनाव का स्पष्ट उल्लेख आता है।

राजा को राज्य-कार्य में सहायता देने के लिए दो राज-सभायें होंगी। एक का नाम '**सभा**' होगा और दूसरी का नाम '**समिति**'। ये दोनों सभायें राज्य के लिए सब प्रकार के कानून और व्यवस्थायें बनाया करेंगी। इन राज-सभाओं द्वारा बनाये गये नियमों और व्यवस्थाओं के अनुसार ही राजा ही राज्य का शासन करेगा। राजा शासन में मनमानी नहीं कर सकेगा। उसे राज-सभाओं को साथ लेकर चलना होगा, और उनकी सम्मति से काम करना होगा। पथ-भ्रष्ट होने पर राजा को राज्य से च्युत भी किया जा सकता है। प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि लोग दोनों राज-सभाओं के सदस्य होंगे। 'सभा' नामक राज-सभा में राष्ट्र के चारों वर्णों के लोग राष्ट्र में अपनी संख्या के अनुपात में सदस्यों को चुनकर भेजेंगे। परन्तु 'समिति' नामक राज-सभा में ब्राह्मणों की संख्या अन्य तीनों वर्णों के लोगों से अधिक रहेगी। "सभा" की अपेक्षा "समिति" का अधिकार बड़ा होगा। "सभा" में स्वीकृत व्यवस्थायें और कानून

---

१. सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तु ॥ अ० ३.४.११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम रूप से स्वीकृत होने के लिए "समिति" में आया करेंगे। "समिति" में स्वीकृत होने पर ही कोई कानून राष्ट्र में लागू हो सकेगा। राजा के चुनाव में भी यह व्यवस्था रहेगी कि प्रजा के ब्राह्मण लोग पहले चुनाव के लिए खड़े हुए प्रार्थियों में से दो या अधिक सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों को छांट लिया करेंगे। फिर उनमें से राष्ट्र के सर्वसाधारण लोग किसी एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को चुनेंगे और वह व्यक्ति राष्ट्र का राजा या राष्ट्रपति बन सकेगा। राजा के मन्त्री भी ब्राह्मण लोग ही होंगे और न्यायालयों के न्यायाधीश भी ब्राह्मण लोग ही बनेंगे। राजा के चुनाव में "समिति" की सदस्यता में ब्राह्मणों को यह जो विशेषता दी गई है, तथा न्यायाधीशों और मन्त्रियों के पद जो ब्राह्मणों को दिये गये हैं उसका कारण यह है कि ब्राह्मणों की अपनी निजी धन-सम्पत्ति तो कोई होती नहीं है, सो उन में लोभ और स्वार्थ की भावना भी नहीं रहेगी। वे राजा के चुनाव में और राज्य के कानून बनाने में किसी प्रकार के निजी लोभ और स्वार्थ से प्रवृत्त नहीं होंगे। निःस्वार्थ होकर ही सब दृष्टियों से सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को ही राजा चुनेंगे, और निःस्वार्थ भावना से ही केवल प्रजा के हित को ध्यान में रखकर राज्य के कानून बनायेंगे। और फिर निःस्वार्थ भावना से ही प्रजा के हित में प्रेरित होकर मन्त्री के रूप में अपने अधीनस्थ राजकर्मचारियों से उन कानूनों के अनुसार राष्ट्र की शासन-व्यवस्था चलवायेंगे। न्यायाधीश बनकर वे किसी निजी स्वार्थ में न पड़ने के कारण सही सही न्याय किया करेंगे। राज्य की शासन-व्यवस्था में उपर्युक्त गुणों वाले ब्राह्मण लोगों को विशेषता देने से यह वैदिक राज्य-व्यवस्था आदर्श रूप में चलेगी। उस अवस्था में अधर्म नहीं होगा। वह पूर्ण रूप से धर्म पर—सत्य और न्याय पर—आधारित रहेगी। इसमें कोई किसी के अधिकारों को नहीं हड़प सकेगा, कोई किसी को सता नहीं सकेगा, कोई किसी पर अत्याचार नहीं कर सकेगा। उस राष्ट्र का राज्य **"राम-राज्य"** होगा।

राज्य वर्णाश्रम-धर्मों का व्यवस्थापक —

यह वैदिक राज्य-व्यवस्था राष्ट्र के सब लोगों से उनके वर्णों और आश्रमों के धर्मों और कर्त्तव्यों का पालन करायेगी। आर्य-साहित्य में राजा को वर्णाश्रम-"धर्म-गोप्ता" कहा जाता है। लोगों से उनके वर्णों और आश्रमों के कर्त्तव्यों का पालन कराना राजा का धर्म है। राज-सभा सब वर्णों की योग्यता का एक न्यूनतम माप-दण्ड निश्चित करेगी। ब्रह्मचर्याश्रम में प्रत्येक विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार किसी न किसी वर्ण की योग्यता प्राप्त करने का और फिर आगे गृहस्थ जीवन में उस वर्ण के कर्त्तव्यों का पालन करने का "व्रत" लेगा। १६ वर्ष की आयु में कन्याओं का और २५ वर्ष की आयु में लड़कों का राजसभा और विद्या-सभा के नियमों के अनुसार परीक्षा लेकर, निश्चय होगा कि कौन किस वर्ण के योग्य है और कौन किस के? फिर गृहस्थ-आश्रम में उन्हें अपने-अपने वर्ण के अनुसार कार्य करने होंगे। कर्त्तव्य-च्युत होने पर राजा उन्हें दण्डित करेगा। वर्णों की भाँति, आश्रमों के कर्त्तव्यों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमों का भी एक न्यूनतम मान निश्चित होगा। उनमें त्रुटि होने पर दण्डित होना पड़ेगा। इस प्रकार वर्णों और आश्रमों पर राज्य का अंकुश रहने से वर्णाश्रम-व्यवस्था भली भाँति काम करेगी। और समाज की आर्थिक व्यवस्था और शिक्षा-व्यवस्था दोनों ही ठीक चलेंगी और इन दोनों के ठीक चलने का प्रभाव पुनः राज्य-व्यवस्था पर पड़ेगा। वह भी ठीक चलेगी।

वर्णाश्रम-व्यवस्था की प्रजातन्त्रीय शासन-पद्धति—

वर्णाश्रम-व्यवस्था की शासन-पद्धति, जैसा ऊपर स्पष्ट किया गया है, आध्यात्मिक पद्धति है। उसके दर्शन में व्यक्ति में स्वतन्त्र आत्मा की सत्ता स्वीकार की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना पूरा विकास करने की स्वतन्त्रता है। वह प्रत्येक विषय में अपने विचार रख सकता है और उन्हें स्वतन्त्रता से प्रकट भी कर सकता है। इसी आध्यात्मिक विचारधारा के परिणाम-स्वरूप वर्णाश्रम-व्यवस्था में प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली को स्वीकार किया जाता है। किसी एक व्यक्ति को, अपने वंश या शक्ति के आधार पर राष्ट्र की जनता पर शासन करने का अधिकार नहीं है। राष्ट्र की जनता का बहुमत, अपनी स्वतन्त्र सम्मति से जिसे अपना राष्ट्रपति चुने और जिन्हें उसके सहायक चुनकर राजसभा में भेजें, उन्हीं को राष्ट्र का शासन करने का अधिकार होना चाहिए। राज्य-शासन प्रजातन्त्रीय पद्धति से किया जाना चाहिए।

साम्यवाद प्रजातन्त्र का विरोधी है—

इसके विपरीत साम्यवादी विचार-धारा भौतिकवादी है। वह व्यक्तियों में स्वतन्त्र आत्माओं की सत्ता स्वीकार नहीं करती। उसके इस दर्शन के परिणामस्वरूप साम्यवाद में राष्ट्र की शासन-व्यवस्था में प्रजाओं की स्वतन्त्र समिति का कोई मूल्य नहीं है। साम्यवाद में इसीलिए तानाशाही चलती है। वह तानाशाही चाहे एक व्यक्ति की हो चाहे कुछ व्यक्तियों के समुदाय की, है वह तानाशाही ही। उसमें सर्व-साधारण प्रजा द्वारा अपनी स्वतन्त्र सम्मति से अपने शासकों के चुनाव का कोई स्थान नहीं। साम्यवाद और वर्णाश्रम-व्यवस्था में यही एक और बड़ा भारी भेद है। पूँजीवादी पद्धति का प्रजातन्त्र और एकतन्त्र किसी के साथ भी आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। उस पद्धति में राज्य-व्यवस्था प्रजातन्त्रात्मक भी हो सकती है और एकात्मक भी। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था वाले देशों में दोनों ही प्रकार की राज्य-पद्धतियें पाई जाती हैं। परन्तु जहाँ प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था होती है वहाँ भी आर्थिक-व्यवस्था पूँजीवादी ढंग की रहने के कारण सर्वसाधारण प्रजा पूर्ण रूप से सुखी नहीं रह पाती।

वर्णाश्रम-व्यवस्था की श्रेष्ठता—

इस प्रकार वर्णाश्रम-व्यवस्था की वैदिक समाज-व्यवस्था साम्यवादी और पूँजीवादी दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं से श्रेष्ठ है।

जिस दिन वैदिक धर्म के विचारों का प्रचार होकर संसार के राष्ट्रों में समाज की व्यवस्था वर्णाश्रम-धर्म के आधार पर हो सकेगी, उसी दिन संसार के लोगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्ची शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त हो सकेगा। हम आर्य लोगों को अपनी इन प्राचीन समाज-व्यवस्था की पद्धति के गुणों पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए और उसके सुन्दर तत्त्वों का जनता में प्रचार कर राष्ट्रों की समाज-व्यवस्था उन तत्त्वों के अनुसार ढालने का प्रयत्न करना चाहिए। राष्ट्रों की प्रचलित समाज-व्यवस्थाओं में वर्णाश्रम-व्यवस्था के तत्त्वों का जितना-जितना समावेश होता जायेगा वे राष्ट्रों की जनता का उतना ही अधिक सुख-कल्याण बढ़ाने वाली बनती जाएँगी।

वर्णाश्रम-व्यवस्था का वैज्ञानिक ग्राधार—

हमें आज के संसार के सम्मुख वर्णाश्रमपद्धति को उपस्थित करने में संकोच अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है। वर्णों की व्यवस्था मनुष्यों के स्वाभाविक रुचि-भेद, योग्यता-भेद पर आधारित है। जब आत्मा का प्रकृति से बने शरीर के साथ संयोग होता है, तभी हम मनुष्य कहलाते हैं। प्रकृति सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुणों वाली है। शरीर और मस्तिष्क भी प्रकृति निर्मित हैं, अत: उनमें भी ये तीनों गुण विद्यमान रहते हैं। प्राकृतिक शरीर और मस्तिष्क का व्यक्ति की आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। उस प्रभाव के फलस्वरूप व्यक्ति की प्रवृत्तियें और व्यवहार भी सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार के हो जाते हैं। किन्हीं के शरीर और मस्तिष्क में सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है, किन्ही में रजोगुण तो किन्हीं में तमोगुण प्रधान और किन्हीं में तीनों की समता रहती है। सत्त्वगुण प्रधानता वाले व्यक्ति को "ब्राह्मण" रजो गुण वाले "क्षत्रिय" और तीनों गुण की समता वाले व्यक्ति "वैश्य" और तमोगुण की प्रधानता वाले व्यक्ति "शूद्र" कहलाते हैं। इन तीनों गुणों की और उनके आधार पर बनने वाली प्रवृत्तियों और व्यवहारों की गीता आदि शास्त्रों में बड़े विस्तार से विवेचना की गई है। उस विवेचना के विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। सभी वर्णों के लोगों में ये तीनों गुण न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं। यह तो आवश्यक ही है, क्योंकि हमारे शरीर और मस्तिष्क त्रिगुणात्मिका प्रकृति से बने हैं। केवल किसी एक गुण की प्रधानता के कारण किसी व्यक्ति को उस गुण वाला, और उस गुण की प्रधानतापर आश्रित वर्ण वाला कहा जाता है। जब किन्हीं लोगों में रजोगुण और तमोगुण की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है तो वे लोग चोर, लुटेरे, डाकू, हत्यारे दस्यु आदि बन जाते हैं। ये दस्यु लोग वर्ण-मर्यादा में शामिल नहीं किये जाते। ये वर्ण-मर्यादा से बाहर रहते हैं और दण्ड के पात्र होते हैं। आत्मा की प्रबल इच्छा-शक्ति, तज्जन्य तीव्र प्रयत्न, तथा भोजन और रहन-सहन को नियमित करके, शरीर और मस्तिष्क में, तथा उसके द्वारा आत्मा में इन सत्त्व आदि गुणों की मात्रा को घटाया-बढ़ाया भी जा सकता है। दूसरे शब्दों में, अपने विशेष प्रयत्न से कोई व्यक्ति अपनी प्रवृत्तियों को बदल भी सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस प्रकार व्यक्तियों के प्रवृत्ति-भेद और रुचि-भेद पर आश्रित वर्ण-व्यवस्था सर्वथा वैज्ञानिक है। संसार के हर मनुष्य ब्राह्मणादि प्रवृत्तियों में से किसी न किसी एक प्रवृत्ति वाले अवश्य होंगे।

वर्ण-व्यवस्था और विदेशी विद्वान्—

भारत से बाहर के भी कितने ही विचारक, समाज-व्यवस्था पर अपने ढंग से विचार करते हुए वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त पर पहुंचे हैं। ग्रीक देश का प्रसिद्ध दार्शनिक प्लैटो पाश्चात्य जगत् का एक बहुत महान् विचारक माना जाता है। वह योरोप के दर्शन-शास्त्र का गुरु समझा जाता है। दर्शन-शास्त्र के किसी भी विद्यार्थी के लिए प्लैटो के ग्रन्थों का अध्ययन करना आवश्यक समझा जाता है। प्लैटो का एक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ रिपब्लिक है। इसमें प्लैटो ने आज से २३५० वर्ष पहले इसी बात पर विचार किया है कि एक आदर्श राष्ट्र की समाज-व्यवस्था किस प्रकार की होनी चाहिए। 'समाज-व्यवस्था' का विस्तार से वर्णन करते हुए प्लैटो ने लिखा है कि मनुष्य-समाज को, उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार, तीन विभागों में बाँट दिया जाना चाहिए। प्लैटो ने मनुष्य-समाज के इन तीनों विभागों को क्रमशः "गार्जियन", "सोल्जर" "कामन मैन" (रक्षक—सैनिक—सर्व साधारण) कहा है। प्लैटो ने इन तीनों को राष्ट्र की सेवा के वही काम दिये हैं जो वर्ण-व्यवस्था में क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को दिये जाते हैं। प्लैटो का गार्जियन वर्ण-व्यवस्था का ब्राह्मण है, सोल्जर क्षत्रिय है और कामन मैन वैश्य है। प्लैटो ने इन तीनों की शिक्षा की भी लगभग वैसी ही व्यवस्था बताई है।

प्लैटो तो योरोप का बहुत पुराना विचारक है। आधुनिक समय में इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध विचारक एच. डी. वेल्स भी समाज के नव-संगठन के सम्बन्ध में विचार करते हुए मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के आधार पर मनुष्य-समाज को तीन विभागों में बाँटने के परिणाम पर पहुंचे हैं? उन्होंने "वर्क, वैल्थ एण्ड हैप्पिनैस आफ मैनकाइण्ड" (काम धन्धे, धन और मनुष्यों का सुख-कल्याण) नाम का एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थ में उन्होंने समाज की आर्थिक व्यवस्था, शिक्षा-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था आदि विषयों पर विचार किया है। उस ग्रन्थ में आजकल की प्रचलित समाज-व्यवस्थाओं के दोष दिखाते हुए नई समाज-व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये हैं। "जिन के आधार पर समाज-व्यवस्था होने पर धरती स्वर्ग में बदली जा सकेगी।" अपने इस विचार में वेल्स ने मनुष्यों की प्रवृत्तियों के तीन विभाग किये हैं। एक प्रवृत्ति का नाम वेल्स ने "पैजेण्ट परसोना" कृषक लोगों की प्रवृत्ति रखा है। दूसरी का नाम "नौमैड परसोना" बलशाली साहसी लोगों की प्रवृत्ति रखा है और तीसरी का नाम "प्रीस्ट परसोना" अथवा "एजुकेटेड परसोना" पुरोहितों अथवा शिक्षिति लोगों की प्रवृत्ति रखा है। इन तीनों नामों के नीचे वेल्स ने क्रम से उन सब प्रवृत्तियों को रख दिया है जिन प्रवृत्तियों वाले लोगों को आर्य-शास्त्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में क्रमशः वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण कहा जाता है। वेल्स का पैंजेंट परसोना वर्णाश्रम व्यवस्था का वैश्य है, नौमैड परसोना क्षत्रिय है और प्रीस्ट परसोना या ऐजुकेटेड --परसोना ब्राह्मण है। वेल्स लिखता है कि मनुष्यों की इन तीनों प्रकार की प्रवृत्तियों के आधार पर बालकों को परखकर तदनुसार ही उन्हें शिक्षित करना चाहिये, एवं समाज-सेवा के योग्य बनाना चाहिए। प्रीस्ट परसोना की प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुए वेल्स ने एक स्थान पर लिखा है कि "पुराहितों और ज्ञानियों की श्रेणी के लोगों में जो निःस्वार्थ ईमानदारी और सत्यपरायणता का कभी न मिटने वाला भाव पाया जाता है, जिस की केवल इन्हीं लोगों ने सदा रक्षा की है, उसी पर मनुष्य-जाति का भविष्य निर्भर करता है[1]।" वेल्स ने जो कुछ कहा है उसका आशय यही है कि ईमानदारी और सत्यनिष्ठता का निःस्वार्थ और अटल भाव से पालन करने वाले ब्राह्मण वृत्ति के लोग ही मनुष्य-समाज को सुखी और समृद्ध बना सकते हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक योरोप के कई सत्यान्वेषी विचारक ऐसे भी हैं, जिन्होंने वर्णाश्रम-व्यवस्था का सीधा नाम लेकर लिखा है कि समाज की सर्वोत्तम व्यवस्था वर्णाश्रम-व्यवस्था ही है। जिसके अनुसार समाज का पुनः निर्माण होना चाहिए। रूस में एक विचारक हुए हैं जिसका नाम औसपैंस्की है। उन्होंने "संसार का एक नया संगठन" 'एन्यू माडल आफ युनिवर्स' नाम का एक वड़ा विचारपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। एक अध्याय में समाज के संगठन पर भी विचार किया है। इस ग्रन्थ में उन्होंने अनेक वैज्ञानिक और दार्शनिक विषयों पर विचार किया है। इस अध्याय में औसपैंस्की ने मनुस्मृति के वर्णव्यवस्या विषयक श्लोकों को उद्धृत करके उन पर विचार करते हुए लिखा है कि वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति समाज-व्यवस्था की सर्वश्रेष्ठ पद्धति है और उसी के अनुसार मनुष्य-समाज की पुनः रचना होनी चाहिए। किन्तु स्टैलिन के साम्यवादी रूस में औसपैंस्की के विचार नहीं सहे गये और और पैंस्की को रूस छोड़कर भाग जाना पड़ा।

हालैण्ड के एक प्रसिद्ध विचारक डाक्टर जी. एच. मीज ने "धर्म और समाज" (धर्म एण्ड सोसाइटी) नान की एक सुन्दर पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय ही वर्णाश्रम-व्यवस्था है। डाक्टर मीज ने भी वर्णाश्रम-व्यवस्था को समाज-व्यवस्था की सर्वोत्तम पद्धति माना है। और नया समाज इस पद्धति के आधार पर निर्मित होना चाहिये ऐसा लिखा है। अपनी "मानव-कुटुम्ब और भारत" (ह्यू मन् फैमिली एण्ड इण्डिया) नामक पुस्तक में भी डाक्टर मीज ने इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं।

---

1. ! th cradicable idea of disinterested integrity which this pri. ylearned class alone has Postered that the future of huminity resides H.G wels work wealth and Happiness of manhind page 313 ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का अनूठा उपहार—

इस प्रकार वर्णाश्रम व्यवस्था कोई पुरानी अथवा दकियानूसी विचारों की नहीं है जिसे संसार के विचारशील लोगों के आगे रखने में हमें संकोच हो। यह व्यवस्था मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर आधारित है, पूर्ण वैज्ञानिक है। इसके सिद्धान्त व्यक्ति और समाज को बहुत ऊँचा उठाने की शक्ति रखते हैं। वर्णाश्रम-व्यवस्था के रूप में भारत वर्ष के आर्य लोगों के पास एक ऐसी वस्तु है जिसे वे संसार को एक अनूठे उपहार के रूप में दे सकते हैं। जिसके तत्त्वों को हृदयङ्गम करके तथा तदनुसार नये समाज की रचना करके मनुष्य इस धरती को स्वर्ग बना सकते हैं और "स्वयं" उस स्वर्ग में रहने वाले देवता बन सकते हैं।

वर्णाश्रम-व्यवस्था के लिये हिन्दु होना आवश्यक नहीं है—

इस निबन्ध को समाप्त करते हुए एक शंका को दूर कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। यदि मनुष्य-समाज की रचना वर्णाश्रम-पद्धति के आधार पर हो जाय तो मनुष्य समाज की आदर्श उन्नति हो सकती है और उसे अभ्युदय और निःश्रेयस का महान् सुख-मंगल प्राप्त हो सकता है, ऐसा हम इस निबन्ध में प्रतिपादन करते आ रहे हैं। वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति वैदिक-पद्धति है। वेदों और उन पर आश्रित आर्य-शास्त्रों में इस पद्धति का प्रतिपादन किया गया है। किसी के मन में यह शंका हो सकती है कि वर्णाश्रम-व्यवस्था तो वैदिक पद्धति है। जो लोग वेदों और उन पर आश्रित आर्य शास्त्रों को मानते हैं, जिन लोगों का वेद-शास्त्रों में प्रतिपादित धर्म पर विश्वास है, जो लोग अपने को आर्य या हिन्दू कहते हैं उन्हीं लोगों में वर्णाश्रम-व्यवस्था चल सकती है, उसे दूसरे लोगों में कैसे चलाया जा सकता है? जो लोग ईसाइयत और इस्लाम आदि धर्मों को मानते हैं उनमें वर्ण-व्यवस्था कैसे चल सकती है? जो लोग ईश्वर में विश्वास नहीं रखते और इसीलिए नास्तिक हैं उनमें भी वर्णाश्रम-व्यवस्था कैसे चलती है?

ऐसा सन्देह करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि वर्णाश्रम-व्यवस्था के लिए किसी राष्ट्र का आर्य या हिन्दू होना आवश्यक है। वर्णाश्रम-व्यवस्था ईसाइयत, इस्लाम आदि धर्मों को मानने वाले तथा अपने को नास्तिक कहने वाले सभी लोगों और राष्ट्रों के लिए समान उपयोगी है। वर्णाश्रम-व्यवस्था मतवाद अथवा सम्प्रदायवाद के आग्रह से सर्वथा अछूती सार्वभौम व्यवस्था है। वर्णाश्रम-व्यवस्था तो एक व्यक्ति में वर्णों के चुनाव और उनके कर्त्तव्य-कर्मों के पालन के लिए "व्रत" लेने पर बल देती है और आश्रमों की मर्यादा में चलते हुए अपने-अपने वर्ण की तैयारी और अपने-अपने वर्ण के कर्त्तव्य-कर्मों को पूरा करने पर बल देती है। जो लोग "अज्ञान" से उत्पन्न होने वाले सामाजिक कष्टों को दूर करने में अपनी शक्ति लगाने का "व्रत" लेंगे वे ब्राह्मण होंगे। जो लोग "अन्याय" के कारण उत्पन्न होने वाले सामाजिक कष्टों को दूर करने में अपनी शक्ति लगाने का व्रत लेंगे वे क्षत्रिय। जो लोग अभाव के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न होने वाले सामाजिक कष्टों को दूर करने का व्रत लेंगे वे वैश्य होंगे और जो लोग इन तीनों में से किसी भी वर्ण की योग्यता सम्पादित न कर सकेंगे सर्वथा असमर्थ रहेंगे वे इन तीनों वर्णों की सेवा करने का व्रत लेंगे और वे शूद्र होंगे। एक ईसाई भी ऐसा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो सकता है और एक मुसलमान भी अथवा किसी अन्य धर्म को मानने वाला भी। यही नहीं ईश्वर को न मानने वाला एक नास्तिक भी इस प्रकार का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो सकता है।

ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी रहकर भाँति-भाँति की विद्याएं पढ़कर अपने चुने हुए ब्राह्मणादि वर्ण के कर्त्तव्य-कर्मों को पूरा करने की योग्यता पैदा करनी होती है। गृहस्थाश्रम में विवाहित जीवन बिताते हुए अपने-अपने चुने हुए वर्ण के कर्त्तव्यों को पूरा करना होता है। वानप्रस्थाश्रम में गृहस्थ जीवन की जिम्मेवारियों से मुक्त होकर अपने जीवन को तप, स्वाध्याय, चिन्तन और साधना द्वारा पवित्र बनाना होता है और जाति के बालकों को निःशुल्क शिक्षा देनी होती है। संन्यासाश्रम में पूर्ण वैराग्य-वान् होकर प्राणिमात्र के लिए दया की वृत्ति धारण करके मनुष्यों को सत्य, न्याय, परोपकार और अहिंसा आदि के तत्त्वों का उपदेश करते हुए विचरना होता है। सारी धरती को अपना घर और मनुष्य मात्र को अपना कुटुम्बी समझना होता है। एक ईसाई भी ऐसा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी हो सकता है और एक मुसल-मान भी अथवा अन्य किसी धर्म को मानने वाला व्यक्ति भी। इतना ही नहीं ईश्वर को न मानने वाला एक नास्तिक भी ऐसा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी हो सकता है। इस प्रकार वर्णाश्रम-व्यवस्था के लिए किसी राष्ट्र का वैदिक धर्मी या हिन्दू होना आवश्यक नहीं है। अहिन्दू राष्ट्रों में भी वर्णाश्रम-व्यवस्था चल सकती है और जिस दिन धरती के सब राष्ट्रों में वर्णाश्रम-व्यवस्था चलने लग पड़ेगी, उसी दिन मनुष्य के दुःख-द्वन्द्व कट सकेंगे और धरती स्वर्ग बन जायगी।

ऊपर के पृष्ठों में जिस वर्णाश्रम-मर्यादा का विवेचन किया गया और उसे विशद किया गया है—यदि उसके अनुसार राष्ट्रों के समाज की संरचना और अर्थ-व्यवस्था की जाने लगे तो समाज का काया-कल्प हो सकता है।

□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय [४]

वर्णाश्रम धर्म की विशेषताएँ

वेद के पुरुषसूक्त में, जहां मानव और अन्य सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है, मनुष्य-समाज को चार भागों में विभक्त किया गया है। इन चारों के बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये नाम हैं। ये चारों विभाग मनुष्यों की चार स्वाभाविक मुख्य प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर किये गये हैं। इसी भांति मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन को भी वेद में चार भागों में विभक्त किया गया है। इन चारों विभागों के नाम हैं ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम। वेद और वैदिक साहित्य के मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में ब्राह्मणादि चारों को वर्ण नाम दिया गया है और उनके गुण-धर्मों और कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया है। व्यक्तिगत जीवन के चार विभागों, ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमों के धर्मों और कर्तव्यों का भी इन ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस युग के महान् वैदिक विद्वान् और विचारक, आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने भी अपने वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में चारों वर्णों और चारों आश्रमों के गुण-धर्मों और कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया है। इन सब ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत करने और उनके अर्थ तथा व्याख्या के विस्तार में जाने की इस लेख में आवश्यकता नहीं है। इस विषय में विस्तार से जानने के इच्छुक पाठक उन-उन ग्रन्थों का स्वयं स्वाध्याय कर सकते हैं। हम तो उन ग्रन्थों के आशय को ध्यान में रखकर ही यहाँ कुछ थोड़ा सा विचार करेंगे। वेद ने मनुष्य-समाज का ब्राह्मणादि चार वर्णों और व्यक्ति के जीवन का ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों में विभाग इस दृष्टि से किया है कि यदि लोग ब्राह्मणादि वर्णों और ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के धर्मों और कर्तव्यों का पालन करते हुए अपना जीवन बितायेंगे तो उनका समाज रूप में सामूहिक जीवन तथा उनका व्यक्तिगत जीवन पूर्ण रूप से सुखी रहेगा। समाज रूप में व्यक्तियों के ब्राह्मणादि वर्णों में विभक्त होकर उनके कर्तव्यों का पालन करते हुए तथा व्यक्तिगत रूप में ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के कर्तव्यों का पालन करते हुए जीवन बिताने की पद्धति को वर्णाश्रम धर्म अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था कहा जाता है। यहाँ हम वर्णाश्रम धर्म की कुछ मुख्य-मुख्य विशेषताओं पर विचार करेंगे।

चार वर्ण—

ब्राह्मण वे लोग होंगे जो ज्ञान के उपार्जन और उसके प्रचार में अपना जीवन लगायेंगे और ऐसा करके समाज की सेवा करेंगे। ये लोग भाँति-भाँति के विद्या-विज्ञानों का आविष्कार करेंगे और उन विद्या-विज्ञानों का जनता में प्रचार करेंगे। इन विद्या-विज्ञानों की सहायता से मनुष्यों के जीवन को सुखी और आनन्दमय बनाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए क्या-क्या भौतिक उपकरण बनाये जा सकते हैं ? इसका भी पता वे लगायेंगे तथा उन उपकरणों के बनाने की विधि भी जनता को वे बतायेंगे। किसी भी क्षेत्र में सत्य का पता लगाना और उस सत्य का प्रचार करना ब्राह्मणों का ही काम होगा। ये लोग पूर्ण रूप से ज्ञान और सत्य के उपासक होंगे। तप, संयम, अहिंसा, दया, परोपकार, लोभ-लालच से परे रहना, ईश्वर-परायणता आदि उदात्त गुणों को जीवन में ढालकर उनके अनुसार अपना जीवन बिताना इन लोगों का आदर्श होगा। ये लोग शिक्षणालयों में अध्यापकों के रूप में, वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं और अनुसंधानशालाओं में अनुसंधानकर्ताओं के रूप में, धर्मोपदेशकों और प्रचारकों के रूप में, विचारकों और लेखकों आदि के रूप में अपने राष्ट्र और समाज की सेवा करेंगे। राष्ट्र की न्याय-व्यवस्था का संचालन भी ब्राह्मणवृत्ति के लोग ही करेंगे। राज्य के मंत्री भी ब्राह्मण वृत्ति के लोगों को ही बनाया जायेगा। एक शब्द में जो लोग सादगी और तपस्विता का जीवन बिताते हुए ज्ञान और सत्य के उपासक होकर इनके द्वारा ही समाज की सेवा करेंगे, वे लोग ब्राह्मण कहलायेंगे।

क्षत्रिय वे लोग होंगे जो बल और शक्ति के कार्यों द्वारा राष्ट्र की सेवा करेंगे, राष्ट्र के पुलिस और सेना आदि में काम करने वाले लोग तथा राज्य के विभिन्न विभागों के ऐसे प्रबन्ध-सम्बन्धी कामों को, जिनमें दौड़-धूप, बल और निडरता की विशेष आवश्यकता होती है, करने वाले लोग क्षत्रिय होंगे। शारीरिक बल और निर्भयता क्षत्रियों के विशेष गुण हैं। अपने क्षेत्र के कार्यों को भली-भांति करने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल तो उनमें होना ही चाहिए। राष्ट्र की रक्षा का कार्य क्षत्रियों का कार्य है।

वैश्य वे लोग होंगे जो राष्ट्र के लोगों की भिन्न-भिन्न प्रकार की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भाँति-भाँति की सामग्री को उत्पन्न करने और उसके वितरण करने का कार्य करेंगे और इसके द्वारा राष्ट्र की सेवा करेंगे। खेती करने वाले लोग, पशुपालन करने वाले लोग, विभिन्न प्रकार के व्यवसाय करने वाले लोग भांति-भांति के कारखाने खोलकर विविध प्रकार का सामान बनाने वाले लोग, खानों में काम करने वाले लोग, और इसी प्रकार के अन्य विविध काम जिनके द्वारा भौतिक चीजें उत्पन्न की जाती हैं, करने वाले लोग वैश्य कहे जायेंगे। इस प्रकार के कामों से जो चीजें उत्पन्न होती हैं उनका व्यापार करके उन्हें लोगों तक पहुंचाने का काम करने वाले लोग भी वैश्य कहे जायेंगे। राष्ट्र की भौतिक सम्पदा बढ़ाना और इस प्रकार राष्ट्र की सेवा करना वैश्यों का काम है।

शूद्र वे लोग होंगे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य में से कुछ भी नहीं बन सकेंगे। उन्हें अवसर दिया गया था, पर वे ब्राह्मणादि तीनों में से कुछ नहीं बन सके। ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की योग्यता प्राप्त करने के लिए विशेष प्रकार की बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता होती है। इनमें वैसी बुद्धि नहीं थी। इसलिए वे ब्राह्मणादि बनने से रह गये। वैसी योग्यता न होने के कारण वे ब्राह्मणादि के रूप में समाज की सेवा करने में असमर्थ रहेंगे। इसलिए इनका काम यह होगा कि वे ब्राह्मणादि की सेवा करके उनके कामों में सहायता करें। जो लोग बुद्धि और कौशल का कार्य नहीं कर सकेंगे, जो लोग भार उठाना, सड़कों पर रोड़ी कूटना, झाड़ देना और बरतन माँजना और इस प्रकार के अन्य साधरण और मोटे काम ही कर सकेंगे उन्हें शूद्र कहा जायेगा। बुद्धि की मन्दता और अभाव के कारण वे शूद्र कहे जाते हैं। शेष तीनों वर्णों के लोगों के कामों में शारीरिक सेवा द्वारा सहायता पहुंचाकर वे राष्ट्र की सेवा करते हैं। ऐसे अतिमन्द-बुद्धि या बुद्धि-हीन लोग राष्ट्र में सदा ही बहुत अल्पसंख्या में होंगे। उनसे भी शारीरिक सेवा लेकर राष्ट्र की सेवा का काम ले लिया जाता है।

वैदिक वर्ण व्यवस्था में वर्ण जन्म के आधार पर निर्धारित नहीं होता। वह योग्यता के आधार पर निर्धारित होता है। इसमें शास्त्रों के जितने चाहे प्रमाण दिये जा सकते हैं। इस लघु लेख में वैसा करने की आवश्यकता नहीं है। युक्तियाँ तो इस वैदिक मान्यता के पक्ष में हैं ही। शूद्र का वालक भी योग्यता होने पर ब्राह्मण आदि वन सकता है और योग्यता न होने हर ब्राह्मणादि का वालक भी शूद्र बन जायेगा। पिता किसी भी वर्ण का हो, पुत्र का वर्ण उसकी अपनी योग्यता और कामों के आधार पर निर्धारित होगा। वर्ण शब्द का अर्थ ही यह है कि जिसका चुनाव किया जाये व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार अपने लिये किसी वर्ण को चुनता है। किसी वर्ण की योग्यता प्राप्त करके उसके द्वारा समाज की सेवा करने का निर्णय करता है।

चार आश्रम—

ब्रह्मचर्य आश्रम में कम से कम २५ वर्ष तक बालकों को और १६ वर्ष तक वालिकाओं को अविवाहित रहकर संयम, तपस्या और सादगी का जीवन बिताते हुए विद्या-ग्रहण करनी होती है। एक निर्धारित सामान्य स्तर की शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वालकों को अपने-अपने वर्ण की विशेष शिक्षा ग्रहण करनी होगी। वैदिक परिभाषा में शिक्षणालय को गुरुकुल कहा जाता है—पढ़ने के समय निर्धारित स्तर की सामान्य शिक्षा ग्रहण कर लेने के पश्चात् छात्र को अपने वर्ण का चुनाव और निश्चय कर लेना होगा और उसी के अनुसार विशेष अध्ययन करना होगा। संस्कृत में ब्रह्मचारी या विद्यार्थी को "वर्णी" भी कहते हैं। इस वर्णी नाम से ही सूचित होता है कि विद्यार्थी को अपनी रुचि के अनुसार अपने वर्ण का चुनाव करके तदनुसार विशेष-विशेष शिक्षा ग्रहण करनी होगी। संस्कृत में ब्रह्मचारी को "व्रती" भी कहते हैं। विद्यार्थी के इस नाम का यह अभिप्राय है कि वह किस वर्ण की योग्यता प्राप्त करके उसके द्वारा समाज की सेवा करेगा, यह व्रत लेकर उसे विद्याध्ययन करना होता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम विद्याप्राप्ति का आश्रम है।

गृहस्थ-आश्रम में व्यक्ति को विवाहित होकर अपने चुने हुए वर्ण के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी योग्यता से विभिन्न प्रकार के कार्य करके समाज की सेवा करनी होती है और उसके द्वारा अपनी आजीविका भी कमानी होती है। और राष्ट्र को योग्य सन्तानें उत्पन्न करके देनी होती हैं। गृहस्थाश्रम में व्यक्ति को २५—३० साल तक ५०—५५ वर्ष की आयु होने तक रहना होता है। अधिक से अधिक बड़े पुत्र के काम पर लग जाने और उसके सन्तान उत्पन्न हो जाने तक गृहस्थ में रहना होता है।

गृहस्थ-आश्रम के उपरान्त व्यक्ति को वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करना होता है। वानप्रस्थ में व्यक्ति को धन-उपार्जन के काम-धन्धे छोड़ देने होते हैं। अब वह अपने और अपने परिवार के लिए कोई कमाई का काम नहीं करेगा। वह अपने परिवार में भी नहीं रहेगा। वह किसी गुरुकुल या आश्रम में चला जायेगा या किसी अन्य एकान्त स्थान में रहने लगेगा। अब उसका काम स्वाध्याय और आत्मचिन्तन रह जायेगा। गुरुकुल में रहेगा तो छात्रों को शिक्षा भी देता रहेगा। और संस्था की अन्य प्रकार से भी सेवा करता रहेगा। कहीं अन्यत्र रहेगा तो भी वह आस-पास के लोगों को पढ़ाने आदि के सेवा के काम करता रहेगा। वानप्रस्थ अत्यन्त सादा, तपस्या और संयम का जीवन व्यतीत करेगा। आत्म-चिन्तन और स्वाध्याय उसका मुख्य काम रहेगा। यथाशक्ति आस-पास के लोगों की सेवा भी करता रहेगा। इस आश्रम में रहकर संन्यास आश्रम में प्रवेश करने की तैयारी करेगा। वानप्रस्थ आश्रम का भी सामान्य काल २५-३० वर्ष ही है।

आयु के चौथे भाग में व्यक्ति को संन्यास आश्रम में प्रवेश करना होता है संन्यास आश्रम में व्यक्ति पूर्ण त्यागी बन जाता है। वह किसी वस्तु और व्यक्ति से भी लगाव नहीं रखता। पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा, इन तीनों प्रकार की एषणाओं को, तृष्णाओं को, वह सर्वथा त्याग देता है। वह पूर्ण रूप से निःस्पृह, निर्मोह और निर्लेप हो जाता है। उसके लिए अपना परिवार, अपना देश, अपनी जाति कुछ भी अपना नहीं रह जाता। वह सारी धरती का सारी मानव-जाति का हो जाता है। वह मानवमात्र को धर्म का, सत्य का, न्याय का, कर्तव्य का उपदेश देताहुआ विचरण करता रहता है। और आत्म-चिन्तन में निमग्न रहता है। संन्यास सब कोई नहीं ले सकता। ब्राह्मण ही संन्यास ले सकता है। जिसने ब्रह्मचर्य में और फिर वानप्रस्थ आश्रम में साधना करके अपने को पूर्ण रूप से ब्राह्मण वृत्ति का बना लिया है, वही व्यक्ति संन्यास ले सकता है। शेष तीनों आश्रम सब वर्णों के लिये हैं। पूर्ण वैराग्य हो जाने पर ब्राह्मण वृत्ति का व्यक्ति किसी भी आश्रम से सीधा संन्यास आश्रम में जा सकता है।

वर्णाश्रम धर्म की विशेषताऐं—

१. यह तो हुआ संक्षेप में वर्णाश्रम धर्म। अब प्रश्न यह होता है कि वर्णाश्रम धर्म समाज और व्यक्ति के जीवन को पूर्ण रूप से सुखी बनाने का प्रयोजन किस प्रकार पूरा करेगा? मनुष्य-समाज और उसके व्यक्तियों को तीन कारणों से दुःख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होता है। वे तीन कारण हैं—अज्ञान, अभाव और अन्याय। यदि राष्ट्र के लोगों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के आवश्यक सामान और सामग्री बनाने का ज्ञान ही न हो अथवा उन्हें उस सामग्री के सही उपयोग लेने का ही ज्ञान न हो तो लोग कष्ट में रहेंगे। अगर लोगों को परस्पर व्यवहार किस प्रकार करना चाहिए यही ज्ञान न हो और वे इसीलिए एक-दूसरे के साथ गलत व्यवहार या दुर्व्यवहार करते रहें तो भी लोग कष्ट में रहेंगे। ब्राह्मण लोग ज्ञान और सत्य का प्रचार करके अज्ञान के कारण होने वाले कष्टों से जनता की रक्षा करते हैं। यदि राष्ट्र में लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक सामान और सामग्री ही उत्पन्न न होती हो, उसका अभाव रहता हो, तो उपभोग की इस सामग्री के अभाव के कारण भी लोगों को कष्ट में रहना पड़ेगा। उपभोग की सामग्री के अभाव के कारण होने वाले कष्टों से वैश्य लोग जनता की रक्षा करते हैं। लोगों के उपभोग के लिए आवश्यक सामग्री तो राष्ट्र में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है, किन्तु कुछ दुष्ट लोगों द्वारा किये जाने वाले अन्याय के कारण वह लोगों को मिल नहीं पाती अथवा उनके पास रह नहीं पाती। व्यापारी लोग लोभ में भरकर अपने सामान को भविष्य में महंगा वेचने के विचार से गोदामों में भरकर रख लेते हैं, इस कारण वह सामान खुले बाजार में नहीं आ पाता और जनता को नहीं मिल पाता। लोग इससे कष्ट में रहते हैं। अथवा व्यापारी लोग लोभ में भरकर किसी सामान की कीमत इतनी ऊंची कर देते हैं कि साधारण आदमी उसे धनाभाव के कारण खरीद नहीं सकते। लोग इससे कष्ट में रहते हैं। व्यापारी लोग कम तोलने और कम नापने लग जाते हैं। इससे भी लोगों को कष्ट पहुंचता है। चोर और डाकू लोग लोगों के सामान को चुराकर और छीनकर ले जाते हैं इससे भी लोगों को कष्ट होता है। अनेक बार लोभ, लालच, काम, क्रोध और ईर्ष्या आदि में भरकर कुछ नृशंस लोग दूसरों की हत्या भी कर देते हैं। इससे भी लोगों को कष्ट मिलता है। ये सब कार्य अन्याय के कार्य हैं। क्षत्रिय लोग राज्याधिकारियों के रूप में अन्यायकारियों को दण्डित करके अन्याय के कारण होने वाले कष्टों से जनता की रक्षा करते हैं। क्योंकि ब्राह्मणादि वर्णों के लोगों ने अपने-अपने वर्ण की योग्यता और कार्यों द्वारा जनता की सेवा करने का व्रत लिया हुआ होता है, इसलिये वे अपने इन कार्यों को धर्म समझकर करते हैं।

२. लोगों को एक-दूसरे से जो कष्ट प्राप्त होते हैं वे प्रधानतः धन के लोभ के कारण प्राप्त होते हैं। धन के लोभ के कारण ही लोग उस प्रकार निन्दनीय और घृणित कार्य करते हैं जिन में से कुछ की ओर अभी ऊपर की पंक्तियों में संकेत किया गया है। वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति में लोभ की वृत्ति को वश में करने का पूरा प्रबन्ध किया गया है। पहले वर्णों को लीजिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र वर्ण के लोग ही धन-सम्पत्ति कमाने के काम में नहीं लग सकते। केवल एक वैश्य वर्ण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग ही धन-सम्पत्ति कमाने के काम में, लग सकते हैं। फिर आश्रमों को देखिये। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में भी धन-सम्पत्ति कमाने का कार्य नहीं किया जा सकता। केवल एक गृहस्थ आश्रम में ही धन-सम्पत्ति कमाने का कार्य किया जा सकता है। वानप्रस्थ आश्रम में जाते समय गृहस्थ को अपनी सब धनसम्पत्ति छोड़ देनी होगी। वर्णाश्रम धर्म की पद्धति में ढले हुए व्यक्ति सोचेंगे कि ब्रह्मचर्य आश्रम में जिस धन-सम्पत्ति से हम दूर रहे हैं, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में जिस धन-सम्पत्ति को फिर छोड़ दिया जाता है, जो केवल गृहस्थ आश्रम में ही अपने पास कुछ काल के लिये रखी जा सकती है, उस धन-सम्पत्ति के लिये व्यर्थ में लोभ, लालच में भरकर लोगों के साथ दुर्व्यवहार करके उनके जीवन को कष्टमय क्यों बनाना? इस विचार से वे धन-सम्पत्ति के लोभ के कारण किये जाने वाले सब प्रकार के अन्याय-अत्याचारों से दूर रहेंगे।

३. फिर चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लिए जो कर्तव्य शास्त्रों में निश्चित किये गये हैं उन में त्याग और दान पर बड़ा बल दिया गया है। कई जगह तो कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आय का १० वाँ भाग दान में देना चाहिये। कर्तव्यों संबन्धी त्याग और दान के इस उपदेश के कारण भी लोभ की वृत्ति दबी रहेगी और इसके कारण वे दूसरों के साथ अन्याय-अत्याचार नहीं करेंगे। सब वर्णों वालों ने जैसा ऊपर कहा गया है पढ़ने के समय ब्रह्मचर्य आश्रम में ही समाज की सेवा का व्रत ले रखा होता है। इस व्रत के कारण सब लोग राज्य को पूरा कर (टैक्स) देंगे और उसके साथ ही जनता के कल्याण के लिये अपनी धन-सम्पति का दान भी अधिक से अधिक करेंगे। उनमें धनसंग्रह की अनुचित भावना पैदा नहीं होगी। यथासंभव जनता के भले के लिए ही धन को खर्च करने की भावना ही उनमें प्रबल रहेगी। और वे धन की लालसा और आसक्ति के कारण किये जाने वाले अपराधों से बचे रहेंगे।

४. जब धन की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जाती है और धन से प्राप्त होने वाली सुख-सुविधा राज्याधिकार तथा समाज में मान-प्रतिष्ठा, सब कुछ धन के कारण ही मिलने लगते हैं जैसा कि आजकल की पूंजीवादी व्यवस्था में हो रहा है, तब जिस किसी तरह भी हो धन-संग्रह करना ही लोगों का लक्ष्य बन जाता है। तब लोग कोई भी पाप, कोई भी अन्याय और अत्याचार करने में संकोच नहीं करते। उसके परिणाम स्वरूप समाज के अधिकांश लोग पीड़ित और क्लेशित रहते हैं। वर्णाश्रम पद्धति में यह दोष नहीं है। वहाँ शक्ति-संतुलन कर दिया गया है। समाज में ब्राह्मण को मान-प्रतिष्ठा सब से अधिक मिलेगी। उसे सभा-सम्मेलनों में, उत्सव-समारोहों में सबसे आगे कुर्सी मिलेगी। उसके आने पर राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री भी उसके सम्मान में खड़े हो जायेंगे। मार्ग में मिल जाने पर ये लोग उसके लिए रास्ता छोड़ देंगे। राज्याधिकार क्षत्रियों को मिलेगा। तथा उन्हें समाज में मान-प्रतिष्ठा दूसरे नम्बर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मिलेगी। उन्हें सभा-सम्मेलनों में बैठने के लिये दूसरी श्रेणी की कुर्सियाँ मिलेंगी। वैश्य को धन से प्राप्त होने वाली सुख-सुविधायें अन्य वर्णों से अधिक मिलेंगी। वैश्य को मान-प्रतिष्ठा ब्राह्मण और क्षत्रिय से कम मिलेगी। सभी वर्णों के लोगों को मकान, भोजन, वस्त्र और चिकित्सा की समुचित व्यवस्था अपने लिए करने के लिए वेतन आदि के रूप में यथोचित मात्रा में धन मिलेगा। किन्तु वैश्य को औरों की अपेक्षा धन और उससे मिलने वाली सुख-सुविधायें अधिक मिलेंगी। कितनी अधिक मिलेंगी इसका निश्चय समय-समय पर देश-काल की परिस्थिति के अनुसार होगा। इस शक्ति-संतुलन का परिणाम यह होगा कि लोग धन के पीछे अन्धे होकर नहीं दौड़ेंगे और उसके लिये पाप, अन्याय और अत्याचार करने के लिए उद्यत नहीं होंगे।

५. आजकल की व्यवस्था में हरेक व्यक्ति जीवन भर धन कमाने में लगा रहता है। सभी काम-धन्धों और नौकरियों में बूढ़े-बूढ़े लोग अड़े रहते हैं। नौजवानों को काम करने के अवसर नहीं मिलते। बेकारी बनी रहती है। जिस के कारण अनेक लोगों के जीवन दुःखी बने रहते हैं। वर्णाश्रम धर्म की वानप्रस्थ की व्यवस्था इस दोष का इलाज कर देती है। ५०—५५ वर्ष की आयु के पश्चात् हर किसी को धन-सम्पत्ति कमाने का काम छोड़ देना पड़ेगा। उनके स्थान पर नये लोग आते रहेंगे। समाज में बेकारी की समस्या उत्पन्न नहीं होगी।

६. वर्णाश्रम-व्यवस्था में सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकार को स्वीकार किया जाता है। व्यक्ति जो सम्पत्ति कमायेगा वह उस पर राज्य के कर आदि देने के पश्चात् वह उसकी अपनी होगी। व्यक्ति उसे उत्तराधिकार में अपनी सन्तान को भी दे सकेगा। और उसका दान भी कर सकेगा। इस में ममत्व का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त काम कर रहा है। ममत्व के कारण लोग पूरे मनोयोग के साथ और अधिक से अधिक समय लगाकर कार्य करेंगे। इससे जनता के लिए उपभोग की साम्रग्री अधिक मात्रा में उत्पन्न होगी, बढ़िया बनेगी और सस्ती बनेगी। और इस प्रकार समाज की सुख-समृद्धि में अधिक वृद्धि होगी। साम्यवादी रूस में प्रारम्भ में सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकार को सर्वथा समाप्त कर दिया गया था। परन्तु बाद में वहां भी बहुत हद तक इस अधिकार को स्वीकार करना पड़ा। इसके बिना लोग काम अच्छी तरह नहीं करते थे।

७. वर्णाश्रम व्यवस्था की पद्धति व्यक्ति के जीवन को इस प्रकार ढालने का प्रयत्न करती है कि उसमें लोभ-लालच की वृत्ति रहने ही न पाये और वह धन के लोभ के वशीभूत होकर किसी प्रकार का पाप-अन्याय और अत्याचार न करे। तथा धन का दुरुपयोग न करे। फिर भी यदि कोई ऐसा करने लग जाये तो वर्णाश्रम-व्यवस्था में इस प्रकार के अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था भी है। राज्य ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराधियों को दण्ड देगा। यहाँ तक कि अपराधियों की सम्पत्ति भी छीनी जा सकती है और उन्हें मृत्युदण्ड भी दिया जा सकता है।

८. वर्णाश्रम-व्यवस्था की एक निराली विशेषता और है। इस व्यवस्था में बालकों को शिक्षा निःशुल्क दी जायेगी। बालकों को भोजन, वस्त्र आदि सब कुछ विद्यालय की ओर से निःशुल्क मिलेगा। उनकी चिकित्सा भी निःशुल्क होगी। ऊंची से ऊंची शिक्षा प्राप्त करने तक यही व्यवस्था रहेगी। इसके लिए राज्य शिक्षणालयों को समुचित धनराशि देगा। धनाभाव के कारण किसी का बच्चा शिक्षा से वंचित नहीं रहेगा। शिक्षा अनिवार्य होगी। जो अपने बच्चों को पढ़ने नहीं भेजेगा वह दण्डनीय होगा। राष्ट्र के हरेक बालक को शिक्षा प्राप्त करके कुछ भी बन सकने का अवसर सुलभ होगा। शिक्षा के क्षेत्र में वर्णाश्रम-व्यवस्था पराकाष्ठा की साम्यवादी है।

९. वर्णाश्रम-व्यवस्था का दर्शनशास्त्र अध्यात्मवादी है। उसमें आत्मा और परमात्मा की सत्ता को स्वीकार किया जाता है। उसमें व्यक्ति के आध्यात्मिक गुणों को जागृत करने और बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसा प्रयत्न किया जाता है कि जहां व्यक्ति की सांसारिक दृष्टि से यथेष्ट उन्नति और समृद्धि हो, वहाँ उसकी आध्यात्मिक उन्नति भी भरपूर हो। व्यक्ति संसार में रहते हुए इस तरह जीवन बिताये कि उससे किसी के साथ कोई भी पाप, अधर्म और अन्याय न हो। उससे किसी को भी कोई कष्ट और दुःख न मिले, जिससे वह मृत्यु के उपरान्त सीधा भगवान् की गोद में जाकर भगवान् के दर्शन से प्राप्त होने वाले मोक्ष के ब्रह्मानन्द-रस का पान कर सके। जीवन को निष्पाप और पवित्र बनाने के लिए उसे प्रति-दिन दोनों समय भगवान् की उपासना में बैठकर उनके पवित्र गुणों का चिन्तन करके उन गुणों को अपने भीतर धारण करना चाहिए और अपना दैनिक जीवन उसी के अनुसार ढालना चाहिए। ऐसा करने से उसके जीवन में एक ऊंचे प्रकार की शक्ति, सन्तोष और तृप्ति रहेगी, जो कि सांसारिक भोगों के पीछे पड़े रहने से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। और आगे चलकर उसे इस कारण जो मोक्ष का वर्णनातीत आनन्द प्राप्त होगा, उसे प्राप्त करके तो उसके लिए फिर कुछ प्राप्त करने योग्य बचा नहीं रहेगा। वह कृतकृत्य और आप्तकाम हो जायेगा। वर्णाश्रम व्यवस्था की यह आध्यात्मिकता पूंजीवादी और साम्यवादी अन्य किसी व्यवस्था में नहीं है। □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५]

वर्णाश्रम धर्म और वानप्रस्थाश्रम

आर्यसमाज वैदिक धर्म का प्रचार करने वाली संस्था है। वैदिक धर्म का निचोड़ समाज की वर्णों और आश्रमों के रूप में व्यवस्था है। जिसे वर्णाश्रम-व्यवस्था और वर्णाश्रमधर्म के नाम से भी कहा जाता है। यदि संसार में या किसी भी देश में वैदिक धर्म का पूर्ण रूप से प्रचार हो जाये और वहां के निवासी वैदिक-धर्म की शिक्षाओं का समग्र रूप से पालन करने लगें तो वहाँ का मानव-समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त होकर समाज की सेवा के लिए अपने अपने वर्ण के निर्धारित कार्य करने लगेगा और प्रत्येक व्यक्ति का जीवन ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों की मर्यादा में से गुजरने लगेगा और वह इन आश्रमों के निर्धारित कर्तव्यों का पालन करने लगेगा।

ब्राह्मण उन्हें कहा जाता है, जो भांति-भांति के ज्ञान-विज्ञानों के आविष्कार और उनके प्रचार का काम करते हैं। ये लोग जनता के हित में जीवन और जगत् की सभी प्रकार की सचाइयों का पता लगाते हैं और उन्हें जनता के आगे प्रस्तुत करते हैं। इनका व्यक्तिगत जीवन त्याग, तपस्या, दान, दया, परोपकार, सत्य, अहिंसा प्राणिमात्र के प्रति प्रेम की भावना आदि ऊँचे नैतिक या धार्मिक आदर्शों के अनुसार व्यतीत होता है। ये लोग ईश्वर में पूर्ण विश्वास और निष्ठा रखते हैं। राष्ट्र में सार्वभौम धर्म की भावना का प्रचार भी इन्हीं लोगों का काम होता है। राष्ट्र में सब प्रकार की शिक्षा के प्रचार का कार्य भी ये लोग करते हैं। राष्ट्र के बालकों को शरीर, मन और आत्मा के गुणों से भरपूर बनाना, उन्हें स्वस्थ, सुन्दर, बलिष्ठ, सदाचारी और ज्ञानवान् बनाना इन्हीं लोगों का कर्तव्य होता है। राष्ट्र के न्याय-विभाग के पदों पर भी इसी कोटि के लोगों को नियुक्त किया जाता है। लोभ से सर्वथा दूर रहना इन लोगों का एक प्रधान लक्षण होता है।

क्षत्रिय लोगों का कार्य राष्ट्र की प्रबन्ध और शासन की व्यवस्था को चलाना होता है। ये देश की पुलिस और सेनाओं में काम करते हैं। ये लोग प्रशासन के उन पदों पर भी काम करते हैं जहां शक्ति की, दृढ़ता की और दौड़-धूप की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता पड़ती है। अत्याचरियों के द्वारा लोगों के साथ किये जा रहे अन्याय और अत्याचार से उनकी रक्षा करना क्षत्रियों का मुख्य कार्य होता है। शत्रुओं से देश की रक्षा का काम भी इन्हीं का होता है। अन्याय और अत्याचार से रक्षा करना इन लोगों का प्रमुख कर्तव्य और बल और निर्भयता इनका प्रधान लक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। राष्ट्र की भौतिक संपदा को बढ़ाने का काम करने वाले वैश्य कहे जाते हैं। पशु-पालन, खेती, भांति-भांति के उद्योग-धन्धे और व्यवसाय करके राष्ट्र की भौतिक सम्पत्ति को उत्पन्न करना और बढ़ाना इन्हीं लोगों का कार्य होता है। फिर व्यापार के द्वारा इस उत्पादित सामग्री को जनता तक पहुंचाना भी, जिससे लोगों की भोजन, वस्त्र धन और चिकित्सा आदि की सब शारीरिक आवश्यकतायें भली भांति पूरी हो सकें, इन्हीं लोगों का काम होता हैं।

शूद्र लोग वे लोग होते हैं जो शिक्षाकाल में पूरा अवसर दिये जाने पर भी अपने भीतर कोई योग्यता उत्पन्न नहीं कर सके। जो अपने को न ब्राह्मण बना सके, न क्षत्रिय बना सके और न ही वैश्य बना सके। ऐसे बुद्धिहीन लोगों को शूद्र कहा जाता है। ये लोग बुद्धि या कौशल से रहित होने के कारण कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते जिसमें विशिष्ट समझ अथवा चतुराई की जरूरत पड़ती हो। ये लोग मन्दबुद्धि होने के कारण भार उठाने सड़क कूटने, लोगों के घरों में सफाई आदि के अति सामान्य बुद्धि के और शारीरिक बल से किये जाने वाले कार्यों को ही कर सकते हैं, और ऐसे कार्यों के द्वारा ही ये लोग समाज की सेवा करते हैं और अपनी आजीविका उपार्जित करते हैं। ऐसे मन्दबुद्धि लोग किसी भी राष्ट्र में सदा ही बहुत कम संख्या में होंगे। इन लोगों के प्रति किसी प्रकार की घृणा; ऊँच-नीच या छूआछूत की भावना होने का वैदिक-धर्म में प्रश्न ही नहीं उठता। शूद्र वर्ण भी वर्णाश्रम धर्म का एक अंग है और उसके कर्तव्य कर्म भी धर्म कहे जाते हैं।

एक शब्द में ब्राह्मण वर्ण के लोग अज्ञान को मिटाकर जनता की सेवा करते हैं, क्षत्रिय वर्ण के लोग अन्याय को मिटाकर जनता की सेवा करते हैं, वैश्य वर्ण के लोग भौतिक वस्तुओं के अभाव को मिटाकर जनता की सेवा करते हैं और शूद्र लोग शेष तीनों वर्णों के लोगों की सेवा करके उन्हें अपने-अपने कामों को करने में सहायता देकर जनता की सेवा करते हैं।

वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित नहीं है। वैदिक धर्म के सही और शुद्ध रूप में वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित है। शूद्र का बालक भी, वैसी ही योग्यता हासिल करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य में से कुछ भी बन सकता है और ब्राह्मण आदि का बालक भी योग्यता न होने पर ब्राह्मणादि न बनकर शूद्र बन जाता है। गुण-कर्म के आधार पर ही वैदिक वर्ण-व्यवस्था चलती है। आर्यसमाज इसी गुण-कर्म पर आश्रित वर्ण-व्यवस्था का प्रचार करता है और वैदिक धर्म का यही आदर्श है।

यों चारों ही वर्णों के लोगों में चारों वर्णों के गुण-कर्म थोड़ी बहुत मात्रा में पाये जाते हैं। परन्तु जिन गुणों की किसी व्यक्ति में अधिकता होती है और जिन के आधार पर वह समाज में काम करके समाज की सेवा करता है और आजीविका अर्जित करता है उन्हीं के कारण व्यवहार में किसी व्यक्ति को ब्राह्मण आदि कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब लीजिए आश्रम-व्यवस्था को। ब्रह्मचर्य आश्रम में बालक कम से कम २४ वर्ष की आयु और बालिकायें कम से कम १६ वर्ष की आयु तक विद्याध्ययन करते हैं। इस अवधि में उनका विवाह नहीं हो सकता। इस काल में उन्हें पूर्ण संयम, पवित्रता और तपस्या का जीवन बिताना होता है और अपना सारा ध्यान शरीर को स्वस्थ, मन को भांति-भांति के ज्ञान-विज्ञानों से पूर्ण और आत्मा को सत्य, अहिंसा आदि ऊँचे आध्यात्मिक गुणों से परिपूर्ण बनाने में लगाना होता है। इस आश्रम में बालकों को यह चुनाव करना और व्रत लेना होता है कि वे आगे चलकर गृहस्थाश्रम में ब्राह्मण आदि में से किस वर्ण के काम कर समाज की सेवा करेंगे। यह चुनाव करके और व्रत लेकर फिर बालकों को उसी वर्ण की योग्यता प्राप्त करने में जुट जाना होता है और अपने विषय का अधिक से अधिक योग्य विद्वान् बनने का प्रयत्न करना होता है।

ब्रह्मचर्य के अनन्तर व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है अब वह विवाहित जीवन व्यतीत करता है। राष्ट्र को उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न करके देता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्राह्मण आदि में से जिस वर्ण की योग्यता उपलब्ध की थी उसके अनुसार अब गृहस्थ में आकर वह समाज की सेवा का कार्य करने लगता है और उसके द्वारा अपनी आजीविका भी अर्जित करता है। गृहस्थ आश्रम की अवधि २५-३० साल की होती है। इस अवधि के पश्चात् गृहस्थ आश्रम त्याग देना होता है और अपने तथा अपने परिवार के लिए धन-संपत्ति कमाने का काम समाप्त कर देना होता है।

गृहस्थ आश्रम के पश्चात् व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होकर उसका जीवन व्यतीन करने लगता है। वानप्रस्थ आश्रम में आकर फिर ब्रह्मचर्य आश्रम की भाँति ही संयम, तप, सादगी और पवित्रता का जीवन बिताना होता है। वैदिक धर्म के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की अवस्था में जाकर परमात्मा का साक्षात्कार करके ब्रह्मानन्द रस का पान करना और इस प्रकार संसार के दुःखों और बंधनों से छूट जाता है। मोक्ष की अवस्था में जीव को जो अन्तिम आनन्द, सतोष, शान्ति और तृप्ति प्राप्त होती है उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। वह तो अनुभव करने की ही वस्तु है हमारे वेद और तदनुकूल अन्य सभी शास्त्र मोक्ष की महिमा से भरे पड़े हैं। और मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का परम लक्ष्य बताते हैं। मोक्ष-प्राप्ति का यह परम लक्ष्य संन्यास की पूर्ण रूप से निष्पाप स्थिति तक पहुंचे हुये व्यक्ति को ही प्राप्त होता है। संन्यास आश्रम में केवल ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति ही प्रवेश कर सकता है, अन्य वर्ण का नहीं। इस प्रकार ब्राह्मण के जीवन का आदर्श भी पूर्ण पवित्रता के जीवन की प्राप्ति ही है। मनुष्य को ब्राह्मण बनने का एक अवसर तो ब्रह्मचर्य आश्रम में दिया जाता है। फिर दूसरा अवसर वानप्रस्थ आश्रम में दिया जाता। वानप्रस्थ में सभी वर्णों के लोगों का प्रवेश हो सकता है : गृहस्थ के बाद सभी वर्णों वालों के लिए वानप्रस्थ में जाना आवश्यक है। संन्यास में केवल ब्राह्मण ही जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। संन्यास सबके लिए आवश्यक नहीं है। वह ब्राह्मणों के लिए ही आवश्यक है।

वानप्रस्थ में व्यक्ति को अपना समय स्वाध्याय में बिताना होता है। वह विभिन्न प्रकार के शास्त्रों के अध्ययन और चिन्तन में लगा रहता है। विशेष रूप से से वह वेद और उपनिषद् आदि इस प्रकार के ग्रन्थों का स्वाध्याय करता है जिनमें आत्मा और परमात्मा के स्वरूप और गुणों पर विचार किया गया होता है तथा जिनमें मन और इन्द्रियों को वश में करने के उपाय बताये गये होते हैं। वह आत्म-चिन्तन और योगाभ्यास में लगा रहता है। आत्म-चिन्तन के द्वारा वह अपनी जाँच-पड़ताल करके पता लगाता रहता है कि उसमें कौन-कौन अवगुण हैं और कौन-कौन गुण। अवगुणों को छोड़ने और गुणों को बढ़ाने का अभ्यास करता रहता है। प्रभु के स्वरूप का चिन्तन करने के द्वारा वह उनके सत्य, न्याय, दया, संयम आदि महान् पवित्र गुणों को सदा अपने मन की आंखों के आगे रखता है और उनके अनुसार अपना जीवन ढाल कर उन्हें अपने क्रियात्मक जीवन में धारण करने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। इन सब प्रयत्नों के द्वारा वह अपने काम क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, भय और शोक आदि मानसिक शत्रुओं को पूर्ण रूप से जीतने का प्रयत्न करता रहता है। वह प्रयत्न करता है कि उसे कभी क्रोध न आये, काम की वासनायें न जागें, लोभ-लालच उसके पास न फटके अभिमान उससे दूर रहे, वैर-भावना परे भाग जाये, ईर्ष्या पास आने का साहस न करे, भय परे भागता रहे और शोक उससे डरता रहे। मान-अपमान, निन्दा-स्तुति उसे बिन्दुमात्र भी प्रभावित न करे। लोगों के कल्याण के लिए वह अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहे। गरमी-सरदी और भूख-प्यास आदि द्वन्द्व उसके वश में रहें, वह इनसे विचलित होकर घबराये नहीं। वह शरीर, इन्द्रिय और मन पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ले। स्वप्न में भी कोई बुरा विचार उसके मन में न उठे। वह पूर्ण रूप से निष्पाप और निष्कलंक बन जाये। पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा पर उसका पूर्ण विजय हो जाए। अपना जीवन पूर्ण पवित्र बनाने में वानप्रस्थ को लगे रहना होता है। इसके लिए उसे निरन्तर अथक अभ्यास करते रहना होता है। यह जीवन आदर्श ब्राह्मण का जीवन है। इस जीवन को वानप्रस्थ में प्राप्त करना होता है। जब उसके जीवन में यह पूर्ण पवित्रता आ जाती है तब वह संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है जब तक पूर्ण पवित्रता की यह स्थिति नहीं आती तब तक इसे लाने के लिए वानप्रस्थ निरन्तर प्रयत्न और अभ्यास करता रहता है।

एक तो वानप्रस्थ व्यक्ति इस प्रकार मोक्ष का परम सुख प्राप्त करने के प्रयत्न में लगा रहता है। दूसरे, वह अपने तरीके से समाज की सेवा भी करता है। वानप्रस्थ लोग, शिक्षा-संस्थाओं में पढ़ाने का भी कार्य करते हैं। जिन विषयों में उनकी योग्यता और रुचि है उन विषयों के अध्यापन में वे अपने आस-पास की शिक्षा-संस्थाओं को अपने समय का कुछ भाग देते रहते हैं। इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा-संस्थाओं को अनेक अनुभवी व्यक्ति अध्यापकों के रूप में मिलते रहते हैं। वानप्रस्थों ने धनोपार्जन तो करना नहीं होता है। इसलिए वे शिक्षा-संस्थाओं से कोई वेतन नहीं लेते। उनकी आवश्यकतायें बहुत थोड़ी होती हैं अतः उन्हें वेतन लेने की आवश्यकता ही नहीं होती। उन्हें खाने को भोजन और पहनने को वस्त्र मिल जायें, इतना उनके लिए बहुत है। इसका परिणाम यह होता है कि शिक्षा-संस्थाओं को अध्यापकों को ऊंचे-ऊंचे वेतन देने की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए उन्हें अपने छात्रों से भारी-भारी फीसें लेने की भी आवश्यकता नहीं रहती। छात्रों की शिक्षा सर्वथा निःशुल्क हो जाती है। वैदिक-धर्म के आदर्शों पर चलने वाली शिक्षा-संस्थाओं में तो भोजन-वस्त्र आदि भी सब कुछ छात्रों को निःशुल्क मिलना चाहिए। तभी गरीब से गरीब का बालक भी सुगमता से ऊंची शिक्षा प्राप्त कर सकेगा। वर्णाश्रम पद्धति की शिक्षा-संस्थाओं में, छात्रों से न तो शिक्षा का और न ही भरण-पोषण का कोई व्यय लिया जाएगा। इस सारे व्यय को जनता या सरकार वहन करेगी। वानप्रस्थ आश्रम की व्यवस्था के कारण क्योंकि शिक्षा-संस्थाओं को अवैतनिक अध्यापक मिलते रहेंगे इस लिए सरकार को छात्रों की सुविधाओं पर व्यय करना आसान हो जायेगा। वर्णाश्रम धर्म की पद्धति में छात्रों को भी अति सादा और तपस्वी रहना होगा और अपनी आवश्यकतायें न्यून से न्यून रखनी होंगी। इसलिए छात्रों पर पड़ने वाला खर्च अपेक्षाकृत बहुत कम बैठेगा। वानप्रस्थ अध्यापक क्योंकि बड़ी आयु के होंगे और उन्होंने दुनियाँ देख रखी होगी इसलिए उनके कारण छात्रों में चरित्र सम्बन्धी वे बुराइयां भी उत्पन्न नहीं होने पाएंगी जो कि नौजवान अध्यापकों के कारण हो जाया करती हैं। बड़ी आयु का और अनुभवी होने के करण वानप्रस्थ अध्यापक यों भी अपने छात्रों को चरित्रवान् और सदाचारी बनाने के काम में बड़े उपयोगी होंगे। इस प्रकार राष्ट्र के भावी नागरिकों का निर्माण करने में सहायता करके राष्ट्र की सेवा का काम भी वानप्रस्थ करेंगे। शिक्षा-संस्थाओं के आस-पास के गांवों और नगरों में रहने वाले कष्ट-पीडित लोगों की अपने खाली समय में सेवा-सहायता करते रहकर भी वानप्रस्थ लोग अपने समाज की सेवा करेंगे।

जो वानप्रस्थ शिक्षा-संस्थाओं में काम नहीं कर पायेंगे वे जहाँ रहेंगे वहीं आस-पास के कष्ट-पीडित लोगों की सेवा-सहायता करते रहकर या उनके बच्चों को पढ़ाने आदि का कार्य करते रहकर अपनी साधना के साथ-साथ जन-सेवा का काम भी करते रहेंगे।

वानप्रस्थ आश्रम की व्यवस्था गरीबी और बेकारी की समस्या का भी समाधान करती है। धरती के सभी राष्ट्रों के आगे यह समस्या विकट रूप में विद्यमान है और आज की परिस्थितियों में राष्ट्रों में जिस प्रकार की समाज की व्यवस्थायें चल रही हैं उनके रहते यह समस्या सदा ही उनके आगे विकट रूप में रहेगी। आज की समाज की पद्धति में कोई व्यक्ति जो काम करता है उसे वह मरने तक आयुभर करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। इससे राष्ट्र के नौजवान लोगों को जगह खाली न होने के कारण काम नहीं मिल पाता और वेकारी वनी रहती है। वर्णाश्रम धर्म की वानप्रस्थ की पद्धति के कारण प्रत्येक व्यक्ति को ५०-५५ वर्ष की आयु हो जाने पर कमाई का काम छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना होता है। इससे नए लोगों के लिए जगह खाली होती रहती है और उन्हें काम मिलता रहता है। इस प्रकार वानप्रस्थ आश्रम की पद्धति राष्ट्र की वेकारी की समस्या को हल करने में भी बड़ी सहायक होती है।

वानप्रस्थ आश्रम में ऊपर कहे गए प्रकार से साधना करके अपने अपको जिस व्यक्ति ने पूर्ण रूप से निष्पाप और निर्द्वन्द्व वना लिया है वह संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है। संन्यास में जाने के पश्चात् व्यक्ति सब प्रकार की मोह-ममताओं से ऊपर उठ जाता है। उसके लिए जाति-वर्ण, देश-विदेश और अपने-पराये की सव सीमाएं टूट जाती हैं। सारी धरती उसका घर और धरती के सब मानव और प्राणी उसके अपने हो जाते हैं। वह सबका हो जाता है। उसे किसी से द्वेष और घृणा नहीं रहती वह प्राणिमात्र से प्रेम करता है। वह सब प्रकार के बन्धनों को तोड़कर स्वच्छन्द हो जाता है और स्वच्छन्द होकर जनता के कल्याण के लिये धर्मोपदेश करता हुआ विचरण करता रहता है, उसे किसी से लगाव नहीं और किसी से द्वेष भी नहीं। वह निर्लेप हो जाता है। जनता को निर्लेप होकर सन्मार्ग दिखाते रहना और मोक्ष प्राप्ति तथा ब्रह्म-साक्षात्कार को लक्ष्य में रखते हुए उसके लिए निरन्तर साधना में लगे रहना ही उसका एकमात्र कार्य रह जाता है। इस स्थिति तक पहुंचने में वानप्रस्थ आश्रम परम सहायक होता है।

□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

84273

GURUKUL KANGRI LIBRARY

Accc on
Class on 22-2-95
Cat on
Tag etc.
Checked
Any Other

3-4-95

पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PAYMENT PRUCESSED
Vide Bill No 646 Dated 14/4/94
Anis Book Binder

STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library

Entered in Database
Signature with Date

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

S
SA2773
२४.४
प्रि ६ उस

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

विषय .... आगत नं० ....
लेखक वेदवाचस्पति प्रियव्रत
शीर्षक समाज का कायाकल्प

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या
24 SEP 1994			
A20	5184		
19 MAR 2002			
	182611		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar